पत्रकार-कला

लेखक—

विष्णुदत्त शुक्ल

प्रथमावृत्ति
११००

मूल्य २)

प्रकाशक—

शुक्ल-सदन

बारा, उन्नाव।

मुद्रक—

पं० सर्य्यूप्रसाद मिश्र

अवध प्रिंटिङ्ग वर्क्स,

१६।१।१ हरीसन रोड, कलकत्ता।

विषय-सूची

सहायक ग्रन्थ

इस पुस्तक के लिखने में निम्नलिखित पुस्तकों और पत्रोंसे सहायता ली गयी है:—

१. Practical Journalism.
२. Journalism by Low Warren
३. News Paper.
४. Pitman's Guide to . urnalism.
५. Modern Journalism
६. How to write for the Papers by Albert E. Bull
७. How to succeed as a journalis
८. Journalism in India by Pat Lovett.
९. Journalism for profit by Michael Joseph.
१०. Writing for the Press.
११. News writing by Lyle Spencer Phd.
१२. पत्र सम्पादन कला--पं० नन्दकुमारदेव शर्मा।
१३. लेखन कला—स्वामी सत्यदेव।
१४. विज्ञापन विज्ञान—श्री कन्हैयालाल शर्मा बी० ए०।
१५ Encyclopaedia Britanica के news paper, Proof reading और Report' .g सम्बन्धी लेख।
१६ Modern Review, सरस्वती, विशाल भारत, माधुरी, साहित्य समालोचक, प्रताप, आज, वेंकटेश्वर समाचार, देश, मतवाला, Forward, आदिके पत्रकार कला सम्बन्धी लेख और समाचार।
१७। हिन्दी सम्पादक सम्मेलन के स्वागताध्यक्षों और सभापतियों के भाषण तथा बिहार प्रान्तीय सम्पादक सम्मेलन के सभापति का भाषण।
१८। गुजराती पत्रकार परिषद् की कार्यवाही।

निवेदन

पत्रकार बनने की प्रवृति हिन्दी संसार में बढ़ रही है। इस बढ़ती हुई प्रवृति के अनुरूप साहित्य की आवश्यकता है। "पत्र-कार-कला" द्वारा कुछ अंशों में इसी आवश्यकता की पूर्ति करने की चेष्टा की गयी है। इस व्यवसाय की ओर आकृष्ट होनेवाले सज्जन प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त कर सकें जिससे उनका नवीन जीवन-पथ कुछ साफ हो जाय, यही इस पुस्तकका उद्देश्य है। इसमें यह प्रयत्न किया गया है कि पाठकों के सामने पत्रकार-कला सम्बंधी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक-दोनों प्रकार की अधिक से अधिक बातें पहुंच जांय। इस प्रयत्न में कहां तक सफलता मिली है इसका विवेचन करने का अधिकार मुझे नहीं है। अस्तु।

इस पुस्तक के लिखने में सहायक ग्रंथों और पत्रों के अतिरिक्त, जिनका उल्लेख अन्यत्र मिलेगा, सबसे अधिक और बहुमूल्य सहायता मुझे श्रद्धेय गणेशशंकरजी विद्यार्थी द्वारा प्राप्त हुई है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हींकी प्रेरणा और शिक्षा का फल है। गणेशजी के अतिरिक्त "विशालभारत" सम्पादक श्री० बनारसीदासजी चतुर्वेदी तथा 'कर्मवीर' सम्पादक श्री० माखनलालजी चतुर्वेदीने भी अपने सत्परामर्श और प्रोत्साहन द्वारा सहायता प्रदान की है। मैं अपने इन आदरणीय सहायकोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

विष्णुदत्त शुक्ल

दो शब्द

हिन्दी में पत्रकार-कला के सम्बन्ध में कुछ अच्छी पुस्तकों के होने की बहुत आवश्यकता है। मेरे मित्र पण्डित विष्णुदत्त शुक्ल ने इस पुस्तक को लिखकर एक आवश्यक काम किया है। शुक्लजी सिद्ध-हस्त पत्रकार हैं। अपनी पुस्तक में उन्हों ने बहुत सी बातें पते की कही हैं। मेरा विश्वास है कि पत्र-कार-कला से जो लोग सम्बन्ध करना चाहते हैं, उन्हें इस पुस्तक और उसकी बातों से बहुत लाभ होगा। मैं इस पुस्तक की रचना पर शुक्लजी को हृदयसे बधाई देता हूं।

अंग्रेजी में इस विषय की बहुत सी पुस्तकें हैं। अंग्रेजीपत्र-कार कला का कहना ही क्या है, वह तो बहुत आगे बढ़ी हुई चीज है। हिन्दी में हम अभी बहुत पीछे हैं। हमें अभी बहुत आगे बढ़ना है। किन्तु, हम उन्हीं लकीरों पर आगे बढ़ें जो हमारे सामने अङ्कित हैं, इस बातसे मैं सहमत नहीं हूं। इस समय उन्हीं लकीरों पर हम भली भांति चल भी नहीं सकते। हमारी छपाई का काम अभी तक बहुत प्रारम्भिक अवस्था में हैं। अभी, हिन्दी पत्रों के लाखों की संख्या में निकलने का समय नहीं आया है। जबतक देश में साक्षरता भलीमांति नहीं फैलती और जबतक देश की दरिद्रता कम नहीं होती, तबतक देशके करोड़ों आदमी समा-

चार पत्र नहीं पढ़ सकते, और तबतक छापेखाने उतने उन्नत नहीं हो सकते जितने कि विदेशों में हैं, या यहां अंग्रेजी पत्रों के हैं। एक दिक्कत और भी है। हमारा देश पराधीन है। हम ऐसे शासन की मातहतोमें सांस लेते हैं, जिसकी अन्तरात्मा "आर्डिनेन्सों" और काले क़ानूनों के सहारे पर विश्वास करती है। यहां का राजविद्रोह का कानून दुनियां भर से निराला है। और, यह शायद इसलिए कि इस देश में प्रत्येक देशभक्त का राजविद्रोही होना अनिवार्य है। इस अस्वाभाविक परिस्थिति के कारण हिन्दी के समाचार पत्रों का विकास और भी रुका हुआ है। किन्तु, यदि थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाय कि ये रुकावटें नहीं हैं, या दूर हो गई, तो इस दशा में क्या यह ठीक होगा कि इस समय संसार के अन्य बड़े देशों में समाचार-पत्रों के चलने की जो लकीर है, उस का हम अनुकरण करें, या यह कि हम अपने आदर्शके सम्बन्धमें अधिक सजगता और सतर्कता से काम लें:? मैं यह धृष्टता तो नहीं कर सकता, कि यह कहूं कि संसारके अन्य सब बड़े पत्र गलत रास्ते पर जा रहे हैं, और उनका अनुकरण नहीं होना चाहिए किन्तु मेरी धारणा यह अवश्य है कि संसार के अधिकांश समाचार पत्र पैसे कमाने और झूठ को सच और सच को झूठ सिद्ध करने के काम में उतनेही लगे हुए हैं जितने कि संसार के बहुतसे चरित्र-शून्य व्यक्ति। अधिकांश बड़े समाचार-पत्र धनी-मानी लोगों द्वारा संचालित होते हैं। इसी प्रकार के संचालन या किसी दल विशेष की प्रेरणा ही से उनका निकलना सम्भव है। अपने

रण अर्थ के अनुसार पत्रकार किसी भी ऐसे व्यक्ति को कहते हैं जो पत्र के बनाने में सहायक हो। पत्र से यहां पर समाचारपत्र से अभिप्राय है। समाचारपत्र को बनाने में सहायता देनेवाला व्यक्ति पत्रकार कहलाता है। किन्तु समाचारपत्र के बनाने में काग़ज़ बनानेवाले, स्याही बनानेवाले से लेकर मशीन बनानेवाले, टाइप बनानेवाले, टाइप जोड़नेवाले, छापनेवाले आदि न जाने कितने व्यक्ति शामिल होते हैं। इसलिए उक्त व्याख्या के अनुसार ये व्यक्ति भी पत्रकार ही कहे जाने चाहिए। किन्तु बात ऐसी नहीं है। ये सब व्यक्ति पुस्तक बनाने तथा अन्य ऐसे ही कामों में भी सहायक होते हैं फिर भी ये पुस्तककार नहीं कहे जाते। पुस्तककार उसका लेखक ही होता है। इसी प्रकार समाचारपत्र के बनाने-वालों में भी यद्यपि ये सब व्यक्ति होते हैं तथापि ये पत्रकार के नाम से नहीं पुकारे जाते। पत्रकार के नाम से वे ही व्यक्ति पुकारे जाते हैं जिनका समाचारपत्र के लेखों समाचारों आदि से संबंध रहता है। इस काम में लेख लिखनेवाले, लेखों और समाचारों का संपादन करनेवाले, समाचार-संग्रह करनेवाले, आलोचना करनेवाले आदि अनेक प्रकार के व्यक्ति शामिल होते हैं। अब इस शब्द की परिधि और भी बढ़ा दी गई है। पाश्चात्य देशों में स्वीकृत की हुई इस शब्द की नयी परिभाषा के अनुसार वे तमाम व्यक्ति पत्रकार के नाम से पुकारे जाने लगे हैं जो समाचारपत्र की उन्नति में सहायक होते हैं। इस अर्थ-निर्देश से संपादकीय विभाग के कर्मचारियों के अतिरिक्त प्रबंध-विभाग के कुछ कर्मचारी तक

पत्रकार के नाम से पुकारे जाने लगे हैं। इसी परिभाषा के अनुसार विज्ञापन-कार्य करनेवाला कर्मचारी और प्रबंध-संपादक आदि पत्रकार कहे जाने लगे हैं।

पत्रकारीय कार्यों में अनेक कार्य सम्मिलित हैं। केवल संपादन ही पत्रकारीय कार्य नहीं है। यह अवश्य है कि संपादन इन कार्यों में सबसे प्रमुख कार्य है, किन्तु सब कुछ उसीको नहीं माना जा सकता। भारतवर्ष के समाचारपत्रों के कार्यालयों में अधिक कर्मचारी नहीं होते। हिन्दी के समाचारपत्रों में तो संपादकों के अतिरिक्त अधिकांश स्थानों में और कोई होता ही नहीं और संपादक महानुभाव ही संपादक, प्रूफरीडर, रिपोर्टर, आलोचक आदि सब कुछ होते हैं। ऐसे समाचारपत्र तो बहुत थोड़े हैं जिन में पत्रकारीय कामों से संबंध रखनेवाले, अनेक भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न कर्मचारी नियुक्त हों। किन्तु एक ही व्यक्ति द्वारा किये जाने पर भी कार्यों की विभिन्नता नष्ट नहीं होती। एक ही व्यक्ति द्वारा किये जाने पर भी संपादन, रिपोर्टिंग, प्रूफरीडिंग आलोचना, समाचार-संकलन आदि कार्यों का अलग अलग होना बना ही रहता है। एक उत्तम समाचारपत्र के लिए यह आवश्यक होता है कि इन तमाम कामों के लिए अलग-अलग कर्मचारी रहें। कार्य-विभाजन से कर्मचारियों में निपुणता आती है और कार्य विशेष का संपादन अधिक योग्यतापूर्वक होता है। एक आदमी सब बातों में उतनी कुशलता प्राप्त नहीं कर सकता जितनी कि वह एक बात में कर सकता है। इसलिए समाचारपत्रों में कर्मचारि-मण्डल की कमी नहीं होनी चाहिए।

पत्रकारीय कर्मचारि-मण्डल में संपादक का स्थान सब से प्रधान है। पत्र की नीति का स्थिर करना, उसके लेखों आदि का संशोधन करना, उसमें कही गई सब बातों की ज़िम्मेदारी लेना, संपादक का ही काम है। संपादक के बाद उपसंपादकों का स्थान आता है। प्रधान संपादक के निर्दिष्ट आदेशानुसार समाचार-पत्र कार्यालय का तमाम संपादकीय कार्य उनके ज़िम्मे रहता है। स्थान की दृष्टि से यद्यपि ये प्रधान संपादक से निम्न श्रेणी के हैं तथापि इनका कार्य प्रधान संपादक की अपेक्षा कहीं अधिक और उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। वास्तव में ये ही किसी समाचारपत्र के कर्ता धर्ता होते हैं। इन दो प्रधान कर्मचारियों के अतिरिक्त-रिपोर्टर, संवाददाता आदि कुछ ऐसे कर्मचारी होते हैं जो देश-विदेश में स्थान-स्थान पर भ्रमण करके समाचार प्राप्त करते और उन्हें पत्रों को भेजते रहते हैं। उनकी भी आवश्यकता और महत्ता कम नहीं होती। ख़ास-ख़ास आदमियों से बातचीत करके उनके विचार समाचार-पत्रों में देनेवाले भेंट करनेवाले कर्मचारी, पत्रकारीय कर्मचारि-मण्डल में एक विशेष स्थान रखते हैं। इनके अतिरिक्त आलोचना करनेवाले, विशेष लेख लिखनेवाले, आदि व्यक्ति भी इसी कर्मचारि-मण्डल के सदस्य होते हैं। आजकल यह मण्डल और भी विस्तृत हो गया है। समाचार-पत्रों में प्रायः चित्र और कारटून भी निकलने लगे हैं। इसलिए फ़ोटोग्राफर और कारटून मेकर भी इस मण्डल से बहुत कुछ संबंधित हो गये हैं; यद्यपि अभी इनकी गणना शुद्ध पत्रकारों में नहीं हुई। इस प्रकार

पत्रकार-कलाका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसमें सम्पादक, उप सम्पादक, सहायक सम्पादक. प्रबन्ध-सम्पादक, रिपोर्टर संवाद-दाता, भेट करनेवाले, प्रू फरीडर, विशेष लेखक, आलोचक, विज्ञापन का प्रबन्ध करनेवाले, फ़ोटोग्राफ़र, कारटून बनानेवाले आदि सब सन्निविष्ट हो जाते हैं।

पत्रकार और लेखक (पुस्तककार) में बड़ा घनिष्ट संबंध है। प्रायः एकही मनःशक्ति दोनों कामों के लिए आवश्यक होती है। लेखक का काम भी लिखना होता है और पत्रकार का काम भी लिखनाहीं होता है। अन्तर केवल यह होता है कि एक पुस्तक लिखता है और दूसरा समाचार पत्र। लेखनकला एक व्यक्ति की अपनी चीज़ होती है और पत्रकार-कला में व्यक्तियोंका एक समूह कार्य करता है। लेखक की पुस्तक का महत्व न्यूनाधिक अंशमें स्थायी होता है; परन्तु पत्रकार के कार्य में यह बात नहीं होती। पत्रकार का कार्य समाचार और उन पर टिप्पणियां लिखना होता है, जिस के महत्व में स्थिरता नहीं होती। पत्रकारीय कार्य का महत्व अधिकांश में पत्र का दूसरा अङ्क निकलते निकलते समाप्त हो जाता है। इन दोनों कलाओं की मानसिक शक्तिसंबंधी एकता के कारण प्रायः यह होता है कि एक शक्ति दूसरी को नष्ट कर देती है। कहने का तात्पर्य. यह है कि यदि मनःशक्ति जो दोनों कामोंके लिए एकही होती है, किसी एक की ओर लगा दी जाती है तो दूसरा काम नहीं हो सकता। पत्रकार-कला और लेखन-कला में एक मनुष्य एकही कला का अभ्यास कर सकता

हैं। अत्यन्त अलौकिक प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों को छोड़कर साधारणतया यदि कोई व्यक्ति अच्छा पत्रकार है तो वह अच्छा लेखक (पुस्तककार) नहीं, और यदि अच्छा लेखक है तो अच्छा पत्रकार नहीं होता।

पत्रकार पूरा योगी होता है। उसकी दशा करीब-करीब उस मुनि की सी हो जाती है जिसके संबंधमें कहा गया है, "या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।" पत्रकारके लिए रात दिन काम रहता है। इस बात का कोई ठिकाना नहीं होता कि कब कौन-सी आवश्यकता आ जाय और उसे क्या करना पड़े। वह सदा काम के लिए तैयार रहता है। जब सारा संसार घोर निद्रा में पड़ा होता है तबभी वह कार्य करता हुआ पाया जाता हैं और जब सब काम करते होते हैं तब भी वह काम करतेही पाया जाता है। रात-दिन उसके लिए बराबर होते हैं। अपनी धुन में मस्त, सिद्ध योगीकी भांति वह न रात देखता है न दिन; सुबह देखता है न शाम, धूप देखता है न छांह, पानी देखता है न आग, युद्ध देखता है न शान्ति, शत्रुता देखता है न मित्रता, हर समय और हर परिस्थिति में अपने काम में ही अनुरक्त रहता है। उसे न खानेकी परवा होती है न पहनने की। अदम्य उत्साह के साथ वह सदा अनवरत परिश्रम किया करता है। उसका हृदय बड़ा कोमल होता है। संसार की छोटी से छोटी घटना से वह प्रभावित हो जाता है। जीवनके नानाविध संघर्षण उसमें विचित्र

प्रभाव डालते हैं। उस प्रभावसे वह इतना अधिक व्यग्र हो उठता है कि क्रौंच-बध घटना से द्रवीभूत महर्षि वाल्मीकि की भांति उसे (उस प्रभावको) दूसरों पर व्यक्त करने के लिए वह छटपटाने लगता है और फिर जब तक औरों पर उस प्रभाव का प्रकाश डाल नहीं लेता तब तक शान्त नहीं होता। उसका हृदय बहुत कठोर भी होता है। अपने सङ्कल्प से विचलित होना वह जानताही नहीं। लोभ से ललचाता नहीं, धमकियों से घबड़ाता नहीं, निन्दा से ऊबता नहीं, प्रशंसा से पिघलता नहीं, कष्टसे डरता नहीं और अपमानसे खिन्न होता नहीं। प्रलोभनोंको ठुकराकर भर्त्सनाओं की अवहेलना कर, यन्त्रणाओं की परवा न कर अपना तन, मन, धन, तथा और सब कुछ स्वाहा करके भी वह अपने सङ्कल्प पर दृढ़ रहता हैं। ईसा की भांति सूली की तख्ती से मोरध्वज की भांति आरा की धार से और मीराबाई की भांति बिष भरे प्याले की तह से वह एक ही बात पुकारा करता है—वही अपना निश्चय, अपना दृढ़ सङ्कल्प !

पत्रकार का काम बड़ा टेढ़ा है। इस में प्रवेश करने के पहिले खूब सोच-समझ लेना चाहिए। लार्ड मार्ले ने एक भोज में कहा था कि 'मैं किसी नवयुवक को यह सलाह नहीं देता कि वह पत्रकार बने।' मैं लार्ड मार्ले की उस सलाह को दुहराना चाहता हूं। इस काम में बड़े त्याग, बड़ी लगन, बड़े परिश्रम, और बड़ी जिम्मेदारी की ज़रूरत है, जो साधारणतया बहुत कम लोगों में पायी जाती है। भारतवर्ष के लिए तो यह काम और भी कठिन

है। अपने विरोधियों के वार, अधिकारियों के प्रहार, कानून की चोटें और अपने ही आदमियों की सख्तियाँ झेलनी पड़ती हैं। यह जो है सो तो है ही, इस के अलावा, यहाँ पर शिक्षा का इतना अधिक अभाव है और समाचारपत्रों की महत्ता से लोग इतना अधिक अपरिचित हैं, कि किसी पत्र को निकाल कर व्यापारिक दृष्टि से चला सकना तक कठिन होता है, और ऐसी दशा में पत्र-सञ्चालक के लिए यह कठिन हो जाता है कि वह अपने पत्रकारों को उचित पुरस्कार दे सके, जिसका परिणाम यह होता है कि यहाँ के पत्रकारों की आय इतनी कम होती है कि आर्थिक सङ्कट से उन्हें कभी छुटकारा ही नहीं मिलता और कभी-कभी तो नौबत यहाँ तक आती है कि उन्हें अपना भरण पोषण करना तक असम्भव हो जाता है। ऐसी दशा में इस टेढ़े, पेचीदे मार्ग में कदम रखने के लिए किस को सलाह दी जाय? यह काम तो,—कम-से-कम इस समय, उन्हीं लोगों के करने का है जिन में कोई विशेष अन्तर्दाह हो जो उन्हें चैन न लेने देता हो, जिन के हृदयों में एक अटूट लगन हो, जिस के सामने वे आय-व्यय को गिनते ही न हों, जिन में त्याग, और सहिष्णुता की वह प्रज्वलित भावना हो कि बड़े-से बड़े कष्ट और बड़ी-से-बड़ी हानियाँ भी तुच्छ दिखलाई पड़ती हों, और जो लोक-सेवा के महत्तम आदर्श पर लौ लगाए हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य से दूर, निर्विकार चित्त से निर्दिष्ट स्थानकी ओर दृढ़ता-पूर्वक आगे बढ़ना ही अपने जीवन का एक मात्र उद्देश बना चुके हों। ऐसे ही लोग इस काम के पात्र

हैं और जब तक किसी मनुष्य में इन दुर्लभ गुणों का समावेश न हो जाय तब तक उसका पत्रकार के गहनतर कार्य में हाथ न डालना ही अच्छा है। उन लोगों को तो, जो केवल १० से ४ बजे तक काम कर के निश्चिन्त हो जाना चाहते हों, जो लखपती और करोड़पती होने के स्वप्न देखते हों, जो सुख के साथ गार्हस्थिक जीवन का उपभोग करना चाहते हों, जो बुढ़ापे में अपने कमाए हुए धन के बूते पर चादर तान कर सुख की नींद सोना चाहते हों, और जो अन्य सांसारिक आमोद-प्रमोद के साथ जीवन बीताना चाह ते हों, इस कँटीले रास्ते पर भूल कर भी कदम न देना चाहिए।

किन्तु परिस्थिति ठीक इस के प्रतिकूल है। लोग इस काम की ओर बहुत अधिक आकृष्ट हो रहे हैं। वे इसे हँसी-खेल ही समझते हैं। साधारण शिक्षा का पाठ्यक्रम समाप्त करते ही, यदि उन में दो अक्षर लिखने की शक्ति हुई तो, वे फौरन इस ओर दौड़ पड़ते हैं। और बिना उस की पात्रता प्राप्त किये ही उसमें हाथ पैर फेंकने लगते है। बात यहीं से समाप्त नहीं होती। उन की सब से बड़ी गलती तो यह होती है कि वे इस मार्ग पर पैर रखते ही आसमान फाड़ डालना चाहते हैं। वे किसी समाचार पत्र के दफ्तर में एक साधारण रिपोर्टर या संवाददाता हो कर काम करना पसन्द नहीं करते, वरन् सीधे संपादक या यदि यह उतना सुलभ न हुआ तो उपसंपादक तो ज़रूर होना चाहते हैं। कभी-कभी तो किसी प्रचलित पत्र में इस प्रकार का स्थान न पाकर वे नया पत्र तक

निकालने की धृष्टता कर बैठते हैं; किन्तु किसी हालत में संपादक से नीची जगह पर काम करने के लिए तैयार नहीं होते। ऐसे लोगों के असफल होने की सदा आशंका रहती है और साधारण अनुभव से यह बात सिद्ध भी की जा चुकी है कि ऐसे लोग— जिन में अत्यंत असाधारण प्रतिभा और योग्यता होती है उन मनुष्यों को छोड़ कर प्रायः सब—असफल ही होते हैं। बात भी ठीक है। दौड़ने के पहिले चलना सीखना चाहिए। सीढ़ी का एक एक डंडा पकड़ कर ही ऊपर चढ़ना चाहिए। रिपोर्टर आदि छोटे स्थान से शुरू करके ही बढ़ते-बढ़ते संपादक बनने का प्रयत्न करना चाहिए, एकबारगी नहीं। अत्यधिक महत्वाकांक्षा अनिष्ट होती है। जिन विचारों में प्रौढ़ता नहीं होती वे कोई शक्ति नहीं रखते। अप्रौढ़ विचार लेकर कोई मनुष्य सम्पादकीय विचार नहीं प्रकट कर सकता और यदि वह ऐसा करता है तो अनधिकार चेष्टा करता है और अपने इस कार्य से न केवल अपने-आप को वरन् देश को भी हानि पहुंचाता है। इस लिए जब तक सम्पादकीय कार्य का अनुभव न हो जाय और विचारों में प्रौढ़ता न आ जाय तब तक सम्पादक बनने की महत्वाकांक्षा करना श्रेयस्कर होने की अपेक्षा कहीं अधिक हानिकर होता है।

पत्रकार के लिए शिक्षा सम्बन्धी किसी असाधारण योग्यता की आवश्यकता नहीं होती। यह आवश्यक नहीं है, कि पत्रकार की हैसियत से सफलता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को असाधारण विद्वान् होना चाहिए। जो कुछ आवश्यक है वह

यह है कि उस में इतना साहित्यिक ज्ञान हो कि वह रोजमर्रा बोल-चाल की भाषा में समाचार लिख सके और साधारण बुद्धिमानी और सच्चाई के साथ, स्पष्ट शब्दों में उन पर अपने विचार प्रकट कर सके। उस के लिए धुरन्धर पण्डित होने की अपेक्षा बहुश्रुत होना अधिक आवश्यक होता है। फिर भी इस में सन्देह नहीं कि जो मनुष्य बहुश्रुत होने के साथ जितना अधिक विद्वान होगा वह उतनीही योग्यता से काम कर सकेगा। किन्तु साधारणतः पत्रकारों के लिए यही आवश्यक होता है कि वे किसी एक विषय का अधिक ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा अधिक विषयों का थोड़ा बहुत ज्ञान रखें। अंग्रेजी लेखकों के शब्दों में पत्रकार को समस्त विषयों का कुछ, और कुछ विषयों का समस्त ज्ञान होना चाहिए। (A journalist should know something of everything and everything of something) किन्तु समस्त विषयों में गति रखना मनुष्य के जैसे अल्प जीवन के लिए संभव नहीं होता इस लिए सब विषयों का ज्ञाम न होने पर भी हताश न हो जाना चाहिए। पत्रकार का काम इस से भी चल सकता है कि जिन विषयों का ज्ञान उसे न हो उन विषयों के संबंध में वह यह जानता हो कि उनका ज्ञान कहां से प्राप्त हो सकता है। उस में सब कुछ जानने की बड़ी विलक्षण जिज्ञासा होनी चाहिए। संसारकी उपेक्षा के दार्शनिक विचार उसके लिए कदापि श्रेयस्कर नहीं। वे व्यक्ति जो यह कह कर कि हमें अमुक घटना से क्या पड़ी है, किसी घटना के सम्बन्ध में उपेक्षा

प्रकट करते हैं, पत्रकार बनने के योग्य नहीं होते। पत्रकार को तो घटनाओं और उन के कारणों, परिणामों की उधेड़ बुन में रात दिन लगा रहना चाहिए।

पत्रकारों की योग्यता और उनके गुणों की गिनती गिनाना बहुत कठिन है। उनके गुण प्राय: नैसर्गिक होते हैं। फिर भी बहुत अभ्यास करने से भी वे प्राप्त किये जा सकते हैं। सच्चरित्रता, वाक्पटुता, सौम्यभाव, आशावादिता, सत्यता, दया, दूरदर्शिता, साहस, विवेकशक्ति, उत्तरदायित्व की भावना, सावधानी, तत्परता, उत्साह आदि पत्रकार के लिए आवश्यक नैसर्गिक गुण हैं, ये मनुष्य में पैदा नहीं किये जा सकते। किन्तु न्यूनाधिक मात्रा में ये सब मनुष्यों में विद्यमान अवश्य रहते हैं। इसलिए यदि इनका निरंतर अभ्यास किया जाय तो ये खिल अवश्य उठेंगे। समय पर निर्धारित क्रमानुसार काम करने की आदत भी एक नैसर्गिक गुण है। यह गुण पत्रकार के लिए शायद सबसे अधिक आवश्यक होता है। पत्रकार बनने की इच्छा रखनेवालों को इसका अभ्यास विशेष रूप से करनाचाहिए। इसी प्रकार किसी काम को शीघ्रतापूर्वक समाप्त करने की आदत भी पत्रकारों के लिए बहुत लाभप्रद गुण है। किन्तु इस गुण के संबंध में इतना ध्यान रखना चाहिए कि शीघ्रता की धुन में काम की अच्छाई का भोग न लग जाय। काम की अच्छाई के साथ यदि शीघ्रता हो, तो लाख अच्छा किन्तु काम को बिगाड़ कर शीघ्रता करना कदापि श्रेयस्कर नहीं होता। एक बात की ओर और भी ध्यान रखना चाहिए। वह यह

कि पत्रकार जनता का विश्वासपात्र सेवक होता है, और जिस प्रकार एक स्वामिभक्त सेवक को अपनी विश्वासपात्रता क़ायम रखने की ज़रूरत होती है उसी प्रकार जनता के इस सेवक को भी अपनी विश्वासपात्रता सर्वव्ययेऽपि बनाये रखनी चाहिए। विश्वासघात करना ऐसे ही महा पाप है, फिर इस अत्यन्त उत्तरदायित्व और महत्वपूर्ण कार्य में तो वह महान् से भी महानतर पाप है। पत्रकारोंके लिए यह भी बहुत आवश्यक होता है कि उनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र और बहुग्राही हो अर्थात् ऐसी हो जो बहुत सी बातों को धारण कर सकती हो और धारण कर सकती हो, अल्प काल के लिए ही नहीं चिरकाल के लिए। सब बातें 'नोटबुक' में दर्ज नहीं की जा सकतीं कि जब लिखने बैठें तब नोटबुक खोलकर सब बातें जान लें, और न सब किताबों के गट्ठर ही सब जगह प्राप्त होते हैं कि अवश्यकता पड़ने पर उनकी मदद मिले। पत्रकारों के लिए इस प्रकार के अनेक अवसर आते हैं, जब काग़ज क़लम के अलावा उनके पास और कुछ नहीं होता। ऐसे अवसरों पर उन्नत स्मरण शक्ति ही काम आती है।

पत्रकार को अन्य आवश्यक योग्यताओं के साथ-साथ प्रेस-संबंधी उन तमाम बातों को जानने की भी जरूरत होती है जिनसे पत्र बनने में सहायता मिलती है। उसे अधिक से अधिक मित्र बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। अपना व्यवहार उसे ऐसा मधुर बना लेना चाहिए जिससे शत्रु तो कोई हो ही नहीं। अक्षर सुन्दर और साफ लिखने का अभ्यास भी पत्रकार के लिए बहुत लाभ

की वस्तु होती है। यह सरलतापूर्वक प्राप्त भी किया जा सकता है, सिर्फ थोड़ी-सी सावधानी की जरूरत है। इसके अतिरिक्त जैसे अन्य विषयों से संबंध रखने वाले लोगों को तद्विषयक विशेषज्ञों के जीवनचरित्र पढ़ने की जरूरत होती है वैसे ही पत्रकारों के लिए भी अच्छे-अच्छे पत्रकारों के जीवनचरित्र पढ़ने की आवश्यकता होती है। इससे उन्हें नया उत्साह मिलेगा। पत्रकारों के लिए यह नितांत आवश्यक होता है कि वे अधिकाधिक समाचार-पत्र पढ़ने के आदी हों; पत्रकारीय कार्य में नये-नये प्रवेश करनेवालों के लिए तो यह बहुत ही अधिक आवश्यक होता है कि वे अधिक संख्या में समाचारपत्र पढ़ें और उनके मुख्य लेखों पर खास तौर से मनन करें। खास-खास पत्रों के संबंध में तो उन्हें यह नियम बना लेना चाहिए कि उन पत्रों का एक-एक अक्षर वे पढ़ जाया करें। इन योग्यताओं और गुणों के साथ यदि पत्रकार में साधारण फ़ोटोग्राफरी की योग्यता भी हो, तो उसके काम में अधिक सहायता मिल सकती है।

पत्रकार अनेक हो गये हैं। विदेशों में तो उनकी संख्या बहुत ही अधिक है। हमारे देश में भी उनकी संख्या बढ़ रही है। विदेशी पत्रकारों की गणना करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। किन्तु अपने यहां के पत्रकारों का स्मरण किये बिना भी नहीं रहा जा सकता। अपने यहाँ के प्रचीनतम पत्रकारों का उल्लेख करते हुए श्रीनरदेव शास्त्री ने कुछ दिन हुए एक लेख में (स्मरण नहीं, कि वह किस पत्रिका में निकला था) व्यासादिक ऋषियों को

पत्रकार बताया था। द्वितीय गुजराती-पत्रकार परिषद् के सभापति, गुजराती भाषा के प्रसिद्ध 'गुजराती' पत्र के सुयोग्य संपादक श्रीमणिलाल इच्छाराम देशाई ने भी अपने भाषण में वाल्मीकि व्यासादि ऋषियों को पत्रकार कहा है। बात कुछ अंशो में भले ही ठीक मालूम हो, किन्तु मेरी समझ से इन महर्षियों को पत्रकारों की श्रेणी में गिनना उचित नहीं है। वाल्मीकि, व्यासादि ऋषियों ने ग्रन्थों का लेखन और संपादन अवश्य किया और इसलिए वे लेखक और संपादक थे, इस से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। किन्तु उनका वह महान् काम उस श्रेणी का काम नहीं था जिस श्रेणी के काम का जिक्र वर्तमान पत्रकार-कला में किया जाता है। ऊपर कहा जा चुका है कि पत्रकार-कला का महत्व प्रायः अल्पकालिक होता है। उन महर्षियों का काम अल्पकालिक तो क्या स्थायी और शाश्वत था। इसलिए और इसलिए भी कि वर्तमान पत्रकार-कला का उद्गम उन महर्षियों के कार्यों के आधार पर नहीं हुआ, वे पत्रकार कहे जाने योग्य नहीं माने जा सकते। इन महापुरुषों की गणना शीर्षस्थानीय ग्रन्थकारों में ही शोभापाती है और वहीं उनका विशिष्ट स्थान होना भी चाहिए। हमारे यहां पत्रकारों का प्रादुर्भाव अभी थोड़े समय पहिले का है और वास्तविक पत्रकार-कला तो स्वर्गीय शिशिरकुमार घोष, स्वर्गीय लोकमान्य तिलक, स्वर्गीय मोतीलाल घोष, स्वर्गीय सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी आदि के जमाने से प्रारम्भ हुई। श्रीसुब्रह्मण्य ऐयर, श्रीरामानंद चैटर्जी, श्रीचिंतामणि, श्रीनटराजन, आदि इसी युग के

प्रसिद्ध पत्रकार हैं। पत्रकार-कला की उन्नति करने में इन महा-रथियों ने बड़ी सहायता दी है। श्री एन० सी० केलकर, लाला लाजपतराय, म० गांधी आदि से भी इस विषय में अमूल्य सहायता प्राप्त हुई और हो रही है।

हिंदी में जिन महज्जनों ने पत्रकार-कला को उन्नत किया है उन में स्वर्गीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, स्वर्गीय रुद्रदत्त जी, स्वर्गीय श्रीबालकृष्ण भट्ट, स्वर्गीय राधाचरण गोस्वामी, स्वर्गीय दुर्गाप्रसाद जी, स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्त, श्रीअमृतलाल चक्रवर्ती, स्वर्गीय प्रताप नारायण मिश्र, स्वर्गीय माधवराव सप्रे, के नाम विशेष स्थान रखते हैं। इस श्रेणी में एक महा पुरुष का नाम लेना अभी और बाकी है। वह है आचार्य श्रीमहावीर प्रसाद द्विवेदीजी का नाम। द्विवेदीजी ने इस कला की प्रवाह धारा ही मोड़ दी। सरस्वती के सजे हुए पटल पर अपनी ओजस्विनी लेखनी द्वारा आचार्य महावीर प्रसादने पत्र-कार-कला का एक नया ही रूप सामने ला उपस्थित किया। नये आकार-प्रकार में नये ढंग से मासिक पत्र निकालने का आदि श्रेय आपही को है। द्विवेदीजी की सेवाएँ इस विषय में बहुत बड़ी हैं, और हिंदी-संसार उनसे कभी उऋण नहीं हो सकता। इन सज्जनों के अतिरिक्त श्रीअम्बिका प्रसाद बाजपेयी, श्रीकृष्णकान्त माल-वीय, श्रीसुन्दरलाल, श्रीगणेशशङ्कर विद्यार्थी, श्रीमाखनलाल चतु-र्वेदी, श्रीबाबूराव विष्णुपराड़कर, श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे, श्रीश्री-प्रकाश, श्रीराजेन्द्र प्रसाद, श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डन, श्री बी० एस० पथिक आदि सज्जनों ने इस कलाकी उन्नति के लिए बहुत कुछ

किया और बराबर करते जा रहे हैं। श्रीमहादेव प्रसाद सेठ को इस कला के एक विशेष अंग को ला उपस्थित करने का श्रेय है। यद्यपि 'रमता योगी' और 'मनसुखा' की कृपा से हास्य-पूर्ण टिप्पणियों से सजे हुए समाचारों का प्रकाशित होना पहले ही से शुरू हो गया था तथापि विशेष रूपसे ऐसे समाचारों से सजे हुए पत्रको निकालने का श्रेय सेठजी को ही है। श्रीनवजादिक लालजी श्रीवास्तव के मूल्यवान सहयोग से सेठजी ने इस दिशा में काफी काम भी किया। श्रीविश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने भी गल्पात्मक— मासिक पत्र निकालकर एक नया काम पेश किया था, किन्तु दुर्भाग्यवश वह चल न सका। इसके पहिले से भी दो एक ऐसे पत्र निकलते थे; जिनमें से कुछ अब तक चल भी रहे हैं। किन्तु कौशिकजी का पत्र अपने ढंगका निराला था।

हमारे यहां के बहुत से पत्रकार विदेशों में पड़े हुए हैं। कुछ तो अपने निजी कारणोंसे और अधिकांश विदेशी शासन के पापके कारण विदेशों की खाक छान रहे हैं। राजा महेन्द्र प्रताप' श्री एम्० एन्० राय, लाला हरदयाल, डा० तारक नाथ दास, डा० सुधीन्द्र बोस, श्री सैयद हसन, सेंट निहाल सिंह आदि न जाने कितने योग्यतम पत्रकार बाहर पड़े हुए हैं। यदि हमारी यह बहु-मूल्य विभूति यहां होती, तो आज हमें न जाने कितना लाभ प्राप्त हुआ होता। किन्तु पराधीनता की परसन्तापिनी राक्षिसिणी यह कब होने देती है? हमारे सौभाग्य का वह बहुत बड़ा दिन होगा जब पराधीनता की बेड़ियों को काटकर हम अपने इन निर्वासित

नररत्नों को अपने बीचमें ला सकेंगे, और इनकी ज्ञानमाला, विचार प्रौढ़ता और अनुभव से अपनी पत्रकार-कलाको समुन्नत और सुसज्जित कर सकगे।



समाचार-पत्र

(ऐतिहासिक दृष्टि-कोण)

—:*:—

संसार के वर्तमान वातावरण में समाचार-पत्रों का स्थान कितना महत्वपूर्ण है, यह वतलाने की आवश्यकता नहीं। भारतवर्ष की बात तो मैं नहीं कहता, किन्तु विदेशों में बड़ी-बड़ी संधियाँ करवा देना और बड़े-बड़े युद्ध छिड़वा देना वहां के समाचार पत्रों का एक आसानसा काम होता है। इसीलिए विदेशों में, राष्ट्र के प्रसिद्ध तीन अंगों—पूंजी-पतियों, पुरोहितों और जन-साधारण के समुदायों के अतिरिक्त एक चौथा अंग समाचार-पत्र समुदाय भी माना जाने लगा है। इसका प्रभाव दिनों-दिन वृद्धि कर रहा है। इङ्गलैंड, अमेरिका, जापान आदि देशों के लिए तो यहां तक कहा जाता है कि "वहां के राष्ट्रों को उसी पथ पर चलना प ;ता है, जिस पथपर वहां के समाचार-पत्र उन्हें चलाना चाहते हैं"। जो हो, इस में कोई सन्देह नहीं कि, समाचार-पत्रों का स्थान बहुत ऊंचा है। भारतवर्ष में भी इन की महत्ता धीरे-धीरे बढ़ रही है। देश के सब श्रेणी के मनुष्यों को अब इन की महत्ता और उपयोगिता प्रतीत होने लगी है। अभी तक सत्ताधारी लोग कुछ उपेक्षा सी करते थे। वे समाचार-पत्रों का ।पढ़ना और अपने संबंध के कोई समाचार उन में छापने के लिए भेजना अपनी शान

के ख़िलाफ समझते थे। किन्तु अब यह बात नहीं रही। अब तो समाचार-पत्रों का पढ़ना बड़े बड़े सत्ताधीश और भी आवश्यक समझने लगे हैं। क्योंकि उन्हें सदा इस बात की चिन्ता रहती है कि कहीं कोई समाचार ऐसा तो प्रकाशित नहीं हो रहा है जो उनकी स्थिति के संबंध में कोई भ्रम फैला रहा हो। और जब इस प्रकार का कोई समाचार प्रकाशित होता है, तब वे शिघ्रता-पूर्वक उसका विरोध करवाते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्रों की महत्ता अब प्रायः सभी मानने लगे हैं।

इन पंक्तियों में इसी महत्वपूर्ण विषय पर कुछ लिखने का प्रयत्न किया जायगा। यह समाचार पत्रों का एक ऐतिहासिक पर्यालोचन सा होगा। किन्तु विषय में प्रवेश करने के पहिले, इस स्थान पर, "समाचार-पत्र" शब्द पर थोड़ा-सा प्रकाश डाल देना अनुचित न होगा। समाचार-पत्रों का नाम साचार-पत्र ही क्यों पड़ा, समाचार- ग्रन्थ, समाचार-पुस्तक, समाचार-लेख आदि नाम इसे क्यों न दिये गये, यह एक जानने योग्य बात है। समाचार-पत्र नाम की सम्पत्ति हमने अंग्रेज़ी शासकों से प्राप्त की है। अंग्रेजी में समाचार पत्रों को न्यूज़ पेपर्स के नाम से पुकारते हैं। हिन्दी में न्यूज़ पेपर्स का अर्थ समाचार-पत्र होता है। हमने वही शब्द अपने लिए ग्रहण कर लिया है। इसलिए हिन्दी में इस शब्द के इतिहास में कोई रहस्य नहीं; किन्तु अंग्रेजी में इस शब्द का ख़ासा मनोरञ्जक इतिहास है। पहिले अंग्रेजी में समाचार पत्रों का नाम न्यूज़ पेपर नहीं था जैसा आगे के वर्णन से मालूम होगा। पहिले

समाचार-पत्रों का जन्म विशेष कर्मचारियों या संवाददाताओं द्वारा अधिकारियों के पास भेजे जाने वाली चिट्ठियों से हुआ। ये चिट्ठियां एक साथ जिल्द बांध कर सार्वजनिक मिसल (Public Record) की भांति रखी जाती थीं। इसलिए पहिले इनका नाम न्यूज़ बुक (समाचार ग्रन्थ) रखा गया। फिर जब एक संवाददाता अनेक अधिकारियों के पास समाचार चिट्ठियां भेजने लगा तब इसका नाम न्यूज लेटर (समाचार चिट्ठी) तथा कुछ और आगे चल कर न्यूज़ शीट (समाचार कागज) पड़ा। इसके बाद धीरे धीरे समाचार-पत्रों की विशेष उन्नति हुई, और इनका नाम न्यूज़ पेपर (समाचार-पत्र) पड़ा। हिन्दी ने इसी नाम को अपना लिया।

समाचार-पत्रों के जन्म के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पहिले जब समाचार-पत्र न थे, तब यह चलन था कि राष्ट्र के बड़े बड़े अधिकारी, अपने आदमी विशेष स्थलों पर नियुक्त कर देते थे। ये लोग अपने स्थान की ख़ास ख़ास बातें पत्र के रूप में लिख कर अधिकारियों की सूचना के लिए भेजा करते थे। धीरे धीरे व्यय-भार से बचने के विचार से एक से अधिक अधिकारी एक ही आदमी से समाचार मँगवाने लगे। दूसरी ओर ऐसे आदमी भी यह प्रयत्न करने लगे कि वे अकेले ही कई अधिकारियों को समाचार भेज कर अधिक धन उपार्जन करें। इस प्रकार काम करने से एक ओर तो अधिकारियों को लाभ हुआ—वे अलग अलग आदमी रखने का अधिक व्यय भार उठाने से बचने लगे,

दूसरी ओर इस प्रकार के संवाद्-दाताओं की आमदनी भी, कई अधिकारियों से थोड़ी-थोड़ी सहायता मिलने के कारण बढ़ गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार के संवाद्-दाताओं की संख्या बढ़ने लगी। एक-एक संवाद्-दाता के पास कई अधिकारियों का काम आ जाने से एक ही समाचार कई बार लिखने की जरूरत पड़ने लगी। और इसी प्रकार जब चिट्ठियों की संख्या बहुत अधिक होगयी और छापेखानों का आविष्कार हो गया, तब संवाददातागण अधिक परिश्रम से बचने के लिए चिट्ठियाँ छपवा कर अधिकारियों के पास भेजने लगे। इन्हीं चिट्ठियों ने आगे चलकर समाचार-पत्रों का रूप धारण किया। इन चिट्ठियों में लड़ाई की खबरें, चुनाव की बातें, खेल-कूद की सूचनाएँ, आग आदि दुर्घटनाओं के समाचार भेजे जाते थे। ये चिट्ठियाँ सार्वजनिक मिसलों के रूप में सुरक्षित रीति से रखी जाती थीं। कभी-कभी तो यह भी होता था कि एक प्रांत के अधिकारी दूसरे प्रांत के अधिकारियों को सूचना देने के विचार से इन चिट्ठियों को भिन्न-भिन्न स्थानों में भेजते भी थे। इस प्रकार पत्रों के विभिन्न स्थानों में भेजने की भी नींव पड़ गई थी, और समाचार-पत्रों के अनुरूप सब सामान तैयार होगया था। फिर अनुकूल समय पाकर वे वास्तविक समाचार-पत्रों के रूप में सामने आये। अब वे केवल अधिकारियों के पास भेजी जानेवाली चिट्ठियाँ ही नहीं रहे वरन् एक सार्वजनिक संपत्ति हो गये हैं।

समाचार-पत्र की परिभाषा भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न रूप

से करते हैं। इंग्लैण्ड का न्यूज पेपर लायबल् रजिस्ट्रेशन एक् इस की परिभाषा इस प्रकार करता है:—

Any paper containing public news, intelligence or occurrences or any remark or observations therein printed for sale and published periodically or in parts or numbers at intervals not exceeding 26 days

अर्थात् कोई भी पर्चा समाचार-पत्र कहा जायगा, बशर्ते कि उसमें सार्वजनिक समाचार सूचनाएँ या घटनाएँ छपी हों, अथवा इन समाचारों के संबंध में कोई टीका—टिप्पणी हों, और वह एक निश्चित अवधि के बाद, जो २६ दिन से अधिक की न हो, बिक्री के लिए प्रकाशित होता हो।

ब्रिटिश पोस्ट आफिस के नियमों में समाचार-पत्र की यह परिभाषा दी गयी है:—

Any publication printed and published in numbers at intervals not more than seven days consisting wholely or in parts of political or other news or of articles relating thereto or of other current topics with or without advertisement

अर्थात् ऐसे परचे, जो निश्चित अवधि के बाद, जो ७ दिन से अधिक की न हो, प्रकाशित होते हों और जिनमें राजनीतिक या अन्य प्रकार के समाचार या उनके संबंध के लेख प्रकाशित होते

हों, समाचार-पत्र माने जायँगे, चाहे उनमें विज्ञापन हो या न हो।

भारतीय प्रेस एक्ट में समाचार-पत्रों की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:—News paper means any periodical work containing public news or comments on public news

अर्थात् समाचार-पत्र ऐसे किसी भी सामयिक पत्र को कहते हैं, जिसमें सार्वजनिक समाचार होते हैं या सार्वजनिक समाचारों पर टीका टिप्पणी दी हुई होती है।

साधारण व्यवहार में समाचार-पत्र उस पत्रको कहते हैं जो रोजाना या अधिक से अधिक हफ्तावार प्रकाशित होता है और जिसमें प्रधानतया प्रचलित घटनाओं के समाचार या उनपर की गयी टीका टिप्पणी आदि छपी रहती हैं। सप्ताहसे अधिक अवधिमें प्रकाशित होने वाले पत्र समाचार-पत्र नहीं कहलाते। उन्हें पाक्षिक मासिक, त्रैमासिक पत्र आदि के नाम से पुकारा जाता है और उनमें समाचारों की अपेक्षा विशेष विषयों पर लिखे गये लेखों का बाहुल्य होता है। समाचार-पत्र और सप्ताह की अवधि से अधिक समय के बाद प्रकाशित होनेवाले पत्रों में यह अन्तर होता है कि समाचार-पत्रों का महत्व अधिकांश में अल्पकालिक होता है और उनका स्थायी।

समाचार-पत्रों के इतिहास के आदि काल के सम्बन्ध में कोई बात निश्चित रूप से सामने नहीं आयी। कौनसा समाचार-पत्र पहिले निकला, इसका कोई सप्रमाण उत्तर नहीं मिलता। प०

नन्दकुमार देव शर्मा अपनी "पत्र-सम्पादन कला" नाम की पुस्तक में उस किंबदन्ती को अधिक मान्य समझते हैं, जिसके अनुसार कहा जाता है कि सब से पहिले चीन का "किङ्गचाउ" नामक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटैनिका के 'न्यूज़ पेपर' शीर्षक लेख के लेखक 'चाइनीज़ पेकिङ्ग गजट' और 'रोमन एक्टा डिओरना (Roman Acta Diorna) नामक पत्रों को सबसे पुराने पत्र मानते हैं। किन्तु वे निश्चित रूप से किसी विशेष पत्र की प्राचीनता नहीं सिद्ध कर सके। जहां तक प्राचीनता सिद्ध करने की बात है, वहां तक पण्डित नन्दकुमारदेव जी भी असफल ही रहे हैं। उन्होंने सिद्ध करने की चेष्टा ही नहीं की। शायद उसकी आवश्यकता भी नहीं। एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटैनिका के उपर्युक्त लेखक महाशय ने 'मन्थली पेकिङ्ग न्यूज़' नामक पत्र का पता लगाया है। कहते हैं, यह पत्र छठी शताब्दीमें चीन की राजधानी पेकिङ्ग से निकलता था, इसके बाद पेकिङ्ग गजट नामक पत्रकी खोज मिलती है। इस पत्रका समय एनसाइक्लो-पिडिया ब्रिटैनिका के अनुसार ६१८—९०५ है, परन्तु पं० नन्दकु-मारदेव शर्मा अपनी पुस्तक में जो संबत् १९८० में प्रकाशित हुई है, लिखते हैं, कि पेकिङ्ग गजट 'एक' वर्ष से निकलता है। मुझे शर्माजी की पुस्तक में छापे की कुछ गलती मालूम होती हैं। इस का सबसे सबल कारण यह है कि शर्माजी आगे चलकर लिखते हैं कि इस पत्रके सत्रह संपादक अब तक फांसी पर लटकाये जा चुके हैं। एक साल की अवधि में १७ संपादकों को फांसी देदेने

की बात समझने में नहीं आती। अस्तु। समाचार पत्रों का सुदूर भूतकालिक इतिहास अन्धकारमय है। पहिले नियमित रूप से समाचार पत्रोंका कोई प्रबन्ध भी नहीं था। उनका वास्तविक जन्म छापेखाने के आविष्कार के साथ हुआ। किन्तु पहिले पहिल वे कहां से प्रकाशित हुए, इस संबंध मत-भेद हैं। कुछ लोग यूरोप को और कुछ चीन को पत्रों का प्रथम जन्म-स्थान मानते हैं। इस संबंध में चीन का पक्ष अधिक सबल है। चीन में ६०१ तक में जब छापेखाने का आविष्कार भी नहीं हुआ था, समाचार-पत्रों का पता लगता है। उस समय "कियल" नामका अच्छा समाचार-पत्र निकलता था। कहते हैं, यह समाचार-पत्र बीच का थोड़ासा समय छोड़ कर जब यह किसी कारण में बंद होगया था, तीन चार सदियों तक चला और पिछले दिनों में तो दिन में तीन तीन बार तक प्रकाशित होता रहा। यूरोपमें इतनी जल्दी कोई समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं हुआ। वहां पर सबसे पहिले इटली और जर्मनी में समाचार-पत्रों का जन्म होना बताया जाता है, किन्तु वहां भी इतने पहिले से समाचार-पत्र निकलने की कोई बात मालूम नहीं पड़ती। जर्मनी और इटली के बाद फ्रांस का नंबर आता है। यहां पर सन् १६३१ के पहिले किसी प्रकार के समाचार-पत्र का सुराग नहीं लगता। सन १६२१ में वहां के एक प्रसिद्धि डाक्टर अपने रोगियों को बहलाने के विचार से कागज़ पर इधर उधर के समाचार लिख कर सुनाया करते थे। धीरे धीरे ज्यों-ज्यों लोगों में इस प्रकार के

समाचार पढ़ने की रुचि बढ़ी त्यों-त्यों डाकृर साहब ने वह पर्चा और अधिक संख्या में प्रकाशित करना शुरू कर दिया, और उस की कीमत भी मुकर्रर करदी। फिर यही पर्चे समाचार-पत्र के रूपमें निकले और बाजार में आम-तौर से बिकने लगे। कहते हैं, कि इसी प्रकार वहां समाचार-पत्रों का जन्म हुआ। बाद में यह विषय बहुत महत्वपूर्ण समझा जाने लगा। एक मरतवा एक फ्रांसीसी सज्जन ने समाचार-पत्र निकालने के संबंध में बड़े जोर दार शब्दों में कहा थाः—

"Suffer yourself to be blamed, imprisoned condemned; suffer yourself even to be hanged, but publish your opinions. It is not only a right but it is a duty", समाचार-पत्र निकालने के कारण चाहे कोई कोसे, चाहे जेल में डाले चाहे निंदा करे और चाहे फांसी पर भी लटका दे, किन्तु तुम अपनी राय अवश्य प्रकाशित करो। यह तुम्हारा अधिकार ही नहीं कर्तव्य भी है।

कहते हैं लोगों में फ्रांसीसी सज्जन के इस कथन का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और वे समाचार पत्र निकालने की ओर अधिक ध्यान देने लगे। अंग्रेजी भाषा का सब से पुराना समाचार-पत्र "आक्स फर्ड गज़ट" माना जाता है। इसका प्रकाशन १६६५ ईसवी में हुआ था किन्तु इस प्रकार से यत्र तत्र प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों के होते हुए भी जिस रूप आज कल समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं उस रूप में उनका वास्तविक प्रकाशन १८वीं शताब्दी से शुरू हुआ। इसी

शताब्दी में लंदन के "टाइम्स" नामक विख्यात पत्र का भी जन्म हुआ था।

भारत वर्ष में अंग्रेजों के शासन-काल से पहिले समाचार-पत्रों का कोई पता न था। सबसे पहिले अंग्रेजी शासन-काल में और अंग्रेज अधिकारियों द्वारा ही समाचार पत्र निकाला गया। इस पत्र का नाम "कलकत्ता गज़ट" था। स्वतंत्र रूपसे पहिला पत्र सन् १७८० ईसवी में "हिकीज़ बंगाल गज़ट" के नाम से प्रकाशित हुआ। किंतु वे अखबार अंग्रेजी भाषा में निकलते थे। देशी भाषा में सब से पुराना समाचार-पत्र "समाचार दर्पण" बताया जाता है। इसे ईसाइयों ने १८१८ ईसवी में रायपुर में प्रकाशित किया था। वर्तमान पत्रों में देशी भाषा का सबसे पुराना समाचार-पत्र गुजराती का 'बंबई समाचार' नामक पत्र है। इसका जन्म १८२२ में हुआ था। उर्दू की अख़बार नवीसी का इतिहास सन् १८३३ ईसवी से शुरू होता है। कहते हैं इस सन में देहली से उर्दू का एक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ था। किंतु उस पत्र के नाम के संबन्ध में कोई बात सप्रमाण नहीं मिलती। स्व० बा० बालमुकुन्द गुप्त ने अपनी निबंधावली में उसे "उर्दू अख़बार" के नामसे याद किया है। दूसरा पत्र जिसके संबन्ध में कुछ बात मालूम हैं, लाहौर से प्रकाशित होनेवाला 'कोहेनूर' नामक पत्र है। यह पत्र सन् १८५० में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद 'अवध अख़बार' 'अखबारे आम' 'अवध पत्र और उर्दू के कई अन्य समाचार-पत्र प्रकाशित हुए और इस समय अनेक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। उर्दू के अधिकांश पत्र

पंजाब से प्रकाशित होते हैं। युक्त-प्रान्त और बंगाल से भी कई पत्र उर्दू में निकलते हैं।

हिन्दी समाचारपत्रों का इतिहास सब से ताजा है। बंगला, गुजराती, मराठी, उर्दू आदि देश की प्रायः सब प्रमुख भाषाओं के जब समाचार पत्र निकल चुके थे तब हिन्दीमें इनका नाम लिया गया। काशी निवासी श्रीराधाकृष्ण दास ने हिन्दी समाचार-पत्रों का एक इतिहास लिखा था। प्रारम्भिक समाचार पत्रों के इतिहास का वही आधार स्व० बा० बालमुकुंद ने भी लिया है। अपने इतिहास ग्रन्थ में श्री राधाकृष्ण दास ने 'बनारस समाचार' नामक पत्र का सबसे पुराना हिन्दीका पत्र कहा है। यह पत्र राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने १८४५ ईसवी में प्रकाशित करवाया था। इस के संपादक एक महाराष्ट्र सज्जन थे, जिनका नाम श्री गोविन्द रघुनाथ थत्ते था। कहते हैं कि इस पत्र की भाषा बहुत त्रुटिपूर्ण थी। भाषा का सुधार वास्तव में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय से हुआ। इसके पहिले श्रीलल्लूलालजीने गद्य लिखनेका श्रीगणेश कर दिया था किंतु वास्तविक उन्नति बाबु हरिश्चन्द्रके ज़मानेमे ही हुई। भारतेन्दुजी ने प्रारम्भ में "कवि वचन सुधा" नामक एक मासिक पत्र निकाला। सन १८६८ में इस पत्र का पहिला अंक सामने आया। "कवि बचन सुधा" में पहिले प्राचीन कवियों की कविताएं प्रकाशित होती थीं। धीरे-धीरे भारतेन्दु बाबू का ध्यान गद्य की ओर गया और उन्होंने अपने पत्र में गद्य को भी स्थान देना शुरू किया। और उसे मासिक से क्रमशः पाक्षिक और अन्तमें साप्ता-

हिक समाचार-पत्र बना दिया। इस पत्रमें राजनीति समाज शास्त्र, साहित्य, आदि विषयों पर लेख प्रकाशित होते थे। इस पत्र के तीन साल बाद अलमोड़ा से "अलमोड़ा समाचार" नामक एक समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ। यह पहिले से ही साप्ताहिकके रूप में सामने आया। इसके बाद सन १८७२ ईसवी में बांकीपुर से "बिहार बन्धु"नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशन में पं० केशवराम भट्ट और पं० साधोराम भट्ट का उद्योग विशेष उल्लेखनीय है। इन पत्रों के अतिरिक्त स्व० लाला श्रीनिवास दास के प्रयत्न से दिल्ली से "सदादर्श"नामका पत्र सन १८७४ में निकला। सन १८७६ में अलीगढ़ से बाबू तोताराम वर्मा के प्रयत्न से "भारत बन्धु"नामक साप्ताहिक समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। और फिर धीरे-धीरे नवीन प्रणाली के समाचार पत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। "मित्र विलास", "सार सुधानिधि", "उचितवक्ता", "भारत मित्र", आदि कई समाचार पत्र सामने आये और इस समय तो समाचार पत्रों की आवश्यकता से अधिक भरमार है।

"आवश्यकता से अधिक" कहने से मेरा अभिप्राय बहुत कुछ वैसाही है जेसा कि प्रथम संपादक सम्मेलन के सुयोग्य सभापति पं० बाबूराव विष्णु पराड़करने अपने भाषणमें एक स्थान पर व्यक्त किया है। वास्तव में हिन्दी जनता समाचार पत्रों के लाभों का अनुभव नहीं कर रही है। उसे उनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। किन्तु समाचारपत्र एक प्रकार से जबरदस्ती उसके सर मढ़े जाते हैं और उसे समाचार पत्रोंकी महत्ता अनुभव करायी जाती है।

इसीलिए मै "आवश्यकता से अधिक" भरमार का जिक्र करता हूं। वैसे तो भारतवर्ष जैसे विशाल देश के लिए और हिन्दी जैसी व्यापक भाषाके लिए इससे कई गुने अधिक समाचारपत्र भी हों तो भी थोड़े ही सिद्ध होंगे। आवश्यकता से अधिक भरमार कहने में मेरा एक अभिप्राय यह भी है कि हिन्दी में कुछ इने गिने समाचार पत्र ही ऐसे हैं जो देश के लिए हितकर अतः आवश्यक सिद्ध हो सकते हैं, अन्यथा अधिकांश में अनावश्यक समाचार पत्रों की ही भरमार है।

इस कथन से मेरा मतलब यह नहीं है कि हिन्दी में ऐसे समाचार पत्र हैं ही नहीं जो देश की बलशाली संपत्ति हों। इसके प्रतिकूल बात यह है कि हिन्दी में कई एक ऐसे पत्र हैं जो किसी भी भाषा के उच्चकोटि के पत्रोंसे मुकाबिला कर सकते हैं। दैनिक पत्रों में 'आज' 'विश्वमित्र' 'स्वतन्त्र' आदि, साप्ताहिक पत्रों में प्रताप, सैनिक, कर्मवीर, भारत, अभ्युदय तरुण राजस्थान आदि तथा मासिक पत्रोंमें विशाल भारत, त्यागभूमि, माधुरी, सरस्वती, आदि पत्र ऐसेहो उच्चकोटि के पत्रोंकी गणना में गिने जाने योग्य हैं। इन पत्रोंके अतिरिक्त और भी अनेक पत्र पत्रिकाएं हैं जो अपने अपने ढंग से देश और जाति की सेवाएं कर रही है। यहां पर मैंने महात्मा गान्धी के 'हिन्दी नवजीवन' का जिक्र नहीं किया। इसका कारण यह है कि वह इन पत्रों में से किसी की श्रेणी में नहीं आता। वह अपना एक विशेष स्थान रखता है। और उसकी शोभा अलग ही रहने में है। इस पत्र की एक त्रुटि अवश्य खटकती हैं, वह है भाषा

संबंधी। कुछ समय छोड़कर जब पत्र का संपादन भार पं० हरिभाऊ उपाध्याय के हाथ में था, इसकी भाषा सदा त्रुटि पूर्ण रही है। आज भी यही दशा है। इन त्रुटियों की ओर अधिक ध्यान देने की ज़रूरत है।

सबसे प्रारम्भ काल में हिन्दी के समाचारपत्रों में प्रायः साहित्यिक चर्चा रहती थी। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और जनता की प्रवृति भिन्न भिन्न दिशाओं की ओर मुड़ी त्यों त्यों अन्यान्य विषयों का भी प्रवेश होने लगा। अब यह स्थिति आगई है कि जनताकी भिन्न भिन्न रुचियोंकी तृप्ति करनेके विचारसे समाचार पत्र कई विभिन्न विषयों को अपनी अपनी विभिन्न नीतियों के साथ प्रकाशित होते हैं। साहित्य, राजनीति, धर्म, मनोरञ्जन, देशी राज्य, खोज, स्त्री, बालक, व्यापार आदि अनेक विषयों से संबंध रखनेवाले पत्र अलग अलग प्रकाशित हो रहे हैं। साहित्यिक पत्रोंमें सरस्वती, माधुरी, सुधा आदि पत्र धार्मिक पत्रोंमें आर्यमित्र,भारत मित्र, वीर आदि पत्र, राजनीतिक पत्रों में आज स्वतन्त्र, प्रताप, सैनिक आदि पत्र हैं। इस श्रेणी के पत्रों में प्रभा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय था। मासिक पत्रों में राजनीति की वही एक पत्रिका थी। उसके बन्द होजाने से हिन्दी संसार की बड़ी हानि हुई है। किन्तु इस ओर विशाल भारत और त्यागभूमि ने इस विषय को अपनाया है। मनोरंजन संबंधी पत्रों में मतवाला, हिन्दू पञ्च आदि पत्र (इस विषय के अकेले मासिक पत्र हिंदी मनोरंजन का उठ जाना भी खटकने की बात है) देशी राज्यों के सम्बन्ध में

तरुण राजस्थान, जयाजी प्रताप, आदि पत्र, खोज सम्बन्धी पत्रों में नागरी प्रचारणी पत्रिका आदि पत्र, स्त्रीउपयोगी पत्रों में स्त्री-दर्पण, गृहलक्ष्मी आदि बालोपयोगी पत्रों में बालसखा, बालक, शिशु खिलौना आदि पत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन पत्रों में अपने निश्चित विषय को अधिक स्थान मिलता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी समाचार पत्र हैं, जो केवल व्यावसायिक हैं जिनमें केवल व्यापार व्यवसाय की बातें ही स्थान पाती हैं।

इन भेदों के अतिरिक्त समाचार पत्रों के और भी कई भेद हो-गये हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि समाचार पत्रों का राजनीतिक प्रगति से बहुत घनिष्ट संबंध है। इसके कारण समाचार पत्र दो स्पष्ट श्रेणियों में विभक्त होगये हैं। एक निष्पक्ष समाचार पत्रों की श्रेणी हैं और दूसरी दलबन्दी वालों की। राजनीतिक जगत में मत भेद होने के कारण दल बन्दियां होने लगीं। तब प्रत्येक दल को अपने मत के प्रचार के लिए और देश में अपने अनुकूल वातावरण तैय्यार करने के लिए समाचार पत्रों की आवश्यकता पड़ी और प्रायः प्रत्येक दलने अपना एक मुख्य पत्र प्रकाशित किया। इस प्रकार के प्रचारक पत्र अनेक भाषाओं में प्रकाशित हुए। हिन्दी में भी वे समान रूप में प्रकाशित हुए। दल विशेष का समर्थन करने के लिए कुछ तो नये पत्र निकले और कुछ पुराने पत्र ही उसका समर्थन करते करते उसके मुख पत्र बन गये। अवतो दलबन्दी का रोग इतना बढ़ गया हैं कि बहुत ही कम समाचार पत्र इस रोग से मुक्त रह पाये है। और निष्पक्ष

समाचार पत्रों की संख्या कुछ इनी गिनी ही रह गई है। राजनीतिक दलबन्दियों के अतिरिक्त धार्मिक साहित्यिक आदि और भी कई दल बन्दियां हैं और उनके समर्थन में भी हिन्दी में अलग अलग समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार समाचार पत्रों के कई भेद हो गये हैं।

इन भेदों से समाचार पत्र संसार को नुकसान ही हुआ हो, यह बात नहीं है। दलबन्दी के दल दल में फंसे रहने पर भी कई समाचार पत्र अन्य सब बातों में यथोचित सामग्री जुटाने में कोई कोर कसर नहीं रखते। इस प्रकार सामूहिक रूप से सामचार पत्रों की उन्नति ही हुई है। अब भी ज्यों ज्यों लोग सामाजिक आवश्यकताओं और नये नये आविष्कारों से परिचित होते जाते हैं त्यों त्यों समाचार पत्रों में नये नये सुधार होते जाते हैं। सब से पहिले समाचार पत्र हलके कागज़ पर लीथो आदि की छपाई से बहुत मामूली ढंग से प्रकाशित होते थे। धीरे धीरे छापेखानों के टाइप से छापे जाने लगे और उनमें अच्छा कागज लगाया जाने लगा। सुन्दरता छपाई सफाई आदि की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट हुआ और पत्र सञ्चालक उसकी पूर्ति के लिए आगे आये। इस संबंध में यद्यपि सरस्वती के प्रकाशन के साथ ही लोगों की प्रवृत्ति हो चली थी तथापि माधुरी के प्रकाशन से इसमें बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। जब से यह पत्रिका सज धज के साथ प्रकाशित हुई तब से इस ओर बहुत अधिक ध्यान दिया जाने लगा। पत्रों में और सुधार भी हुए। कुछ समाचार पत्रों ने पाठकों की

जानकारी बढ़ाने के विचार से कुछ ने उनके मनोरंजन के विचार से और कुछ ने दूसरों की देखा देखी ही धीरे धीरे पत्रों में चित्र कारटून आदि देना शुरू किया। यह भी पत्रों की उन्नति का एक अंग हुआ। इस समय हिन्दी के मासिक पत्रों में तो प्रायः सभी सचित्र प्रकाशित होते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक दैनिक और साप्ताहिक पत्र भी समय समय पर चित्र और कारटून प्रकाशित किया करते हैं। इतना होते हुए भी पत्रों की कीमत कम रखने की ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाता है। पहिले साप्ताहिक पत्रों की कीमत बहुत अधिक होती थी। छोटे छोटे और खराब कागज़ों पर छपे हुए पत्रों की कीमत भी छः छः सात सात रुपया रक्खी जाती थी। इसीलिए श्री राधाकृष्ण दास जी को अपनी पुस्तक में समाचार पत्रों के मूल्य की अधिकता की शिकायत करनी पड़ी थी। किन्तु इस समय यह बात नहीं। अब छपाई, कागज़, सफाई आदि सुधारों के साथ साथ कीमत भी कम रहती है। भारत वर्ष जैसे दीन देश के लिए कीमत का कम होना बहुत बड़ी बात है। प्रसन्नता की बात है कि समाचार पत्र सब प्रकार उपयोगी बनने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। इनमें से अनेक अपने उद्देश्य में सफल भी हो रहे हैं। फिर भी अभी और आगे बढ़ने की ज़रूरत है। हिन्दी भाषी जनता में समाचार जानने की उत्सुकता अभी पर्याप्त परिमाण में जाग्रत नहीं हुई। इसलिए इस बात की भी आवश्यकता है कि समाचार पत्र जहां तक संभव हो अधिक से अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाये जांय।

---*---

समाचार-पत्र

(पर्यालोचना)

——:*:——

जब समाचार पत्र न थे, तब हमें उनकी आवश्यकता भी प्रतीत न होती थी। उस समय हमारी दुनिया ही दूसरी थी। किन्तु अब समाचारपत्रों के लाभ का हमें चसका लग गया है, इसलिए अब उनके बिना हमारा गुज़र नहीं होता। यह बात ज्यों-ज्यों दिन बीतते जयँगे, त्यों-त्यों सत्यतर होती जायगी। जितनी आवश्यकता हम आज प्रतीत कर रहे हैं, कुछ दिन बाद उससे अधिक आवश्यकता प्रतीत करने लगेंगे। जहाँ—पाश्चात्य देशोंमें और पौर्वात्य स्वतंत्र देशों में भी—समाचारपत्रों का चसका लग गया है, वहाँ यह दशा हो भी रही है। हमारे जीवन का प्रवाह ही कुछ ऐसी रुख़ से बह रहा है कि बिना समाचारपत्रोंके काम ही नहीं चलेगा। अभी तो हम समाचारपत्रों को केवल सुविधा या मनोरंजन और कभी-कभो विलासिता के लिए चाहते हैं; किन्तु आगे चल कर वह सभय आने वाला है, जब वे हमारे जीवन के आवश्यक अङ्ग हो जायँगे।

समाचारपत्रों का कार्य बहुत व्यापक है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के सामान उन्हें तैयार करने पड़ते हैं। जो लोग जिस बात को पसंद करते हैं, वे उसका प्रतिबिंब समा-

चारपत्रों में पाते हैं। समाचार, साहित्य-चर्चा, कविता, मनोरंजन, संगीत आदि नाना प्रकार के विषयों का प्रवेश समाचारपत्रों में रहता है। इसके अतिरिक्त विज्ञापन द्वारा भी समाज का बड़ा हित किया जाता है। बेकार लोग इस प्रकार का विज्ञापन देकर कि वे अमुक-अमुक योग्यता रखते हैं और काम चाहते है, काम प्राप्त कर सकते हैं; रोज़गार, व्यापार, कल, कारखाना और दफ्तर-वाले इस प्रकार का विज्ञापन देकर कि उन्हें अमुक-अमुक योग्यता का आदमी काम करने के लिए चाहिए, नौकर प्राप्त कर सकते हैं; किसी चीज़ के चाहने वाले उस चीज़ के संबंध का विज्ञापन देकर यह मालूम कर सकते है कि वह चीज़ कहाँ पर, किस भाव से और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है और बेचनेवाले अपनी चीज़ का विज्ञापन देकर उसकी तरफ़ जनता को आकर्षित कर सकते हैं, और उसकी बिक्री का पूरा प्रबंध कर सकते है। इस प्रकार प्रायः प्रत्येक दृष्टि से समाचारपत्र सर्वसाधारण की सेवा करते हैं। वे समाचार-संग्रह कर के जनता को देश की और संसार की घटनाओं से परिचित कराते हैं, अपने विचार प्रकट कर घटना-बिशेष से देश पर पड़नेवाले प्रभाव का बोध कराते हैं, और विज्ञा-पन देकर व्यापार और बेकारी आदि असुविधाएँ कम करते हैं।

समाचारपत्र-प्रकाशन एक व्यापार है। एक व्यापार के लिए जिन-जिन बातों की ज़रूरत पड़ती है, वे सब इस में भी ज़रूरी होती हैं। ग्राहकों की संख्या बढ़ाना, विज्ञापन प्राप्त करने की कोशिश करना, स्वयं अपना विज्ञापन करना, नौकर-चाकर रखना, बाक़ा-

यदा ख़रीद्फ़रोख़्त करना आदि प्रायः समस्त व्यापार-संबंधी बातें इस में आ जाती हैं। फिर भी अभी यह नितांत व्यापारिक रूप में नहीं आया। रुख़ उस तरफ़ ज़रूर है। अभी तो जो लोग इस व्यापार को (मैं इसे व्यापार ही कह रहा हूं) करते हैं, वे प्रत्यक्ष धनोपार्जन की दृष्टि से नहीं करते। उनके हृदय में यह भाव यदि रहता भी है, तो बहुत कुछ अप्रत्यक्ष रूप में रहता है। किंतु कुछ उदाहरण छोड़कर जहाँ शुद्ध देश-भक्ति, या समाज अथवा साहित्य सेवा के भाव से पत्र निकाले जाते हैं, अन्यत्र अधिकांश में स्वार्थ-भाव रहता अवश्य है, फिर वह अप्रत्यक्ष ही क्यों न हो। यह भाव दिनोदिन उन्नति कर रहा है और जैसा कि प्रथम संपादक-सम्मेलन के सभापति श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर ने अपने भाषण में कहा था, वह समय शीघ्र ही आनेवाला है, जब यह काम शुद्ध व्यापार की दृष्टि से किया जायगा और बड़े-बड़े व्यापारी, संपादक और रिपोर्टर आदि नौकर रखकर इस व्यापार का संचालन करेंगे। उस समय आपस की प्रतिद्वंद्विता बढ़ेगी और एक समाचार-पत्र दूसरे से कम क़ीमत पर अधिक सुविधाएँ देने का प्रयत्न करेगा। किंतु साथ-ही-साथ संपादकों की स्वतंत्रता घट कर प्रबंधकों का प्रभाव बढ़ेगा। यह अवस्था देश के लिए आशीर्वाद सिद्ध होगी, या अभिशाप, इस संबंध में यदि समय की गति-विधि से कुछ अनुमान कर सकना संभव हो, तो यह स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है कि समाचारपत्रों पर पूंजीपतियों का शासन होगा और वे अपने तुच्छ स्वार्थ के अनुसार देश की इस विशाल विभूति का

सदुपयोग या दुरुपयोग सब कुछ करने में तनिक भी आगा पीछा न करेंगे। स्वतंत्र विचार वाले पत्र धनाभाव के कारण उनका मुक़ाबिला न कर सकेंगे। पूँजीपतियों के पत्र बढ़िया छपे, कटे साफ कागज़ और सुन्दर टाइपवाले होंगे, उनके मुक़ाबिले में कम सज-धज के समाचारपत्रों की पूछ न होगी, और स्वतंत्र संपादक उतना धन लगा न सकेंगे कि उतनी ही या उससे अधिक सज-धज के पत्र निकालें। इन सब बातों का परिणाम यह होगा कि वे समाचारपत्र निकाल ही न सकेंगे और पूंजीपति निष्कंटक राज्य करेंगे। समाचार-पत्रों में पूंजीपतियों का हाथ दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। अभी से यह दशा आ गई है कि यदि कोई पत्र किसी पूंजीपति के विरुद्ध हुआ, तो उसे द्रव्य आदि का मोह दिखा कर वश में करने की कोशिश की जाती है और अनेक समाचारपत्र इस प्रकार पूंजीपतियों की हाँ-में हाँ मिलाने भी लगते हैं। किंतु अभी स्वतंत्र विचारवाले स्वतंत्र संपादक और उनके स्वतंत्र पत्र मौजूद हैं, इन पर अभी पूंजी पतियों का जादू असर नहीं करता। किंतु उस समय जब पत्रों के पूर्ण स्वामी भी पूंजीपति ही होंगे, तब कौन उनके ख़िलाफ़ कुछ लिखने की हिम्मत कर सकेगा ? इस संबंध में देश के हितचिंतकों और स्वतंत्र संपादन-कला के समर्थकों को अभी से सतर्क और सावधान रहने की आवश्यकता है। संपादक-सम्मेलन के विचार का यह ख़ास विषय होना चाहिए।

देश के जीवन में समाचारपत्रों का स्थन बहुत ऊँचा है। वे

जैसा चाहें जनता को उसी प्रकार घुमा सकते हैं। उनकी इसी प्रभावशालिता का अनुभव कर कोई विदेशी राष्ट्र आजकल जब किसी दूसरे देश पर अपना शासनाधिकार जमाने की कोशिश करता है, तब वहाँ के समाचारपत्रों को दबाने का सब से पहिले प्रयत्न करता है। भारतवर्ष में यह प्रत्यक्ष रूप से होरहा है। पिछले यूरोपीय महासमर के समय दुश्मनों को हराने से अधिक समाचारपत्रों को क़ाबू में रखने का प्रयत्न किया जाता था। समाचारपत्रों के प्रभाव से बड़े-बड़े सत्ताधारी काँपा करते हैं। भारतवर्ष-जैसे देश में तो, जहाँ पर जन साधारण में न्यायान्याय, कर्तव्याकर्तव्य और सत्यासत्य के विवेचन का अभ्यास नहीं है, अशिक्षा के कारण जहाँ के मनुष्य लिखी हुई बातों पर ब्रह्मा के वाक्यों से अधिक विश्वास कर लेते हैं, जहाँ अपने आप किसी समस्या पर कुछ सोच सकना पहाड़ दिखलाई पड़ता है, समाचारपत्रों का प्रभाव और भी अधिक पड़ता है। परन्तु विभिन्न कारणोंसे (कारणों का उल्लेख आगे किसी अध्यायमें विस्तार पूर्वक किया गया है) पाठकों की संख्या कम होने के कारण इस प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रदर्शन बहुत कम हो पाता हैं। फ़िर भी इन बातों का ख़ासा दृश्य चुनाव आदि के अवसरों पर देखने में आता है। समाचारपत्रों और पर्चों द्वारा जनता में अपने-अपने पक्ष के लोग अपनी-अपनी बातें प्रकाशित करते हैं। जनता की मति डावाँ डोल होती रहती है और उसके लिए यह निर्णय कर सकना कठिन हो जाता है कि किस को श्रेय देना चाहिये, किसको नहीं। चुनाव का दृश्य दूसरे-

तीसरे साल आया ही करता है। इस के अलावा और भी अनेक अवसर ऐसे देखनेमें आते हैं, जब समाचारपत्रोंके प्रभावका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। 'रंगीला रसूल' के मामले में पंजाब के समाचारपत्रों ने जनता में जो उत्तेजना पैदा कर दी, वह अभी थोड़े ही दिनकी घटना है और समाचार पत्रों की प्रभावशालिता का ज्वलंत उदाहरण है। हिंदू-मुसलिम विद्रोहाग्नि को फूंकने में भी समाचारपत्रों का कम हाथ नहीं था।

भिन्न-भिन्न संस्थाओं का विकास करने में भी समाचारपत्रों से बड़ी सहायता मिलती है। समाचारपत्रों द्वारा उस संस्था के कार्यक्रम का वर्णन कर के उस के किये हुए कामों का विज्ञापन करके, उसके रोचक और उपयोगी उद्देश्यों का प्रचार करके बड़ी उन्नति की जा सकती है। इसीलिए प्रायः यह देखने में आता है कि प्रत्येक महत्त्व-पूर्ण संस्था अपना एक मुखपत्र भी रखती है।

लोकतंत्र के इस ज़माने में जब प्रत्येक नेता या शासकको जन साधारण का मत अपने पक्ष में करने की ज़रूरत रहती है, समाचारपत्रों की आवश्यकता और भी बढ़ी हुई है। शासक या नेता समाचारपत्रों द्वारा अपनी नीतिका उल्लेख कर, जनता को अपनी कार्यप्रणाली और अपने उद्देश्यों से परिचित कराता रहता है और इस प्रकार अपने काम समझने और उनको दाद देने का जनता को मौक़ा देता हैं। यह बात तो हुई शासक या नेता की दृष्टि से समाचारपत्रों की आवश्यकता के संबंध की, दूसरी ओर शासित या जनसाधारण की दृष्टि से भी समाचारपत्रों की उपयो-

गिता होती हैं। वे जानना चाहते हैं कि अमुक शासक या अमुक नेता हमारे हिताहित के संबंध में क्या कर रहा है। यदि वह कार्य अनकूल प्रतीत हुआ, तो उसकी प्रशंसा कर के उसको उत्साहित करने का प्रयत्न किया जाता है और यदि कामों में प्रतिकूलता हुई तो समाचारपत्रों द्वारा हो यथावत् आलोचना करके उन्हें अपनी गति-विधि सुधारने का अवसर दिया जाता हैं।

समाचारपत्र लोक-शिक्षण का एक प्रधान साधन होते हैं। बड़े-से-बड़ा प्रोफेसर या अध्यापक उतनी जन संख्या को शिक्षा नहीं दे सकता, जितनी बड़ो जन संख्या को समाचारपत्र शिक्षा दे सकते हैं। उनके शिक्षण की रीति भी विचित्र होती है। वे जिस मत के प्रदिपादक हुए, उस मत से सहानुभूति उत्पन्न करने वाले समाचार देकर या यदि वे समाचार स्वयं उस प्रकार के न हुए, तो उन्हें ऐसी भाषा में और इस प्रकार लिखकर कि वे वैसे हो जायँ, जनता में अपने प्रतिपाद्य विषय का प्रचार करते हैं। उनका शिक्षा का साधन होना एक और प्रकार से भी सिद्ध होता हैं। भिन्न-भिन्न विचार वाले समाचारपत्र एक ही विषय को विभिन्न रूप से सामने लाकर उपस्थित करते हैं। एक ही संबंध में कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। पाठक दोनों विचारों को पढ़ते हैं. वे थोड़ी देर के लिए चक्कर में पड़ जाते हैं। उन्हें दोनों मत वालों की बातों में तथ्य मालूम होता है। किस को मानें, किस को न मानें; यह सवाल उन के लिए बड़ा टेढ़ा हो जाता है. वे एक उलझन में पड़ जाते हैं। उलझन में पड़ कर स्वभावतः वे एक

निर्णय पर पहुंचने की कोशिश करते हैं, और इस प्रकार उन मे विवेक-शक्ति उत्पन्न होती है। यह तो हुई अप्रत्यक्ष रूप से लोक शिक्षण के प्रयत्न की बात, इसके अतिरिक्त 'संपादकीय कालमों' में अपने विचार प्रकट कर और कभी-कभी तद्विषयक विज्ञापन छापकर वे प्रत्यक्ष रूप से भी लोक शिक्षण का काम करते हैं। किसी विषय को आगे बढ़ाने के लिए वे इन तीनो प्रकारों से—समाचार देना, विचार प्रकट करना, और विज्ञापन देना—काम लेते हैं। समाचारपत्र प्रायः इन्हीं तीन प्रकारोंसे लोक-शिक्षण और प्रचार-कार्य करते है।

समाचारपत्रों का एक महत्त्व-पूर्ण कार्य यह भी होता है कि वे एक समाज, संप्रदाय, देश या राष्ट्र की जनता को दूसरे समाज, संप्रदाय, देश या राष्ट्र की बातों से परिचित कराते रहते हैं. समाचारपत्र अंतर्समाज, अतर्संस्था, या अंतर्देशीय संबंध स्थापित करने में एक सम्मेलन-सूत्र का काम देते हैं। एक स्थान पर बैठे-बैठे हम सारे संसार की बातें उन्हीं के ज़रिए जान लेते है। कौन समाज, या कौन देश किस दिशा में क्या कर रहा है, उसके उस कृत्य का क्या परिणाम हुआ, हम उसका अनुकरण कहाँ तक कर सकते हैं, और उस के करने से कहाँ तक लाभ उठा सकते हैं, उसे परिस्थितियों की कौन-सो अनुकूलता प्राप्त है, वह हमें भी किस प्रकार प्राप्त हो सकती हैं, आदि बातें समाचारपत्र हमें बताते हैं, और उनका ज्ञान प्राप्त कर हम अपने निस्तार और अपनी उन्नति का प्रयत्न करते हैं। सच पूछिए, तो हमारी वर्तमान

जागृति का बहुत अधिक श्रेय समाचारपत्रों को है। यदि प्रचार और लोक-शिक्षण का यह साधन हमें प्राप्त न होता, तो मुझे पूरा विश्वास हैं कि हमारी वर्तमान जागृति की यह गति कदापि न होती।

समाचारपत्र जनता के प्रतिनिधि हैं। जनता उन के द्वारा अपने मनोभावों को, अपनी शिकायतों को और अपने प्रशंसा और कृतज्ञता आदि के भावों को व्यक्त करके संबंधित लोगों से अपेक्षित कार्यवाही की आशा और प्रार्थना करती है। प्रत्येक विचार और प्रत्येक श्रेणी के व्यक्ति इस प्रकार समाचार पत्रों का उपयोग कर सकते हैं, और करते भी हैं। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से देखने से समाचारपत्र एक अत्यन्त प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण संस्था सिद्ध होते हैं।

किंतु जहाँ इन्हों ने यह महत्ता और यह प्रभावशालिता प्राप्त की है, वहाँ इनका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया है। यह स्वभावसिद्ध और सर्वमान्य बात है कि जो जितना अधिक ऊँचा और महान् होता है, उसका उत्तरदायित्व भी उतना ही ऊँचा और उतना ही महान् होता है। समाचारपत्रों को अपने इस महान् उत्तरदायित्व का सदा ध्यान रखना चाहिए। जिस विषय में जो विचार वे प्रकट करें, उन में काफ़ी विवेक-बुद्धि, जागरूकता, सच्चाई, ईमानदारी और नेकनीयती होनी चाहिए। और जो बातें कही जायँ, वे साफ़-साफ़ सब की समझ में आने वाली स्पष्ट भाषा में कही जानी चाहिए। उन के लिए यह आवश्यक होता है कि

प्रत्येक विषय पर वे अपने विचार निश्चित कर लें और फिर उन निश्चित विचारों के अनुसार जनता को आगे बढ़ाने का साधुतापूर्ण सतत प्रयत्न करें। इस संबंध में साधारणतया तीन प्रकार की नीति बरती जाती है। किसी विषय पर मनुष्यों के प्रायः तीन सिद्धांत होते हैं। एक यह कि पुरानी बातों का आँख मूँद कर समर्थन किया जाय, और वर्तमान रीति-रिवाज को पुराने ढंग में परिवर्तित कर दिया जाय, दूसरे यह कि समय के अनुसार जो कुछ वरता जा रहा है उसको अवाधित रूप से चलने दिया जावे उसमें किसी प्रकार का संशोधन परिवर्तन न किया जाय और तीसरे यह कि वर्तमान रीति-रिवाज को नये ढाँचे में ढाल दिया जाय। परिवर्तन चाहने वाले लोगों की दो श्रेणियाँ होती हैं। एक तो वह श्रेणी, जो धीरे-धीरे परिवर्तन चाहती है और दूसरी वह जो एक क्रांति कर के वर्तमान वातावरण को एक वारगी नष्ट-भ्रष्ट कर उस में एक विचित्र परिवर्तन कर डालना चाहती है। ये दोनों श्रेणियाँ उपर्युक्त प्रथम और तृतीय दोनों सिद्धांत के मानने वाले मनुष्यों में हो सकती है। समाचारपत्रों को इन्हीं सिद्धांतों और नीतियों में से एक-न-एक सिद्धांत और नीति पसंद कर के उसी के अनुसार अपने विचार-प्रवाह की गति मोड़ना चाहिए। इस संबंध में यह आवश्यक नहीं है कि समाचारपत्र इन सिद्धांतों में से जिन को ठीक समझें उनको सभी बातों में प्रयुक्त करें। यह विलकुल स्वाभाविक है कि किसी एक विषय में वे एक सिद्धांत के पक्षपाती हों

और किसी दूसरे विषय में किसी दूसरे सिद्धांत के। इस में कोई ऐब नहीं कि राजनैतिक मामलों में एक पत्र नवीन ढंग के परिवर्तन के लिए क्रांति कर देने के सिद्धांत का पक्षपाती हो और वही धार्मिक मामलों में पुरानी लकीर का फ़कीर बन कर काम करना पसंद करता हो। ये दोनों भावनाएँ साथ-साथ काम कर सकती हैं। किंतु एक ही विषय में कभी कुछ और कभी कुछ विचार रखना कोई मूल्य नहीं रखता। इसलिए समाचारपत्रों को एक निश्चित सिद्धांत के अनुसार ही आगे बढ़ाना चाहिए, और अपने विचारों में सदैव समता क़ायम रखनी चाहिए। इस के लिए यह आवश्यक है कि यदि कुछ लिखा जाय, तो उस विषय के पहिले के लेख से उसका मिलान कर यह देख लिया जाय कि दोनों लेखों के विचारों में कोई खटकने वाला अन्तर तो नहीं आ गया। यह स्मरण रखना चाहिए कि विचारों में परिवर्तन करते रहने से पत्र को जनता में अधिक आदर नहीं प्राप्त होता। एक पत्रका कभी कुछ और कभी कुछ लिखना जनतामें उसके प्रति अरुचि उत्पन्न कर देता है। इस संबंध में समाचारपत्र और नेताओं की बात एक-सी होती है। दोनों के लिए बराबर विचारों का बदलते रहना अहितकर है।

समाचारपत्रों के विविध कार्यों की गणना इतने ही से समाप्त नहीं होजाती। समाचार देना, अपने विचार प्रकट करना और व्यापार की सूचनाएँ देना उन के काम अवश्य हैं; किंतु ये काम किसी दूसरे अंतर्हित उद्देश्य के साधन-मात्र हैं। यह अंतर्हित

उद्देश्य भिन्न-भिन्न समाचारपत्रोंकी नीति के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। यदि पत्र किसी दल-विशेष का होता है या उसका संबंध किसी विशेष समुदाय से होता है, तो वह उपर्युक्त तीनों प्रकारों से—समाचार-विचार-विज्ञापन द्वारा—अपने उस दल या समुदाय का हित-साधन करता है और यदि पत्र स्वतंत्र विचार का हुआ, तो वह समष्टिरूप में देश या राष्ट्र के हित का ख़्याल रखता है और हर प्रकार से उसका साधन करता है। विशेष विषय और समुदाय से संबंध रखने वाले पत्र (मेरा मतलब संकीर्ण सांप्रदायिक भाव वाले पत्रों से है) केवल नाम मात्र के पत्र होते हैं। एक दृष्टि से विचार करने पर वे समाचारपत्र माने जा सकते हैं, किंतु दूसरी दृष्टि से वे समाचारपत्र की गणना में भी नहीं आ सकते। वास्तविक समाचारपत्र तो स्वतंत्र विचारवाले, समष्टिरूप से देश या राष्ट्र पर न्योछावर होनेवाले समाचारपत्र ही होते हैं। स्वतंत्र समाचारपत्र देश की भिन्न-भिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। उनका क्षेत्र सामूहिक या वैज्ञानिक समाचारपत्रों की अपेक्षा अधिक विस्तृत और विशाल होता है। उस समय तो उनका कार्य-क्षेत्र और भी विशाल हो जाता है, जब वे किसी आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करते हैं। ऐसे अवसरों पर जब समाचारपत्र शंख नाद करते हुए आगे बढ़ते हैं, तब उनका रौद्र और शांकरीय रूप देखते ही बनता है। उनके नेतृत्व के प्रभाव का मुक़ाबला बड़े-बड़े नेता नहीं कर सकते। जिस आंदोलन को वे उठाते हैं, उसे पूरा करके ही

छोड़ते है। अपने समाचारों से, अपने विचारों से और कभी-कभी अपने विज्ञापनों से भी वे जनता के हृदय में आंदोलन संबंधी बातें ठूंस-ठूंस कर भर देते हैं जिस से स्वतः ही उसके हृदय में आंदोलन की ओर प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। किंतु यह दुःख की बात है कि हिन्दी के अधिकांश समाचारपत्र इस काम की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। अधिकांश में मालूम यह होता है कि वे समाचार दे देना और किसी विषय पर संम्पादकीय लेख लिख देना ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। बहुत कम पत्र ऐसे हैं, जो किसी आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए एक नेता की भाँति बढ़ते हैं और उस के पीछे पड़ जाते हैं। इसका कारण समाचारपत्र-विषयक कर्तव्य-ज्ञान की कमी है। श्री पराडकरजी का यह कथन बिलकुल ठीक है कि हमारे समाचारपत्रों का यह वयस्संधिकाल है। अभी उन में प्रौढ़ावस्था नहीं आई। वे निरुद्देश्य होकर भटक रहे हैं। किन्तु कुछ व्याकुलता अवश्य है। किसी चीज़ की खोज में हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि वह चीज़ क्या है? इसीलिए वे इस महत्तर और गुरुतर कार्य की ओर (किसी आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण करने की ओर) प्रवृत्त नहीं होते।

समाचारपत्रों का कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है। समाचार दे देने, विचार प्रकट कर देने, व्यापार संबंधी सूचनाएँ दे देने और किसी आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण कर लेने के बाद भी उनके कार्यक्षेत्र की सीमा पूरी नहीं हो जाती। उन के अनेक कार्य फिर

भी बाकी रह जाते हैं। वे कार्य हैं समाज के वास्तविक रूप का प्रदर्शन करना, समाज के गुण-दोषों का विवेचन करना, उस के लिए सुधार-मार्ग प्रदर्शित करना और इन सब बातों में अधिक से अधिक मनोरंजक ढंग से काम लेना। हिन्दी-पत्रों के लिए मरोरंजन पर विशेष रूप से ध्यान रखने की इसलिए आवश्यकता है कि हिन्दी-भाषी जनता में अभी गहन समस्याओं पर गंभीरता-पूर्वक विचार करने का अभ्यास नहीं है। उस के लिए तो मनो-रंजक ढङ्ग से विषय का विश्लेषण करना ही कुछ आकर्षक हो सकता है। निरुद्देश्य होकर समाचार दे देना या विचार प्रकट कर देना समाचारपत्रों का कार्य नहीं है। उनका वास्तविक कार्य तो यह है कि वे सामाजिक बुराइयों पर इशारा करते हुए ऐसे ढङ्ग से समाचार प्रकाशित करें जिस से वे बुराइयाँ सुधरें और अच्छाइयों को अधिक प्रोत्साहन मिले। उन के सम्पादकीय वि-चार ऐसे होने चाहिए जिन में समाज के गुण दोषों का पूरा-पूरा विवेचन हो और समाज को सुधारने का रास्ता मिले। ये बातें समाचार पत्र को ख़ास बातें हैं। इन पर जितना ही अधिक ध्यान दिया जायगा, समाचारपत्र देश के लिए उतने ही उपयोगी सिद्ध होंगे। समाचारपत्रों को ईमानदारी और सच्ची समाज सेवा के भाव से प्रेरित होकर जो कुछ लिखना हो, लिखना चाहिए। इस संबंधमें अपनी प्रतिष्ठा का सदा स्मरण रखना चाहिए। जनता का जिस समाचारपत्र पर जितना विश्वास होगा, वह समा-चारपत्र उतनी ही अधिक उन्नति कर सकेगा। इसके प्रतिकूल

अपनी प्रतिष्ठा, साधु समाज-सेवा और विश्वासपात्रता का समुचित स्मरण न रख कर यदि प्रमाद और असावधानी की गई, तो समाचारपत्रों को स्वयं जो धक्का लगेगा, वह तो लगेगा ही उसके अलावा देशको भी आघात पहुंचने का सदा भय रहेगा।

यह प्रसन्नता की बात है कि समाचारपत्रों की ओर जनता की रुचि अधिकाधिक बढ़ रही है और जिस परिमाण में इस रुचि की वृद्धि होती है, उसी परिमाण में समाचारपत्रों का प्रभाव भी बढ़ता जा रहा है। किन्तु इस बढ़ते हुए प्रभाव से कहीं-कहीं बड़े निन्दनीय ढङ्ग से अपना स्वार्थ-साधन किया जा रहा है। हो यह रहा है कि कोई धनिकों को किसी विशेष रहस्य के उद्घाटन को धमकी दे दे कर, कोई किसी धनिक की मिथ्या प्रशंसा कर के धन कमा ने की नीच नीति ग्रहण कर रहे हैं। समाचारपत्रों के लिए यह अत्यन्त लज्जा और परिताप की बात है, किन्तु इतना ही नहीं होता। स्वार्थ के पीछे अन्धे हो कर कहीं-कहीं लोग अन्य उपायों से भी जनता को धोखा देते और उन्हें ठगते हैं। कहीं समाचारपत्रों की लिमिटेड कम्पनियाँ खोल कर हिस्सेदारों को धोखा दिया जाता है और देश-सेवा की दुहाइयाँ देकर धूर्त और कपटी समाचारपत्र-संचालक पत्रकार-कला को कलंकित करते हुए अपनी कुत्सित स्वार्थ भावना की तृप्ति करते हैं! और कहीं यहां तक नीचता दिखायी जाती है कि पहिले तो इस आशय के विज्ञापन दिये जाते हैं कि हम अमुक पत्र

निकालने जा रहे हैं और लोभ-लालच के लिए यह भी कहा जाता है कि उस पत्र का मूल्य यदि एक महीने या किसी अन्य अवधि के अन्दर पेशगी आ जायगा तो वह कुछ सस्ते दामों पर भी मिल जायगा। मगर जब ग्राहक लोग पेशगी मूल्य भेज चुकते हैं तब उनके रुपये हजम कर लिये जाते हैं और उनके रुपये के बदले में उन्हें कोई पत्र नहीं मिलता। कहीं-कहीं एकाध संख्या देकर पत्र बन्द होने की घोषणा कर दी जाती है और कहीं वह एकाध अंक भी सफा चट कर लिया जाता है!

समाचारपत्रों के बढ़ते हुए प्रचार का एक परिणाम यह हुआ है कि अब लोगों की नजर-अंदाज बढ़ गयी है। अच्छे-अच्छे समाचारपत्र देखकर अब उनकी रुचि भी उन्नत हो गयी है और उन्हें घटिया माल पसन्द नहीं आता। लोग भिन्न-भिन्न विषयों का समावेश करके, भाँति-भाँति के चित्र और कार्टून दे-दे करके; अच्छे-अच्छे विशेषांक निकालकर, अच्छा कागज लगाकर, अच्छे टाइप में छपाकर समाचारपत्रों को देखने और पढ़ने में रोचक बनाने में कोई कोर कसर नहीं रखते, और फिर इस बात पर भी ध्यान रखा जाता है कि इतनी अच्छाइयों के होते हुए भी पाठकों से कम-से-कम मूल्य लिया जाय। उधर दूसरी ओर कर्मचारि-मण्डल बढ़ने लगा है। अब वह जमाना गया, जब एक संपादक ही सब काम कर लेता था। अब तो समाचारपत्र के कार्यालय में प्रबंधक-विभाग के अलावा संपादक उपसंपादक, प्रूफरीडर आदि का होना आवश्यक हो गया है।

इन सब कर्मचारियों को वेतन के अतिरिक्त समाचारपत्र के लिए समाचार आदि प्राप्त करने के अर्थ आने-जाने का रेल-भाड़ा आदि भी देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त समाचारपत्र समाचार-समितियों से जो समाचार लेते हैं, उनके लिए भी उन्हें दाम देने पड़ते हैं। इन सब बातों से समाचारपत्रों की प्रतिद्वंद्विता बहुत कीमती हो गई है। वह समय बहुत शीघ्र आनेवाला है, जब समाचारपत्र निकाल कर चला ले जाना कोई आसान काम न होगा। उसके लिए बहुत बड़ी धन-राशि लगाने की आवश्यकता पड़ेगी और उसको लगाकर भी पहले कुछ दिन घाटे में ही काम करना पड़ेगा। यह बात साधारण मनुष्यों की शक्ति से बाहर की बात होगी। अभी से प्रतिद्वंद्विता में अपने पत्र को सफलता-पूर्वक चला ले जाने के लिए मूल्य की कमी पर यहां तक ध्यान रखा जाने लगा है कि मूल्य लागत की चरम सीमा तक पहुंच चुका है। आगे चलकर तो उसे लागत से कम रखना पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि फिर काफी ग्राहक-संख्या हो जाने पर भी समाचारपत्रों का चल निकलना आशंकास्पद ही बना रहेगा। जब मूल्य लागत से कम रहेगा, तब कितने ही ग्राहक क्यों न हो जाँय, उससे लाभ न उठाया जा सकेगा। लाभ के लिए उन्हें विज्ञापनों का मुंह देखना पड़ेगा। यदि विज्ञापन काफ़ी तादाद में मिल गये, तब तो ग़नीमत, नहीं तो उलटा घाटा होगा और यदि संचालक घाटा बरदाश्त न कर सके, तो पत्र के बंद होने तक की नौबत आवेगी। इस दशा के प्रादुर्भाव का प्रारम्भ हो गया है।

वर्तमान दशा में समाचारपत्र निकालकर चला ले जाने की केवल दो सूरतें हैं। एक तो जनता में समाचारपत्रों के प्रति इतना प्रेम उत्पन्न हो जाय कि वे उन्हें खूब पढ़ें और उनके वास्तविक गुण-दोष को समझें, केवल बाहिरी रूप-रंग देखकर ही मुग्ध न हो जायँ और दूसरे संचालकों के पास इतना धन हो कि वे पत्र को सुंदरता और सजावट आदि के विचार से आकर्षक और मनोमोहक बना सकें और इसके बाद भी कुछ दिनों तक घाटे के साथ पत्र का प्रकाशन करते रह सकें। पहली दशा साधारण सामर्थ्यवाले उत्साही लोगों के लिए भी अनुकूल हो सकती है। यदि जनता में उनके पत्र का आदर हो जाय, तो उन्हें लाभ हो सकेगा और इस लाभ से अच्छे-अच्छे लेखकों को पुरस्कार आदि देकर वे उपयोगी और सुन्दर लेख प्राप्त करके अपने पत्र को अधिक सुन्दर बना सकेंगे। दूसरी दशा केवल धनिकों के लिए अनुकूल हो सकती है। क्योंकि वे किसी दशा में भी पुरस्कार आदि का प्रबन्ध करके प्रतिष्ठित लेखकों के लेख प्राप्त कर सकेंगे और अपने पत्र को सुन्दर और उपयोगी बना सकेंगे। अस्तु।

ऊपर कहा जा चुका है कि समाचारपत्रों की ओर जनता की रुचि अधिकाधिक बढ़ रही है। इस बढ़ती हुई रुचि का परिणाम यह हो रहा है कि समाचारपत्रों की संख्या भी बढ़ रही है। आगे चलकर इस संख्या के और भी बढ़ने की सम्भावना है। इसका परिणाम यह होगा कि समाचारपत्रों की बिक्री का

क्षेत्र संकुचित होता जायगा। प्रत्येक स्थान से पत्र निकलेंगे। स्थानीय के हिताहित का जो विचार तत्स्थानीय परिस्थिति में रहनेवाला पत्र प्रकट कर सकेगा वह दूसरा पत्र न कर सकेगा, और यदि वह परिश्रम करके वैसा करेगा भी, तो, उतनी जल्दी तो वह वहां की जनता को किसी भी हालत में समाचार न दे सकेगा जितनी जल्दी तत्स्थानीय पत्र देगा। इसलिए स्वभावतः जनता स्थानीय पत्र की ओर अधिक आकृष्ट होगी और दूर स्थानीय पत्रों की ओर कम। इस प्रकार पत्रों की सीमा संकुचित होती जायगी। पत्रों के अधिक प्रचार से एक बात और भी होगी। वह यह कि प्रत्येक समाचारपत्र को समाचार-समितियों से समाचार लेने पड़ेंगे। उस समय आज कल की तरह केवल अंग्रेजी पत्रों की जूठन समेटने से काम न चलेगा। उस हालत में केवल समाचारों की दृष्टि से पत्रों में कोई बड़ा अन्तर न रह जायगा। प्रायः एकही से समाचार सर्वत्र प्रकाशित हुआ करेंगे क्योंकि समाचारों का जुटाने वाली एक ही संस्था (समाचार-समितियां) होगी। इस लिए जो बातें पत्र विशेष की विशेषता प्रकट करेंगी वे घटनाओं के समाचार नहीं अन्य बातें होंगी।

विविध समाचार, और लेख, मनोहर कहानियाँ और चित्र, कविताएँ और समालोचनाएँ आदि देकर पत्रों का महत्व बहुत कुछ बढ़ाया जा रहा है। जहां तक कविताओं का सम्बन्ध है, वहां तक तो हिन्दी पत्र प्रायः सब भाषाओं के पत्रों से बढ़े-चढ़े हैं। किंतु दुःख की बात यह है कि जो कविताएँ प्रकाशित होती हैं, उनमें

अधिकांश में कविता नहीं होतीं वरन् कविता का मज़ाक़ होता है। द्वितीय सम्पादक-सम्मेलन के सभापति श्रीमाखनलालजी चतुर्वेदी को इस विषय पर आँसू बहाने पड़े थे। किन्तु फिर भी इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं। अभी तो इस विषय का यह प्रारम्भिक काल है। ज्यों-ज्यों उन्नति होगी, उसकी दशा में त्यों-त्यों सुधार भी होगा। अभी से इसकी बुराइयों को देख कर ऊबना ठीक नहीं है। विषय अच्छा है और समाचारपत्रों में इसको स्थान मिलना प्रसन्नता और हित की बात है। इसको प्रोत्साहन देना चाहिए। इसके द्वारा लोक-शिक्षण सम्बन्धी समाचारपत्र के उद्देश्य में बहुत बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

अन्त में, हिंदी पत्रों के स्वर के (Tone) संबंध में दो शब्द लिख देना अप्रासंगिक न होगा। इस दिशा में हमारे समाचारपत्रों ने काफ़ी उन्नति की है। अनेक विघ्न-बाधाओं और रुकावटों के होते हुए भी उन्होंने अन्याय और अत्याचार को मिटाने, और जनता की शिकायतों को दूर करने के लिए अपने स्वर को काफी ऊँचा उठाया है। शासन-प्रणाली की निरंकुशताओं और दुर्व्यवहारों की कड़ी-से-कड़ी आलोचना करने में हमारे समाचारपत्र खूब आगे आ रहे हैं। लोग कहते हैं, कि यह स्वरोन्नति अन्य भाषाओं की स्वरोन्नति को देखते हुए बहुत कम है। इस कथन के साथ-साथ ख़ास तौर से बँगला के समाचारपत्रों की ओर इशारा किया जाता है। किंतु मैं इस

बात से सहमत नहीं। मेरी धारणा है कि हमारे पत्रों का स्वर किसी भी भाषा के पत्रों के स्वरों से नीचा नहीं है। तथापि यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि हमारा स्वर कुछ नीचा है, तो भी मैं इसे संतोषप्रद ही मानता हूं। हमारी पत्रकार-कला को प्रारम्भ हुए अभी दिन ही कितने हुए हैं? इसके अलावा हमारी जनता उन भाषाओं की जनता की अपेक्षा शिक्षा आदि में भी कितनी पिछड़ी हुई है? ऐसी दशा में यदि हमारे समाचार पत्रों के स्वर में इतनी भी उन्नति हुई, तो यह काफी ही समझी जानी चाहिए। यदि हमारी उन्नति का यह क्रम बना रहा, तो अत्यन्त निकट भविष्य में इस प्रकार की तानाजनी करनेवाले देखेंगे कि उनके पत्रों की अपेक्षा हमारे पत्र कितने ऊँचे उठे हुए हैं। तथास्तु।

——:o:——

समाचार-पत्र

(तुलनात्मक विचार)

———:※:———

अमेरिका, इँगलैंड आदि देशों में पत्रकार-कला काफ़ी उन्नत है। इसके कई कारण हैं। पहले तो वहाँ इस कला का प्रचार बहुत दिनों से चला आता है। उतने दिन के उद्योग का कुछ फल होना ही चाहिए। दूसरे उन देशों की स्वतंत्रता, उनकी उद्योगशीलता, मशीनों आदि की तरक्की तथा अन्य सुविधाओं के कारण इस कला की उन्नति में बहुत सहायता प्राप्त हुई। वहां की पत्रकार-कला दिन-बदिन उन्नति करती जा रही है। प्रत्येक विषय के अलग-अलग समाचारपत्र हैं। प्रत्येक समाचार-पत्र के लाखों ग्राहक हैं और प्रत्येक समाचारपत्र की लाखों रुपये रोज़ की आमदनी और लाखों के ही ख़र्च है। वहाँ के पत्रों के कारख़ाने इतने-इतने बड़े हैं कि भारतवर्ष के बड़े से बड़े पुतली-घर उनकी बराबरी मुश्किल से कर पाएँगे। जहाँ उनके कारखाने होते हैं वहां एक उपनिवेश सा बस जाता है। हज़ारों नौकर रहते हैं, नौकरों की सभाएँ, खेल-कूद की 'टीमें', नाच-गाने की पार्टियाँ, आदि सभी सुविधाओं का प्रबन्ध कारख़ानों में होता है। अधिकांश बड़े-बड़े पत्र केवल छापाख़ाने और प्रकाशन-

संपादन के विभाग ही खोलकर नहीं रह जाते। उनके काग़ज़ बनाने के कारख़ाने भी अपने निजी होते हैं। उसके लिए वे लकड़ी के जंगल के जंगल ख़रीद लेते हैं और उन्हीं से अपने लिए काग़ज़ तैयार करते हैं। अपनी आवश्यकता की किसी चीज़ के लिए वे दूसरे के मोहताज नहीं होते। जिन-जिन वस्तुओं की एक समाचारपत्र को आवश्यकता होती है, वे सब वे अपने पास सदा तैयार रखते हैं। यहाँ तक कि समाचारों के आने-जाने के लिए अपने तार, अपने बेतार के तार, अपने जहाज़, अपने हवाई जहाज़, अपनी मोटरें, बाइसिकलें आदि तक वे अलग रखते हैं, जिससे आवश्यकता पड़ने पर जल्दी से जल्दी समाचार मंगाये और भेजे जा सकें।

वहाँ समाचारपत्रों को ग्राहक संख्या के लिए रोना नहीं पड़ता। साधारण पत्रों के भी लाखों ग्राहक होते हैं। एक बार (दो तीन बरस पहिले की बात है) इँगलैंड के कुछ समाचारपत्रों की ग्राहक-संख्या का उल्लेख पढ़ने को मिला था। उसके अनुसार उस समय दैनिकों में 'डेलीमिरर' की ग्राहक संख्या १० लाख से अधिक, सचित्र 'डेलीस्केच' तथा 'डेलीग्राफिक' की संख्या लगभग १० लाख और सप्ताहिकों में सचित्र 'संडे पिक्टोरियल' की ग्राहक-संख्या २३,६३,००० और 'न्यूज़ आफ़ दी वर्ल्ड' की ३० लाख से अधिक थी। यह स्मरण रखना चाहिए कि 'टाइम्स' और 'डेलीमेल' जैसे सबसे अधिक लोकप्रिय पत्रों की ग्राहक-संख्या का इसमें उल्लेख नहीं है। यह अनुमान किया जा सकता है कि जब मध्यम श्रेणी के समाचारपत्रों की ग्राहक-संख्या का यह हाल है, तब उच्चकोटि के पत्रों की ग्राहक-संख्या

कितनी अधिक होगी। अस्तु। ग्राहक-संख्या की अधिकता का अन्दाज़ा एक बात से और भी लगाया जा सकता है। वह यह कि एक-एक पत्र को इतना अधिक कागज़ छापना पड़ता है कि यदि वह एकहरा करके बिछा दिया जाय तो ५०-५०, ६०-६०, मील तक ज़मीन ढँक जाय! ग्राहक-संख्या-संबंधी इन अङ्कों से पता चलेगा कि भारतवर्षीय और विशेषकर हिन्दीपत्रों की ग्राहक-संख्या और विदेशी पत्रों की ग्राहक-संख्या में कितना आश्चर्यकारक अन्तर है। वहाँ साधारण से साधारण पत्र की ग्राहक-संख्या भी तीन-चार लाख से कम नहीं होती। जहाँ पर यह हालत है कि एक मेहतर तक रास्ता साफ करता जाता और समाचारपत्र पढ़ता जाता है, वहाँ यदि पत्रों की ग्राहक-संख्या इस प्रकार की हो, तो आश्चर्य की बात ही क्या है? अस्तु।

बढ़ती हुई ग्राहक- संख्या ने इस बात की भी आवश्यकता उत्पन्न कर दी कि छापने की मशीनें भी अच्छी हों। अब वहाँ ऐसी-ऐसी मशीनें बन गई है जो एक घंटे में १५-१५ हजार अखबार छाप सकती हैं। छापे की मशीनों के अलावा अन्य प्रकार की मशीनें भी तैयार की गई हैं। मशीनरी की इस उन्नति ने काम को अधिक सुविधाजनक बना दिया है। जिस काम को देखिए, मशीन से होता है। लाइनो टाइप की मशीनें जिनमें रोज़ टाइप बनता और गलता है, अच्छे से अच्छे अक्षर मुहय्या करती हैं। टाइप के अच्छे और ताज़े होने के कारण पत्रों की छपाई सुन्दर और अच्छी होती है।

राटरी मशीनें बनी हैं जिनके द्वारा एक ओर पत्र छपता जाता है और दूसरी ओर वह अपने आप 'फोल्ड' होता जाता है, बँधता जाता है, उस पर पते और टिकट चिपकते जाते हैं और वह 'डिस्पैच' होता जाता है ।

वहां के कर्मचारियों को वेतन भी इतना अधिक मिलता है कि जिससे उनको आर्थिक संकट नहीं रहता। अच्छे-अच्छे पत्रों के प्रधान संपादकों की तनख्वाहें तो इतनी बड़ी होती हैं कि वहां के बड़े से बड़े शासना-रूढ़ अधिकारी की तनख्वाहें भी उनकी समता नहीं कर पातीं। भत्ता आदि देने में भी काफ़ी उदारता से काम लिया जाता है। अभी थोड़े दिन पहले तक तो यह हालत थी कि रिपोर्टरों को सफर खर्च के अतिरिक्त इस लिए भी भत्ता दिया जाता था कि किसी ख़ास भोज या उत्सव आदि में शामिल होने के लिए वे अपने वास्ते अच्छी पोशाक बनवा सकें। इन तमाम बातों का परिणाम यह हुआ कि लोग इस कार्य की ओर अधिक आकृष्ट हुए। इस से वहां के पत्र-संचालकों को अच्छे अच्छे कर्मचारी भी प्राप्त होने लगे। वहां योग्य और शिक्षित व्यक्ति ही इस काम के लिए नियुक्त किये जाते हैं। हमारे यहां की भांति अर्ध-शिक्षितों और नवसिखियों की ही भरती नहीं होती! वहां पर पूर्ण दक्षता और काफी अनुभव प्राप्त किये बिना कोई व्यक्ति संपादक नहीं बन सकता। सारांश यह कि प्रत्येक दिशा में वहाँ काफी उन्नति हो रही है। इस उन्नति का एक अवश्यंभावी परिणाम यह हुआ है कि इस संबंध में भी व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता

का प्रवेश हो गया है। इस प्रतिद्वंद्विता में सफलता प्राप्त करने के लिए वहां के पत्र-संचालकों को लागत से भी कम दामों पर पत्र बेंचने पड़ते हैं। इस लिए लाखों की ग्राहक-संख्या के होते हुए भी वे उस समय तक आमदनी नहीं कर सकते, जब तक उन्हें काफी विज्ञापन न मिलें। लंदन के मज़दूरदल के एक मात्र पत्र 'डेली हेरल्ड'की यही दशा है। उस के ग्राहक लगभग ४ लाख हैं। किंतु पूंजीपतियों का विरोधी होने के कारण उसे विज्ञापन कम मिलते हैं। इस लिए उसे घाटा हो रहता है। और बार-बार सहायता के लिए अपील करनी पड़ती है।

वहां के पत्रों और हमारे यहां के पत्रों में एक यह अंतर भी है कि वहां के पत्रों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे संपादक का नाम दें। किंतु हमारे यहां नाम देना क़ानूनन लाजिमी है। नाम का असर पड़ता ही है। इसलिए यदि कोई आदमी शिक्षित, कार्य-कुशल, अनुभवी और सम्पादन-कला निष्णात भी हो तो भी वह उस मनुष्य के मुक़ाबले में जो इतना अधिक योग्य न होते हुए भी ख्याति पा चुका है, अपने पत्र को जमाने है बड़ी कठिनता का अनुभव करेगा। अतः जिस संपादक को अपना पत्र जमाना होता है उसे सार्वजनिक आंदोलनों में भी काम करना पड़ता है और इस प्रकार उस का ध्यान और उस की शक्तियां दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में बँट जाती हैं और संपादन-कार्य में आवश्यक ध्यान, समय और शक्तियां न लगा सकने के कारण वह उस दिशा में उतनी उन्नति नहीं कर पाता।

यों तो पाश्चात्य देशों में पत्रकार-कला की प्रायः सर्वत्र उन्नति हुई है। किंतु इस कला की सब से अधिक उन्नति अमेरिका में हुई है। वहाँ पर प्रायः प्रत्येक विषय के अलग-अलग समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं। और यदि एक ही पत्र में अनेक विषयों का समावेश किया जाता है तो अलग-अलग विषय के लिए अलग अलग संपादक नियुक्त होते हैं। वहां पर पत्रकार-कला की शिक्षा के लिए १०७ से अधिक कालेज और विश्व-विद्यालय हैं। इनमें से २८ विश्वविद्यालय और १७ कालेज सरकार द्वारा संचालित होते हैं। शेष म्युनिसिपल बोर्डों और स्थानीय संस्थाओं द्वारा चलते हैं। अमेरिका में जितने समाचार पत्र निकलते हैं, उतने संसार के किसी भी देश में नहीं निकलते। यद्यपि वहाँ की आबादी साढ़े ग्यारह करोड़ से कुछ ही अधिक है तथापि वहाँ २०,६८१ समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं; जब कि भारत वर्ष में जहाँ की आबादी लगभग ३२ करोड़ है, केवल ३४४६ समाचार पत्र ही प्रकाशित होते है। अमेरिका के प्रायः प्रत्येक समाचार पत्र के पास अपनी निजी समाचार समिति होती है। इन समितियों में फिर परस्पर समाचार विनिमय और क्रय-विक्रय भी होता है। अमेरिका के समाचार पत्रों की एक खास बात यह है कि उनमें सनसनी फैलाने वाले समाचारों और गल्पों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। महत्त्व तो इस को प्रायः सर्वत्र ही दिया जाता है, किंतु वहाँ इसकी इतनी अधिकता है कि सनसनी खेज बनाने के लिए झूठी बातें तक जोड़ गाँठ दी जाती हैं।

दूसरे पाश्चात्य देशों में यह बात नहीं है। वहाँ इन समाचारों को महत्त्व तो अवश्य दिया जाता है, किंतु इसके लिए झूठी बातें गढ़ी नहीं जाती। जर्मनी के समाचार पत्र तो इतना बढ़े हुए हैं कि इन बातों को अधिक महत्त्व भी नहीं देते। वहां के समाचार पत्र वैज्ञानिक बातों को अधिक महत्व देते हैं। इङ्गलैण्ड के समाचार पत्र व्यावहारिकता और रोजमर्रा की घटनाओं को अधिक श्रेय देते हैं।

यूरोप के पत्रों में इँगलैंड के 'टाइम्स' और 'डेलीमेल' ने जितना नाम कमाया है, उतना दूसरे पत्र को नसीब नहीं हुआ। 'टाइम्स' की ख्याति का कारण यह है कि उसने अन्य बातों के साथ-साथ सर्वसाधारण की शिकायतों को प्रकाशित किया और उनको रफ़ा करने के लिए काफ़ी आंदोलन किया और अब भी करता जा रहा है। 'डेलीमेल' को प्रतिष्ठा का कारण उसके सञ्चालक को आश्चर्यकारक पत्र-प्रकाशन-सम्बन्धी स्कीमें हैं। लार्ड नार्थ क्लिफ इँगलैंड के बहुत बड़े समाचार पत्र-सञ्चालक हो चुके हैं। वे अपने देश में ही नहीं, समस्त संसार में इस गुण के लिए ख्याति पा चुके हैं। यही महापुरुष 'डेलीमेल' के जन्मदाता थे। जिस समय 'डेलीमेल' का जन्म हुआ था पत्रकार-कला काफ़ी उन्नति कर चुकी थी—प्रतिद्वंद्विता इतनी बढ़ गई थी कि उस समय पत्र निकालकर चला ले जाना कोई आसान काम न था। लार्ड नार्थक्लिफ ने इसी वातावरण में पत्र निकालना तय किया। तमाम आयोजन करके लार्ड नार्थ क्लिफ ने सन् १८९६ ई० के फ़रवरी महीने की १५ वीं तारीख को 'डेलीमेलका' पहिला अंक

छपवाया। तब से ढाई महीने तक अख़बार रोज़ना बराबर छपता रहा, किन्तु लार्ड नार्थक्लिफ ने उसे दफ़्तर से बाहर नहीं निकलने दिया। इस बीच में उन्होंने दूसरे पत्रों से अपने पत्र का मुक़ाबला करके और लगातार काम करके अपने कर्मचारिमंडल को अभ्यास का मौक़ा देकर पूरी तैयारी कर ली। इस प्रकार जब सब तरह की तैयारी हो गई, तब पूरे ढाई महीने बाद, ४ मई १८९६ को 'डेलीमेल' का प्रथम अंक प्रकाशित होकर बाहर आया। पहले ही दिन उस पत्र की ३,९७,२१५ प्रतियाँ बिकीं। पहले ही अंक से इस पत्र की धाक जम गयी और इस समय तो इसको ग्राहक संख्या बीस लाख से भी अधिक है। लंदन, पेरिस और मानचेस्टर में इसके तीन कार्यालय हैं। तीनों स्थानों में इसके तीन संस्करण निकलते हैं। इसमें साल में ६०,००० पौंड स्याही खर्च होती है। इसके अपने निजी तार पेरिस से लंदन तक लगे हुए हैं। बेतार के तार भी हैं। इसके अलावा हवाई जहाज़, जल-जहाज़ मोटर आदि न जाने कितने अन्य साधन हैं, जिनके द्वारा शीघ्रातिशीघ्र समाचार इसके पास पहुंचते रहते हैं। इसका केवल मोटर-विभाग छः लाख का है। अपने ग्राहकों के लिए इसने यह कह रखा है—"डेलीमेल के ग्राहक हो जाइए। अगर कोई ग्राहक किसी आकस्मिक घटना के कारण मरेगा तो उसके घर की सहायता के लिए हम दस-पांच हजार रुपये दे देंगे।" यह केवल कहा ही नहीं जाता। ऐसा प्रत्यक्षतः होता भी है। इसके अलावा अच्छे-अच्छे तैराकों, अच्छे-अच्छे खेल तमाशा करनेवालों के लिए भी इसकी ओर से इनाम दिया

जाता है। इन बातों ने इसकी ख्याति और बढ़ा दी है। लोकप्रिय होने के कारण इसमें विज्ञापन भी खूब मिलते हैं। अभी कुछ दिन हुए इसके विज्ञापन से सम्बन्ध रखनेवाली एक तालिका प्रकाशित हुई थी। उसके अनुसार सन् १९२७ की २८ फ़रवरी को 'डेलीमेल' की विज्ञापन-आय १०९७३ पौंड, ३ मार्च को ११,२७९ पौंड, ७ मार्च को १३,४१३ पौंड और ९ मई को ११,८०६ पौंड हुई थी। इस हिसाबसे पता चलेगा कि डेढ़-डेढ़ दो-दो लाख रुपए रोज की आमदनी केवल विज्ञापन से होती है। 'टाइम्स' पत्र का समाचार भी कुछ कम नहीं है। कहते हैं जहाँ उसका कारखाना है वहां पूरा शहर सा बस गया है। हज़ारों नौकर रहते हैं। उनके खेलने-कूदने नाचने गाने के लिए समुचित प्रबंध रहता है और अनेक कागज़, स्याही आदि के कारखानों की काफ़ी चहल-पहल रहती है। 'टाइम्स' के प्रधान संपादक का वेतन इँगलैंड के प्रधान सचिव के वेतन के बराबर है।

पौर्वात्य देशों में जापान की पत्रकार-कला सबसे अधिक उन्नत है। वहाँ पर समाचार पत्रों की दो कंपनियां विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। एक का नाम है ओसाका मैचनी और दूसरी का ओसाका असाही। इन दोनों कंपनियों के समाचार पत्रों की ग्राहक-संख्या बीस-बीस लाख के लगभग है। दोनों कंपनियों के बड़े-बड़े विशाल भवन बने हैं। और दोनों में हज़ारों आदमी काम करते हैं। मैचनी कंपनी में कर्मचारियों की संख्या २४६५ बतायी जाती है, जिनमें से ४०५ कर्मचारी केवल संपादकीय विभाग

में काम करते हैं। असाही की कर्मचारि-संख्या भो इतनी ही बड़ी हैं। इन दोनों कंपनियों में पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता भी खूब चला करती है। दोनों इस बात का प्रयत्न करती हैं कि एक दूसरे से अधिक प्रामाणिक और विस्तृत समाचार निकाले। गत भूडोल के समय इन कंपनियों ने तत्संबंधी समाचार प्राप्त करने के लिए लाखों येन (जापानी सिक्के) खर्च किये थे। भूडोल के समाचार प्राप्त करने के लिए इन्होंने अपने हवाई जहाज़ मुक़र्रर किए थे। इसके अतिरिक्त इस बिचार से कि कहीं ऐसा न हो जाय कि हवाई जहाज़ कहीं रास्ते में बिगड़ जाय और समाचार आने में देरी हो या वे आ ही न सकें, हवाई जहाज़ों के साथ समाचार लाने के लिए सिखाये हुए कबूतर भी भेजे जाते थ। भूतपूर्व जापान स-म्राट की मृत्यु के समय दोनों कंपनियाँ सम्राट के भवन के पास ही अपने-अपने कार्यालय स्थापित करके घंटे-घंटे के समाचार प्राप्त करती थीं। सम्राट को मृत्यु का समाचार प्रकाशित करने में इन कंपनियों ने इतनी शीघ्रता की कि मृत्यु के १५ मिनट बाद ही समाचार पत्रों में वह समाचार प्रकाशित होकर जनता के सामने आ गया था। इन कंपनियों के कार्य ऐसे ही अद्भुत हैं। इन कंपनियों के अलावा भी जापान में अनेक समाचार पत्र प्रका-शित होते हैं। जन संख्या के विचार से तो वहाँ के समाचार पत्रों की संख्या आश्चर्य पैदा करने वाली है। जन-संख्या वहाँ की लगभग ६ करोड़ है। इस जन-संख्या में वहाँ से दैनिक, साप्ता-हिक, मासिक आदि कुल मिलाकर ४५६२ पत्र प्रकाशित होते हैं।

रूस की पत्रकार-कार कला भी काफ़ी उन्नत है। किंतु वहाँ कागज़ की कमी रहती है। इस कारण से वहाँ समाचार पत्रों का आकार उतना बड़ा नहीं होता जितना पाश्चात्य देशों के समाचार पत्रों का। इसके साथ-साथ काग़ज़ की कमी का परिणाम यह भी हुआ है कि रूस के समाचार पत्रों में केवल वे ही समाचार और लेख स्थान पाते हैं जो बहुत आवश्यक होते हैं। पाश्चात्य देशों के समाचार पत्रों का आकार तो इतना बड़ा होता है कि बहुत से लोग समाचार पत्रों के इस लिए भी ग्राहक हो जाते हैं कि उन्हें जितने रुपये ख़र्च करने पड़ते हैं, साल में उतने के रद्दी काग़ज़ मिल जाते हैं और समाचार आदि जो पढ़ने को मिल जाते हैं वे घाते में।

इस देश की दशा सबसे निराली है। जैसे अन्य बातों में वैसे ही समाचार पत्रों के मामले में भी यह देश दूसरे देशों से पिछड़ा हुआ है। अंग्रेज़ी पत्रों की हालत तो कुछ अच्छी भी है किंतु देशी भाषाओं के समाचार पत्रों की और विशेष कर हिंदी के समाचार पत्रों की हालत बड़ी ही विचित्र है। समाचार पत्रों के संबंध में (मासिक पत्रों को छोड़ कर) भारत वर्ष की अन्य प्रांतीय भाषाएँ हिंदी से आगे बढ़ी हुई हैं। हिंदी के दैनिक पत्रों और अंगरेज़ी तथा कुछ अन्य एतद्देशीय भाषाके पत्रों की तो तुलना करना भी व्यर्थ है। हिंदी में अधिकांश में होता यह है कि समाचार पत्र, चाहे वे दैनिक हों चाहे साप्ताहिक अँगरेजी तथा कभी-कभी अन्य भाषाओं के पत्रों का उल्था मात्र छापकर अपने कालम भर देते हैं। कुछ इने गिने पत्रों

को छोड़कर अन्यत्र मौलिक समाचार बहुत कम होते हैं। इस के विपरीत अँगरेज़ी तथा अन्य भाषाओं के अधिकांश समाचार पत्र ताज़े-से-ताज़े समाचार देने की कोशिश करते हैं। यह मान लेने में किसी को एतराज नहीं हो सकता कि हिंदी-भाषी जनता की हालत ऐसी है कि उसमें ताजे समाचार एकत्र करने के लिए अधिक ख़र्च करके पत्र का चला ले जाना कठिन है। तथापि यह भी सत्य है कि यह असंभव नहीं है। दूसरी दिशाओं में यदि आवश्यक परिश्रम किया जाय तो इस प्रकार ख़र्च करके पत्र चल सकता है, और चल सकता है काफ़ी प्रतिष्ठा के साथ। हमारे यहाँ विभिन्न विषयों के अलग-अलग समाचार पत्र बहुत कम उपलब्ध है। इनमें संख्या-वृद्धि की आवश्यकता है। एक ही पत्र में अनेक विषयों का समावेश करने की सूरत में भी हमारे यहाँ एक बड़ी व्यापक त्रुटि है। बह यह कि एक ही संपादक भिन्न-भिन्न बिषयों के संपादन के लिए नियुक्त रहता है। यह बात खटकने को है। या तो अलग-अलग पत्र निकाल कर उनके लिए उस विषय के ज्ञाता संपादक नियुक्त करना चाहिए या यदि एक ही पत्र में विभिन्न विषयों के समावेश की आवश्यकता हो तो उसके लिए प्रत्येक विषय के अलग-अलग संपादक नियुक्त करना चाहिए। इतना करने पर भी हिंदी के पत्र अँगरेज़ीपत्रों के समकक्ष हो जायँगे; यह निश्चित नहीं है। क्योंकि अँगरेज़ीपत्रों को जो सुविधाएँ प्राप्त हैं, वे हिंदो पत्रों को नहीं। अँगरेज़ीभाषा राजभाषा है। वह हम पर

राज़ी-बेराज़ी ठूँसी जाती है। हमारी शिक्षा-दीक्षा में उसका आवरण मढ़ा जाता है। तार आदि समाचार प्राप्त करने के प्रधान साधन अङ्गरेज़ी भाषा में ही मिलते हैं। इन कारणों से अङ्गरेज़ा के पत्रों को सुविधा और तदितर भाषाओं के पत्रों को असुविधा होता है। अङ्गरेज़ी में ही उच्च शिक्षा का प्रबन्ध होने के कारण उस भाषा में अच्छे-अच्छे लेख प्राप्त हो जाते हैं; उसी भाषा में तार लिखे जाने के कारण ज्यों ही तार प्राप्त हुए, त्यों ही आवश्यक संपादन कर उनको छपने के लिए प्रेस में दे देने में आसानी होतो है। किंतु हिंदी के लिए यह बात नहीं है। हिंदी में तो पहिले तार का हिंदी अनुवाद किया जायगा फिर उसका उचित सम्पादन होगा तब कहीं छपने का मौका आएगा। इन कठिनाइयों के कारण हिंदी पत्रों को समाचार-संकलन में अधिक समय लगता है, और असुविधा भी होती है। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा प्राप्त वे सज्जन जिनकी मातृभाषा हिंदी है; हिंदी में लिखना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। यह बात कुछ दिन पहले तो बहुत ही अधिक थी—किंतु असहयोग की लहर के बाद इस दिशा में भी कुछ सुधार हुआ है और लोग हिंदी में लिखने की ओर आकृष्ट हुए हैं; किंतु अब भी एक अड़चन आती ही है। वह यह कि शिक्षा का माध्यम हिंदी न होने के कारण शिक्षित-जन समुदाय अक्सर हिंदी में अपने भाव व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाकर इच्छा रखते हुए भी हिंदी में लिखने की हिम्मत नहीं करता। इससे हिंदी पत्रों को अपने विद्वान् शिक्षितों

के अच्छे-अच्छे लेख कम प्राप्त होते हैं। हमारे पत्रों के गत्यवरोध का एक कारण यह भी है।

भिन्न-भिन्न भाषाओं के समाचारपत्रों की साधारण तुलना के बाद एक ही भाषा के विभिन्न प्रकार के समाचारपत्रों की तुलना की बात आती है। उक्त विभिन्नता से यहां पर मेरा मतलब विषय-संबंधी विभिन्ता से नहीं। मेरा मतलब उनके समयानुसार प्रकाशन-संबंधी विभिन्नता से है। इस श्रेणी में दैनिक, द्विदैनिक, अर्ध साप्ताहिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, षण्मासिक या अर्ध वार्षिक, वार्षिक आदि अनेक पत्र आते हैं। किंतु इनमें दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक और वार्षिक ही गणनीय हैं। शेष इन्हीं में से किसी एक की तरह के होते हैं। पत्रों की ये श्रेणियां इतनी परिचित हो गई हैं कि इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। समाचारपत्रों के साधारण पाठक इन पत्रों का अन्तर अच्छी तरह समझते हैं। दैनिकपत्र देश की सबसे अधिक महत्व-पूर्ण विभूति होते हैं। श्रीयुक्त श्रीप्रकाशजी ने एक बार अपने लेख में लिखा था कि दैनिक पत्रों का प्रभाव देश के शासन पर सब से अधिक पड़ता है। दैनिक ही ऐसे पत्र हैं जिन में सब से अधिक समाचार, सबसे अधिक टिप्पणियां, लेख आदि छप सकते हैं। इन तमाम बातों का शासन पर तो प्रभाव पड़ता ही है, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक आदि जीवन की अन्यान्य दिशाओं पर भी उनका काफी प्रभाव

पड़ता है। दैनिक पत्रों से मासिक, साप्ताहिक आदि सब पत्रों का काम निकल सकता है; क्योंकि उनमें इतना स्थान रहता है कि किसी भी विषय पर बड़े-बड़े विद्वता-पूर्ण लेख दिये जा सकते हैं। अँग्रेजी, बँगला, गुजराती आदि भाषाओं के अनेक पत्र ऐसा करते भी हैं। किन्तु दुःख है कि हिन्दी में दैनिक पत्रों के इस आवश्यकीय उपयोग की ओर एकाध पत्र को छोड़ और कोई समाचारपत्र ध्यान नहीं देता। अधिकांश में दैनिक पत्रों में किसी विशेष विषयों पर लेख देखने को नहीं मिलते। दैनिक के बाद साप्ताहिकों का नम्बर आता है। साप्ताहिक पत्र का मुख्य कर्त्तव्य यह है कि वह देश और विदेश की ख़ास-ख़ास घटनाओं का आलोचनात्मक विवरण प्रकाशित करें। आदर्श साप्ताहिक पत्र में समाचारों को उतना स्थान नहीं मिलता जितना आलोचनात्मक टिप्पणियों को। किन्तु हिन्दी के लिए यह बात अभी लागू नहीं होती। कारण यह है कि हिंदी-भाषी जनता दैनिक समाचार पत्रों से उतना लाभ नहीं उठाती या उठा पाती जितना उसे उठाना चाहिए। देहातों में, तो, जिनकी संख्या शहरों की अपेक्षा कहीं अधिक है, दैनिक पत्रों की बहुत ही कम पहुंच होती है। कुछ तो डाक आदि के त्रुटि-पूर्ण प्रबन्ध के कारण और कुछ अन्य कारणों से दैनिक पत्र देहात वालों के लिए अधिक उपयोगी भी नहीं हो पाते। वे अधिकांश में साप्ताहिक पत्रों पर ही अवलम्बित रहते हैं। इसलिए हिन्दी के साप्ताहिक पत्रों में विचार और समाचार दोनों का काफी सम्मि-

श्रण रहना ही आवश्यक होता है। मासिक पत्रों का समाचारों से केवल इतना सम्बन्ध होता है कि उन पर टिप्पणी या कभी कभी एकाध लेख लिख दिया जाता है अन्यथा इनमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक आदि विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले पुरातन और नए शास्त्रियों के मंतव्यों पर विचारात्मक लेख ही प्रकाशित होते हैं। इस ओर इनमें गल्पों और उपन्यासों के निकालने की प्रथा भी चल पड़ी है। यह बात हिंदीतर एतद्देशीय भाषाओं के मासिक पत्रों में तो इतनी अधिक है कि उनके आधे से अधिक पृष्ठ केवल गल्पों और उपन्यासों से भरे होते हैं। गल्पें और उपन्यास इस दृष्टि से कि वे मनोरञ्जन पूर्वक ज्ञान-वर्धन करने और आंदोलन-विशेष की ओर प्रवृत्त करने के सबसे अच्छे साधन होते हैं, बहुत अच्छे हैं। मानव-स्वभाव कुछ ऐसा है कि वह कथा-कहानियों से अधिक प्रेम रखता है, इस लिए गल्पें और उपन्यास पढ़े भी खूब जाते हैं और इस प्रकार मासिक पत्रों को अपनी रोचकता और उपयोगिता बढ़ाने में इनसे बड़ी सहायता मिलती है। किन्तु मेरी समझ में मासिकपत्रों में इनका प्रकाशन उतने ही अंश में उचित है, जितने अंश में वह हिंदी के मासिकपत्रों (सरस्वती को छोड़कर) में होता है। इनकी भरमार ठीक नहीं, क्योंकि इससे अन्य विषयों के लेखों के लिए स्थान की कमी हो जाती हैं और विषय बिना पूर्ण विचार किए हुए ही पड़े रह सकते हैं। यह बात उन मासिक पत्रों के लिए लागू नहीं होतीं, जो केवल गल्पों और उपन्यासों के प्रकाशन के निमित्त ही

निकाले जाते हैं। अब रही त्रैमासिक, और वार्षिक पत्रों की बात। ये पत्र करीब-करीब एक ही श्रेणी के होते हैं। और ये किसी ख़ास विषय के विशेषज्ञों के लिए ही होते हैं। इन पत्रों में विषय-विशेष के बहुत गवेषणा-पूर्ण विचारवान् लेख ही स्थान पाते हैं और उनसे उस विषय के विशेषज्ञों का ही मनोरंजन होता है। ये पत्र एक प्रकार की पुस्तकें होते हैं। इनमें प्रकाशित लेख और लेख-मालाएँ कभी-कभी पुस्तकाकार अलग से प्रकाशित भी कर दी जाती हैं। हिंदी में नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका के अतिरिक्त इस श्रेणी के और प्रतिष्ठित पत्र इस समय नहीं है। यह पत्र भी त्रैमासिक पत्र ही है। षाण्मासिक और वार्षिक पत्र तो हिंदी में इस समय हैं ही नहीं। किन्तु पत्र-प्रकाशन की अभिरुचि यदि वृद्धि करती गयी, जो निश्चय है कि करती जायगी, तो शीघ्र ही इन पत्रों के प्रकाशन का भी समय आ जायगा। अस्तु।



रिपोर्टिंग



पत्र कारीय कार्यों में रिपोर्टिङ्ग बहुत ही महत्व पूर्ण और अत्यन्त आवश्यक कार्य है। रिपोर्टिङ्ग वाह्य जगत से सम्पादक का सम्बन्ध स्थापित करने वाली प्रधान शृङ्खला है। यह अंग्रेजी शब्द है। हिन्दी में वह ऐसे ही अपना लिया गया है। इस शब्द का अर्थ है वह काम जिस में इधर उधर से समाचार संग्रह करके समाचार पत्रों के पास भेजे जाते हैं। इस काम के करने वाले कर्मचारी रिपोर्टर कहलाते हैं। इन कर्मचारियों पर समाचार पत्रों का बहुत बड़ा दारो मदार रहता है। इंग्लैण्ड में तो ऐसे उदाहरण तक पाये गये हैं जहां समाचार पत्रों में न सम्पादक थे न सहायक-सम्पादक केवल रिपोर्टर ही सब काम किया करते थे।

रिपोर्टर इधर उधर घूम कर भिन्न भिन्न विषयों के समाचार एकत्र करते हैं और उन्हें विभिन्न समाचार पत्रों के पास भेजते हैं। इसमें उन्हें नाना प्रकार की कठिनाइयों और विपत्तियों तक का सामना करना पड़ता है। फिर भी अपनी धुन में ये इतने पक्के होते हैं कि कष्टों और विपत्तियों की परवा न करके रातोदिन अपने इसी काम में लगे रहते हैं। समाचार संग्रह करने की इस धुन में अपनी जान तक जोखिम में डाल कर ये साहसी कर्मचारी ऊंचे हवाई जहाजों तक, नीचे खानों की कन्दराओं तक, जल में टूटे हुए जहाजों तक और स्थल में आग की जलती हुई भयंकर ज्वालाओं तक धावा मारते हैं।

इनका और सम्वाददाताओं का काम प्रायः एक सा होता है। अंतर केवल यह होता है कि सम्वाददाता अपने निवास स्थान के या आस पास के समाचार भेजता है अथवा यदि वह किसी विशेषस्थान पर जाता है तो वहां के या उसके आस पास के समाचार भेजता है किन्तु रिपोर्टर भिन्न भिन्न स्थानों में भ्रमण करता रहता है और समाचारों की तलाश में रहा करता है। सम्वाददाताको समाचार ढूंढ़ने नहीं पड़ते यह और बात है कि विशेष समाचार की अनेक अप्रकट बातें वह ढूंढ़े, और रिपोर्टर को समाचार ढूंढ़ने पड़ते हैं।

रिपोर्टर कई प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के रिपोर्टर वे होते हैं जो किसी खास एक ही समाचार पत्र से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे रिपोर्टरों को जो समाचार मिलते हैं उन्हें वे केवल उसी समाचार पत्र को भेजते हैं जिससे उनका संबंध होता है। दूसरे ऐसे रिपोर्टर होते हैं जो किसी खास पत्र से सम्बन्ध नहीं रखते वरन् एक ही साथ अनेक पत्रों की सेवाएं करते हैं। कुछ रिपोर्टर ऐसे भी होते हैं जो एक ही स्थान के और एक ही विषय के समाचार भेजते है। ऐसे रिपोर्टर अदालतों, कचहरियों, (डिस्ट्रिक्टबोर्ड, म्युनिसिपैलिटी वगैरह) पार्लियामेंटों आदि में रहते हैं।

रिपोर्टरों का काम बड़ी जिम्मेदारी का काम है। ऐसे अवसरों पर जब देश में भिन्न भिन्न कार्य क्षेत्रों के नेताओं में मत भेद होता है यह उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। उनको अपने समाचार भेजने में बड़ी सावधानी से काम लेने की जरूरत पड़ती है।

रिपोर्टरों को समय की पाबन्दी का बहुत अधिक ध्यान रखने की जरूरत होती है। आवश्यक स्थानों पर उन्हें ठीक समय पर पहुंच जाने की जरूरत रहती है। उनकी नेत्रेन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय बड़ी तीव्र होनी चाहिए। सब से प्रधान गुण जो एक रिपोर्टर के लिए आवश्यक होता है वह शक्ति है जिसके सहारे मनुष्य बातों को बड़ी जल्दी समझ लेता और यह जान लेता है कि किस विषय को कितना महत्व देना चाहिए। सभा सोसाइटियों तथा अन्य घटना स्थानों पर अनेक बातें होती हैं, अनेक प्रकार के कागजात पेश होते हैं, रिपोर्टर को उन नानाविध भाषणों, कागजों और घटना चक्रों में से अपने मतलब की बात ढूंढ़ निकालनी होती है। इस लिए इस गुण की बहुत बड़ी जरूरत होती है। एक और गुण की भी आवश्यकता रिपोर्टर को होती है, और वह गुण है अच्छा स्वास्थ्य। रिपोर्टरोंको विभिन्न वातावरणोंमें भिन्न २ अवसरों और परिस्थितियों में काम करने की आवश्यकता पड़ती है। कभी वह भीड़ भाड़ के बीच में बैठा हुआ पया जाता है। कभी खुले मैदान में धूप में किसी घटना का निरीक्षण करता हुआ मिलता है और कभी जाड़े गरमी बरसात के तीव्रतम प्रकोप में काम करता हुआ पाया जाता है। कभी कभी घटनाओं का चक्र इतना अव्यवस्थित हो जाता है कि दिन-दिन और रात-रात भर उसे उन्हीं की देख रेख में इधर उधर भटकना पड़ जाता है। ऐसे अवसरों पर कभी कभी तो यहां तक नौबत आती है कि उसे जल पान करने तक का अवसर नहीं मिलता। इस प्रकार के कामों में

यदि अच्छा स्वास्थ्य न हो तो मनुष्य बहुत जल्द बीमार पड़ सकता है। इसलिए यह बहुत आवश्यक होता है कि रिपोर्टर का स्वास्थ्य अच्छा हो। इन प्राकृतिक गुणों के अतिरिक्त रिपोर्टर में कई कृत्रिम गुणों की भी आवश्यकता होती है। कृत्रिम गुणों से मेरा अभिप्राय ढोंग से नहीं है। इस शब्द से मेरा मतलब उन गुणों से है जो मनुष्य को शिक्षा-दीक्षा द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। रिपोर्टर को अधिक से अधिक विषयोंका थोड़ा बहुत ज्ञान होना चाहिए। जितने ही अधिक विषयों में उसका प्रवेश होगा उतनी ही अधिक योग्यता के साथ वह अपने कार्य का सम्पादन कर सकेगा। रिपोर्टर के लिए शार्ट हैंड का ज्ञान होना भी आवश्यक है। किन्तु यदि उस की स्मरण शक्ति अच्छी हो तो इस ज्ञान के बिना भी काम चल सकता है। फिर भी जो लोग नियमित रूप से रिपोर्टिङ्ग का काम करना चाहते हों उन के लिए हर हालत में शार्ट हैण्ड का ज्ञान आवश्यक और लाभप्रद होता है। इस के अतिरिक्त उन्हें इस बात की भी आवश्यकता रहती है कि वे खास खास भाषाओं के कुछ वाक्यों वाक्यांशों और प्रचार में आने वाले शब्दों को जाने, इतिहास का साधारण ज्ञान रखें और समाचार जगत से इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखें कि जो बात जब हो उसका उन्हें उसी वक्त पता हो जाय। इन गुणों की अकसर जरूरत पड़ा करती है। सार्वजनिक सभाओं आदि में व्याख्यान दातागण अपने भाषण में आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न भाषाओं के उद्धरणदिया करते हैं, ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया

करते हैं, संसार को रोज रोज़ परिवर्तित होने वाली स्थितियों का जिक्र किया करते हैं। यदि रिपोर्टर इन गुणों से युक्त न हो तो वह इन सब बातों को ठीक ठीक समझने में असमर्थ होगा और परिणामस्वरूप इस बात की सदा आशंका रहेगी कि इनके संबंध में वह जो रिपोर्ट दे वह गलत निकले। एक गुण यदि और हो तो रिपोर्टर के लिए बड़े ही लाभ की बात हो। वह है फोटोग्राफी जानना। इस विद्या का ज्ञान होने से रिपोर्टर स्थान और व्यक्ति विशेष के चित्र भी ले सकता है और समाचारों के साथ उन्हें भेज कर अधिक रोचकता ला सकता है। इन गुणों से युक्त रिपोर्टर बड़ी चतुरता के साथ अपने समाचार भेज सकता है। कभी कभी तो इन गुणों से युक्त रिपोर्टर वक्ता के भावों को इतनी सुन्दरता और स्पष्टता के साथ व्यक्त करते हैं कि जितनी सुन्दरता और स्पष्टता के साथ स्वयं वक्ता उन्हें व्यक्त करने में असमर्थ होता है।

मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल भिन्न भिन्न रिपोर्टर भिन्न भिन्न दिशाओं में अधिक रुचि रखते हैं। एक रिपोर्टर किसी एक काम के लिए अधिक उपयुक्त होता है, दूसरा किसी दूसरे काम के लिए। ऐसे अवसरों पर जब विशेष रिपोर्टरों को कुछ कामों के लिए नियुक्त करने की आवश्यकता पड़े उन के स्वभाव और रुचि के अनुसार कामों का बटवारा करना अधिक हितकर होता है।

रिपोर्टिङ्ग और समाचार पत्रोंका इतना घनिष्ट सम्बन्ध होते हुए भी रिपोर्टिङ्ग का इतिहास समाचार पत्रों के इतिहास की अपेक्षा

नया है। जब कि समाचार पत्रों का अंकुर छठी और सातवी शताब्दी तक से मिलता है और सोलहवीं शताब्दी के अंत में उसके नियमित सूत्र-पात का पता लगता है तब रिपोर्टिङ्ग का पता १८ वीं शताब्दी से पहिले कहीं नहीं लगता और नियम बद्ध रिपोर्टिङ्ग तो १६ वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ है। हिन्दी पत्रों के इतिहास में तो आज तक नियम बद्ध रिपोर्टिङ्ग का पता नहीं। अंग्रेजी समाचार पत्रों के इतिहास में रिपोर्टिङ्ग का सूत्र-पात सबसे पहिले इंगलैंड की महाराणी क्वीन एनी के शासन काल से होता है। उस समय कोई नियम बद्ध समाचार पत्र :नहीं थे। इस लिए रिपोर्टिङ्ग जिस रूप में आज है उस रूप में उस समय नहीं था। होता यह था कि पार्लियामेण्ट में जो बातें होती थीं वे कुछ खास लोगों की जानकारी के लिए प्रति मास एकत्र करके प्रकाशित की जाती थीं। यही रिपोर्टिङ्ग के इतिहास का श्रीगणेश था। इस प्रथा के अनुसार जो समाचार प्रकाशित होने लगे वे जनता में बड़े चाव से पढ़े जाने लगे हैं। इन समाचारों में अधिकांश में शासन सम्बन्धी राजनीति विषयक बातें रहती थी। जनता की रुचि के अनुसार धीरे धीरे इस प्रकार के अधिक समाचार प्रकाशित होने लगे। उधर शासक वृन्द अपनी बातें छिपाना चाहते थे। इस लिए सन १७२८ ईस्वी में एक कानून बनाकर लोगों को रोका गया कि वे पार्लियामेण्ट की बातें प्रकाशित न करें। किन्तु कुछ दिनों तक वे बातें पढ़ पढ़कर लोगों की प्रवृत्ति बढ़ गयी थी इस लिए जनता ने इस कानून का विरोध किया।

उन्हों ने दावा किया कि उन्हें पार्लियामेण्ट को कार्यवाही की रिपोर्ट लेने के हक हैं। यह आन्दोलन सालों तक चलता रहा। इस बीच में कुछ समाचार पत्र भी प्रकाशित होने लगे। इन से आन्दोलन को सहायता मिली। उधर अधिकारियों ने जनता का यह आन्दोलन देख कर और सख्ती करनी शुरू की। नौबत यहां तक आयी कि १७७१ में कुछ समाचार पत्र हिरासत में ले लिये गये। इस से जनता में और भी सनसनी फैली और आन्दोलन ने और अधिक जोर पकड़ा। परिणाम यह हुआ कि दूसरे ही वर्ष यानी १७७२ में जनता को यह अधिकार प्राप्त होगया कि वह पार्लियामेण्ट की कार्यवाही की रिपोर्ट ले और प्रकाशित करे। इस प्रकार रिपोर्टिङ्ग का सूत्रपात हुआ। रिपोर्टिङ्ग का नया अधिकार पाने के बाद से इस विषय से लोग अधिक दिलचस्पी लेने लगे और पार्लियामेण्ट की रिपोर्टों के अलावा अन्य साधारण सभा सोसाइटियों की रिपोर्ट भी ली जाने लगी। प्रारम्भ में रिपोर्टर प्रायः सभाओं में दिये जाने वाले भाषण मात्र ही भेजते थे। वह भी इधर उधर जाकर और पता लगा कर नहीं। वे अपने निवास स्थान पर या उसके आस पास होने वाली सभाओं के भाषण के ही समाचार भेजते थे। पहिले ऐसे साधन ही नहीं थे जिससे रिपोर्टर एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुविधा पूर्वक जा सकता। फिर जब रेलवे का प्रचार हुआ तब वे बाहर के स्थानों में भी पहुंचने लगे और वहां से भी समाचार भेजने लगे। किंतु इस समय तक किसी समाचार पत्र के पास अपने खास रिपोर्टर नहीं थे। १९ वीं शताब्दी के आरम्भ

काल में सब से पहिले इंगलैण्ड के "मारनिङ्ग क्रानिकल" नामक समाचार पत्र ने अपने यहां कुछ रिपोर्टर रखे। इसके बाद दूसरे पत्रों में भी इसका अनुकरण किया गया। पहिले जो समाचार रिपोर्टर भेजते थे वे डाक के जरिये से जाते थे इसलिए देर को पहुंचते थे। किंतु तारोंका प्रबंध हो जानेके बाद से यह बात जाती रही और तारों द्वारा जल्दी समाचार भेजे जाने लगे। देहाती समाचार पत्रों का हाल इस से भिन्न था। वे शहराती पत्रों से समाचार लेकर प्रकाशित करते थे। किंतु जब रेलवे और तार की सुविधाएं प्राप्त हुईं और नागरिक और देहाती सब लोगों को जल्दी से जल्दी समाचार मिलने लगे तब देहाती समाचार पत्रों को भी आवश्यकता हुई कि रिपोर्टर रखें और उन्होने भी अपने अपने रिपोर्टर रखे। इस प्रकार नगर और देहात दोनों में रिपोर्टरों का प्रचार हो गया।

रिपोर्टर शहर और देहात दोनों स्थानों में रहते हैं। इनका काम होता है कि जहां कहीं कोई सभा हो, कचहरी हो, आग लगे, लड़ाई हो जाय, कत्ल हो जाय, शादी हो, गमी हो, गाड़ियां लड़ जायं, किसी संस्था का निर्माण हो, कोई नया आविष्कार हो, खेल तमाशा हो, या ऐसी ही कोई और घटना घटे वहाँ वे तुरन्त पहुंचें और वहां की तमाम बातों को जानकर उन्हें लिखें और समाचार पत्रों के पास भेजें। यह काम शहरों की अपेक्षा देहातों में अधिक सरलता और सुविधा से हो सकता है। शहरों में एक तो अनेक समाचार पत्रों के रिपोर्टर होते हैं जो सब के

सब इन स्थानों पर पहुंचने को कोशिश करते हैं, इससे किसी एक को सुविधा और सरलता पूर्वक समाचारों का पता लगाने का मौका नहीं मिलता। दूसरे शहर की आबादी बड़ी होने के कारण यह भी होता है कि सब घटनाओं की सूचना तक सब रिपोर्टरों को नहीं मिलती, वे बेचारे वहां तक पहुंचें कहां से और घटनाओं के सम्बन्ध में समाचार भेजें तो कहां से? एक बात और भी होती है। देहातों की जनता में, रिपोर्टरों को लोग जितनी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं उतनी से शहरों में नहीं देखते। फलतः उन्हें देहातों में जितनी सुविधा मिलती है उतनी शहरों में नहीं मिलती? फिर भी रिपोर्टरों का कर्तव्य है कि जहां तक अधिक समाचार प्राप्त हो सकें पता लगाकर लिखें। समाचारों का पता खास तौर से अदालतों, अस्पतालों के कर्मचारियों, रेलवे के कर्मचारियों, सार्वजनिक नेताओं तथा ऐसे ही अन्य लोगों से लगता है। रिपोर्टरों का कर्तव्य है कि वे इन सब से मिल जुलकर समाचारों का पता लगाते रहें। समाचार भेजने में प्रायः इन बातों का ध्यान रखना चाहिए कि जिस घटनाका वर्णन करना हो उस घटना का समय क्या था, उससे संबंध रखनेवाले व्यक्ति कौन कौन थे, घटना क्या थी, कैसी परिस्थिति में वह घटी कारण क्या था और फिर नतीजा क्या हुआ आदि बातें लिखने में आ जांय। समाचार प्रायः छोटे छोटे पैरेग्राफ में लिखे जाने चाहिए किंतु रेलवे दुर्घटना और आत्म हत्या के समाचारों को विस्तार के साथ लिखना ही उचित होता है। इन घटनाओं के प्रति जनता

अधिक उत्सुकता रखती है इसलिए इन का सविस्तार वर्णन पत्र के लिए हितकर होगा।

रिपोर्टरोंका कर्तव्य बड़ा उत्तरदायित्व पूर्ण और बहुत पेचीदा होता है। उन के भेजे हुए समाचारों से जनता के हिताहित का बहुत बड़ा सरोकार होता है। इसलिए रिपोर्टरों का सब से प्रधान कर्तव्य यह है कि वे अपनी विश्वास--पात्रता में कभी अंतर न आने दें, और जो समाचार भेजें वे बिलकुल सत्य और अत्यन्त स्पष्ट हों। ऐसा न होने से अर्थ का अनर्थ हो जाने का सदा भय रहता है। रिपोर्टरों के लिए यही आवश्यक नहीं होता कि वे किसी घटना विशेष का वर्णन कर के रह जायं। सम्पादक और जनता उन से जिस बात की आशा करती है वह घटना विशेष की वर्णानात्मक सूचना मात्र नहीं है वरन इसके अतिरिक्त वे यह भी चाहते है कि रिपोर्टर उन्हें वहां के तत्कालीन वातावरण और परिस्थिति के सम्बन्ध में भी कुछ बताये। यह भावना अब अधिकाधिक वृद्धि पा रही है। और कुछ सम्पादक तो विशेष रूप से अपने रिपोर्टरों को यह हिदायत दे कर भेजते हैं कि वर्णमात्मक निबन्ध भेजने को अपेक्षा वहां के वातावरण से सम्बन्ध रखने वाला भावात्मक विवरण भेजना। क्या क्या हुआ, किसने किस समय क्या किया आदि जानने की अपेक्षा आजा कल लोग यह जनाने की अधिक इच्छा रखते हैं कि किस की किस बात का अथवा किस स्थिति किस घटना का जनता पर क्या प्रभाव पड़ा। समाचार भेजते समय यह भी आवश्यक होता हैं कि जितनी जल्दी

हो सके उतनी जल्दी वे भेज दिये जायँ। जनता विशेष कर समाचार पत्रों से सम्बन्ध रखने वाली जनता इस बात के लिए बड़ी उत्सुक रहती है कि संसार की जो घटना घटे उसे वह शीघ्राति शीघ्र जान ले। जो समाचार पत्र जनता की इस रुचि की पूर्ति करते हैं उनका वह अधिक आदर करती है। इस लिए समाचारों का शीघ्र भेजना न केवल जनता के हित से ही वरन् पत्रों के हित के विचार से भी आवश्यक होता है।

समाचारों के लिखने में भी बड़ी बुद्धिमानी और सतर्कता की जरूरत होती है। इन की भाषा रोजमर्रा बोल चाल की भाषा होनी चाहिए। जो समाचार लिखा जाय उस में उक्त स्पष्टता और सत्यता के अतिरिक्त यह ध्यान भी रखा जाना चाहिए कि अपना भाव कमसे कम शब्दों में और स्पष्टता के साथ व्यक्त हो। समाचार भेजते समय रिपोर्टर को किसी खास बात पर अपने विचार प्रकट करने की आवश्यकता नहीं होती। उसे यथा सम्भव विचार प्रकट करने से दूर ही रहना चाहिए। एक बात और भी और वह यह कि सम्पादकीय 'हम' का प्रयोग जान बूझ कर बचाना चाहिए। जहां कहीं 'हमारा ख्याल' या 'हम आशा करते हैं' आदि बातें लिखनी हों वहां 'ऐसा ख्याल किया जाता है' या 'ऐसी आशा की जाती है' आदि वाक्य लिखना चाहिए। मामले मुकद्दमे आदि का समाचार भेजते हुए खास कर ऐसे मुकद्दमों का समाचार भेजते हुए जिनका फैसला न हो चुका हो इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि किसी के प्रति-निश्चय रूप से कोई अभियोग

न लगने पावे। लिखने में 'कहा जाता है' 'कहते हैं,' 'लोगों का कहना है' आदि वाक्यांश जोड़ करके मामले की बातों का फैसला होने तक अदालत की बातें सन्देहात्मक ही रखनी चाहिए। घटना के समय की सूचना जहां तक सम्भव हो समाचारके पहिले ही आ जाय और ऐसे ढं । से इसका उल्लेख हो जिससे समाचार ताज़ा-से-ताज़ा दिखलायी पड़े। एक बात और भी ध्यान देने की है। वह यह कि कागज के ज़ितने तख्तों पर समाचार लिखे जायं उन में ठीक ठीक पृष्ठ संख्या अवश्य लिखी हों और समाचार पत्र के दफ्तर को भेजने के पहिले वह सावधानी के साथ दोहरा लिया गया हो। यह ख्याल रखना चाहिए कि रिपोर्टर की गलती से स्वयं रिपोर्टर का, समाचार पत्र का, और जनता का सब का, नुकसान ही हैं। एक बार गलत समाचार प्रकाशित हो जाने पर चाहे फिर उसका शीघ्र ही प्रतिवाद भी क्यों न प्रकाशित कर दिया जाय बड़ी से बड़ी हानि तक हो सकती है। समाचार की भाषा के सम्बन्ध में यह ख्याल रखना चाहिए कि जहां तक अपनी भाषा से काम चलता हो वहां तक अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग न हो। विशेष नाम बहुत साफ अक्षरों में लिखे जाने चाहिए ताकि सम्पादकों को उनके पढ़ने में भ्रम न हो। दूसरे शब्द तो लेख के प्रसंग से जाने जा सकते हैं किंतु विशेष नामों में भ्रम हो जाने की पूर्ण आशंका रहती है। इस लिए इस मामले में अधिक सावधान रहना चाहिए। रिपोर्ट भेज चुकने के बाद भी रिपोर्टर को अपने समाचार--पत्र के प्रति उदास होकर न बैठ जाना चाहिए।

अपना पत्र तो सदा अधिक सावधानी से पढ़ते रहना चाहिए और देखते रहना चाहिए कि अपने भेजे हुए समाचारों में किस प्रकार के संशोधन किये गये हैं। इस प्रकार के निरीक्षण से उसे आगे के लिए शिक्षा मिलेगी और वह अधिक योग्यता पूर्वक समाचार भेज सकेगा। रिपोर्टर को इस बात के लिए सदा प्रयत्न शील रहना चाहिए कि वह अधिकसे अधिक विश्वास--पात्र माना जाय। इस कीर्ति का उसे जितना अधिक लोभ होगा' उस के हित में वह उतना ही अधिक अच्छा होगा। इस ख्याति को प्राप्त करने में सबके साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना, जिस समय के लिए जो काम निश्चत हो ठीक उसी समय उस काम पर अवश्य येव लग जाना, अनुसन्धान के कार्यों में अधिक सावधनी रखना आदि बातें बड़ी सहायक हो सकती हैं।

रिपोर्टर में मिलनसार होने का गुण तथा अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता का होना बड़ा आवश्यक होता है। उसे प्रायः समस्त सार्वजनिक कार्य कर्ताओं, अधिकारियों, सार्वजनिक संस्थाओं आदि से परिचित रहना चाहिए। इन के सम्बन्ध में जितनी अधिक जानकारी होगी रिपोर्टर का काम उतना ही अधिक सरल और सुन्दर होगा। उसे अपनी डायरी सदा लोगों के परिचय से भरी रखनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उसकी डायरी में इन बातों का भी उल्लेख रखना चाहिए कि कहां कब और कौन से उत्सव आदि मनाये जायंगे इस से वह ठीक अवसर पर ठीक स्थान पर पहुंच सकेगा। रिपोर्टर की

डायरीमें ऐसे लोगोंके पते भी रहने चाहिए जिनके पास समाचारों की प्राप्ति के लिए उन्हें बार बार जाना पड़ता हो या जहां से उनके समाचारों के प्राप्त होने की आशा हो। रिपोर्टर को विशेष रूपसे यह ध्यान रखना चाहिए कि किस सभामें कौन सी विशेष घटना हो गयी कौन सा विषय आगे के लिए स्थगित कर दिया गया आदि।सभा सोसाइटियोमें कभी कभी ऐसा होता है कि रिपोर्टरों के लिए डेस्कों आदि का प्रबंध नहीं रहता। इस लिए रिपोर्टर के लिए यह भी आवश्यक है कि वह डेस्कों या मेजों पर ही लिखने का आदी न हो, इसके बिना भी काम चला सके। सामने बैठे हुए दर्शक की पीठ, अपने घुटने और अधिक असुविधा होने पर केवल नोट बुक के आधार पर कागज रख कर लिखने का उसे अभ्यास होना चाहिए।

सभाएँ रिपोर्टरों के लिए समाचार प्राप्ति का खास ज़रिया होती है। इस लिए यदि यहां पर सभाओं के सम्बन्ध में रिपोटर के कुछ विशेष कर्तव्यों का उल्लेख कर दिया जाय तो अनुचित न होगा। सभाओं में रिपोर्टरों को सब से अधिक सुविधा दी जाती है। वे मंच के बहुत निकट बैठाए जाते हैं। सम्बन्धित कर्मचारी उन्हें हर तरह की बातें बताने के लिए तैयार रहते हैं। उनके लिए डेस्कों और मेजों का प्रबन्ध कर दिया जाता है और अन्य आवश्यक वस्तुएं भी दी जाती हैं। रिपोर्टरों को सार्वजनिक सभाओं के सूचित समय से पूर्व ही उस स्थान पर पहुंच जाना चाहिए जहां पर सभा होने को हो और

सभा के सम्बन्ध की जितनी बातें बाहर से मालूम हो सक सब पहिले ही मालूम कर लेनी चाहिए। यदि किसी सभा का पूरा कार्यक्रम पहिले ही से प्राप्त हो जाय तो रिपोर्टर के लिए यह अधिक अच्छा होता है कि उसके अनुसार अपनी एक रिपोर्ट पहिले ही से ऐसे ढंग में तैयार करले जिससे सभा में होने वाली ऐसी बातें जो अनुमान पर तैयार की गयी पहिली रिपोर्ट में न हो सरलता पूर्वक बढ़ाई जा सके। इस प्रकार की पहिले ही से तैयार की हुई रिपोर्ट से सुविधा यह होगी कि सभा समाप्त होते ही आवश्यक संशोधन परिवर्तन करके रिपोर्ट समाचार पत्र के पास शीघ्र से शीघ्र भेजी जा सकेगी। किन्तु यह काम सब का नहीं है। अनुभवी रिपोर्टर ही इसे कर सकते हैं। साधारण तौर से सभाओं के विवरणों में उन में पढ़े जाने वाले पत्र, पेश किये गये प्रस्ताव, किसी विशेष स्थल के उदाहरण, जिन जिन बातों से जनता में हर्ष ध्वनि हुई हो या जिन जिन बातों से जनता ने विरोध का भाव व्यक्त किया हो वे बातें आदि के उल्लेख की खास तौर से जरूरत होती है। जिन उद्धारणों में संख्या दी गयी हो उनका उल्लेख बहुत साव-धानी के साथ करना चाहिए, जिस से उन में किसी प्रकार की अशुद्धि न हो। यदि इन बातोंमें या किसी के भाषण के सम्बन्ध में कोई बात समझ में न आयी हो या किसी कारण से उल्लेख करने से रह गयी हो तो सभा के विसर्जन के बाद वक्ता महोदय से मिलकर उस संबंध की वास्तविक जानकारी हासिल कर लेनी

चाहिए। अथवा जहां से उद्धरण दिये गये हों उसको देख कर अपना लेख शुद्ध कर लेना चाहिए। कभी कभी ऐसा भी होता है कि कोई वक्ता गलती कर जाते हैं। ऐसी अवस्था में रिपोर्टर का यह धर्म तो नहीं होता कि वह उसे सही करके प्रकाशित करे किंतु यह आवश्यक होता है कि वह वक्ता की बात के सामने ब्रेकेट बनाकर सही बात अपनी ओर से लिख दे। ऐसा न करने से लोगों में यह भ्रम फैलने का डर हो सकता हैं कि रिपोर्टर स्वयं भी वस्तु स्थिति से परिचित नहीं है और यह धारणा रिपोर्टर की कीर्ति में बाधा डाल सकती है। भाषणों का उल्लेख करते हुए महत्व पूर्ण वाक्य जहां तक सम्भव हो स्वयं वक्ता के ही शब्दों में देना चाहिए। शार्टहैण्ड की लिपि।-प्रणाली की कृपा से यह काम सरलता पूर्वक किया जा सकता है। अन्यथा यह बात न थी। सच बात तो यह हैं कि पहिले रिपोर्टरों को भाषणों की रिपोर्ट न देनी पड़ती थी एक प्रकार से भाषण स्वयं तैयार करने पड़ते थे किन्तु शार्टहैण्ड लिपि--प्रणाली से अब वह अवस्था जाती रही। रिपोर्टर को सभा में सम्मिलित होने वाले सब गण्यमान सज्जनों से पहिले ही से परिचित रहना चाहिए। सभा में जाते ही पहिले यह जान लेना चाहिए कि मंच पर विशेष स्थान पर बैठे हुए व्यक्ति कौन कौन हैं। अन्य खासखास व्यक्तियों का परिचय भी पहिले से प्राप्तकर लेना चाहिए। किन्तु इतना होनेपर भी यदि किसी वक्ताका नाम उसके भाषण देनेके समय याद न रहे तो उसके पहिनाव, चाल ढाल, या भाषणके ढंग आदि की किसी ऐसी बात का उल्लेख कर के, जो निराली हो, उस के भाषण का

समाचार लिख लेना चाहिए और फिर सभा की समाप्ति में इधर उधर पता लगा कर व्यक्ति का नामोल्लेख कर देना चाहिए। उस दशा में यदि अवकाश न हो तो बिना नाम दिये हुए भी केवल उस निराले चिह्न से भी काम चल सकता है। किन्तु पता लगाने के लिए कार्यवाही के बीचमें किसी प्रकार की पूछताछ न शुरू करनी चाहिए। रिपोर्टर के लिए यह बहुत सख्त नियम है कि सभाओं में वे बिलकुल मूकवत काम करें। उन्हें न अपने निजी काम के लिए सभा के बीच में बोलने का हक है और न सभा के काम के लिए ही। यह नियम इतना कठोर है कि वे सभा के साथ या अलग न खुशी के स्थान पर खुशी जाहिर कर सकते हैं और न रंज के स्थान पर रंज।

रिपोर्टरों का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उन के कर्तव्यों का एकत्र वर्णन करना एक प्रकार से असम्भव है। किन किन अवसरों पर क्या क्या करना चाहिए इसका निर्णय रिपोर्टर की बुद्धि पर ही निर्भर रहता है। इस लिए मैं इन आवश्यक और प्रचलित बातों को कह कर ही से सन्तोष करता हूं।

रिपोर्टिङ्ग की महत्ता विदेशी समाचार पत्र जानते हैं। हमारे देश के समाचार पत्रों और उनके संचालकों को अभी इसका अनुभव नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे इसे जानते ही नहीं किन्तु उन्हे इसको कार्य रूप में देखने का अवसर ही नहीं मिलता। यहां की तो दशा ही बड़ी विचित्र है। शिक्षा का अभाव, नवयुग की लहर की न्यूनता, देश की दरिद्रता, आदि कारणों से

हमारे यहांके समाचार पत्र रिपोर्टर रखते ही नहीं—रख सकते ही नहीं। जहां पत्रों को इतने पढ़ने वाले तक नहीं मिलते जिनकी खरीदारी से पत्र सफलता पूर्वक चल सके, छोटा से छोटा कर्मचारि मण्डल रखने परभी जहां के पत्र संचालकों का खर्च पूरा नहीं पड़ता, वहां पर रिपोर्टर आदि रखकर कर्मचारियों की वृद्धि करके खर्च कैसे बरदाश्त किया जा सकता है? यह तो उन देशों का बातें है जहां एक एक समाचार पत्र के बीस बीस लाख तक ग्राहक और करोड़ों पढ़ने वाले होते है। और जहां लाखों रुपया रोज की विज्ञापनी आमदनी होती है। वे धन पैदा कर सकते है और पत्र को अधिक उपयोगी बनाने के लिए धन लगा भी सकते है। हमारे यहां की जनता की रुचि में अभी जागरण नहीं हुआ। एक तो शिक्षा का वैसे ही अभाव है। दूसरे जो लोग शिक्षित हैं भी वे हिन्दी से कोसों दूर भागते है। वे तो अंग्रेजी से ही अपना काम रखते हैं। समाचार देखेंगे तो अंग्रेजी पत्रों में, विचार देखेंगे तो अंग्रेजी पत्रों के, और ग्राहक बनेंगे तो अंग्रेजी पत्रोंके। ऐसी दशा में वेचारे हिन्दी के समाचार पत्रों पर जो बीतती है वह वे ही जानते हैं। अशिक्षित :समाचार पत्रों की उपयोगिता नहीं जानते। उनके लिए हिन्दी अंग्रेजी किसी प्रकार के समाचार पत्र कोई मूल्य नहीं रखते और शिक्षित अंग्रेजी समाचारपत्रोंके भक्त! अब हिन्दी समाचार पत्र आश्रय पावें तो कहां? और आश्रय पाये बिना —कमसे कम खर्चा 'बरदाश्त करने भर को धन पाये बिना, समाचार पत्र अपना कर्मचारि मंडल बढ़ायें

तो कैसे ? घाटा उठा-उठाकर कोई कितने दिनों तक काम कर सकता है ? यहां तो यह होता है कि कुछ विशेष समाचार पत्रों को छोड़कर शेष समाचार पत्र अंग्रेजी अखबारों से ले-लेकर समाचार भरते रहते हैं। उनका अलग से न कोई रिपोर्टर रहता है और न कोई सम्वाददाता। विशेष समाचार पत्र भी जिनका जिक्र ऊपर किया गया है, विशेष अवसरों पर ही अपने रिपोर्टर और सम्वाददाता नियुक्त करते हैं। उनके यहां :भी नियम वद्ध स्थायी रिपोटंर मण्डल नहीं हैं। कुछ दैनिक पत्रोंको छोड़कर—अन्य पत्र समाचार समितियों।की सेवाएँ भी नहीं लेते। अभी हिंदी पाठकों में यह बात पैदा नहीं हुई कि वे जल्दी से जल्दी मौलिक रूप में समाचार पढ़नेके लिए उत्कण्ठित रहें। हमारे यहां के पत्रों में इस प्रकार की शिथिलताओं का यही एक प्रधान कारण है। यदि जनता की मनोभावना में परिवर्तन हो जाय, वह ताजी से ताजी खबरें, असली मौलिक रूपमें देखने की रुचि पैदा कर ले, जिन पत्रों में इन बातों की बहुतायत हो उनका पढ़ना पसन्द करने लगे तो फिर समाचार पत्रों के कार्यालयों में रिपोर्टरों के दल बन जायं और समाचार पत्र देश की एक उपयोगी और शक्तिशाली सम्पत्ति हो जायं।

——:o:——

सम्वाददाता

—:*:—

सम्पादक, रिपोर्टर, सम्वाददाता आदि समाचार पत्रों के बहुत आवश्यक कर्मचारी है। अच्छे समाचारपत्रों के लिए इनकी बड़ी आवश्यकता होती है। वे समाचारपत्र जिनमें ये कर्मचारी नहीं हैं, सचमुच अभागे हैं। इन कर्मचारियों के हुए बिना समाचारपत्रों में अपना निजी— ऐसा जो अन्यत्र न हो— कुछ होना कई अंशों में असम्भव सा हो जाता है। न्यूज एजन्सीज (समाचार-समितियां) एक से ही समाचार सब समाचार पत्रों के पास भेजती हैं। यदि केवल वे ही समाचार देकर पत्र के संचालक और सम्पादक संतोष कर बैठें तो देश में अनेक पत्रों की विशेषता ही कुछ न रह जाय। उनमें विशेषता पैदा करने के निमित्ति समाचार पत्रों के लिए यह आवश्यक है कि उनके पास उनके निजी रिपोर्टर और सम्वाददाता हों।

मैंने रिपोर्टर और सम्वाददाता दो अलग-अलग कर्मचारियों का उल्लेख किया है। दोनों के कार्यों और कर्तव्यों में बहुत कुछ साम्य होने के कारण अधिकांश में इनमें कोई अन्तर नहीं माना जाता। किंतु इनमें अन्तर अवश्य होता है। रिपोर्टर समाचार पत्रों का ऐसा साधारण कर्मचारी है जो स्थान-स्थान पर और किसी भी अवसर पर जाकर समाचार संग्रह करता है

और उन्हें पत्र के पास भेजता है; किंतु सम्वाददाता हमेशा इधर उधर मारे मारे नहीं फिरा करते। उनको नियुक्ति विशेष अवसरों पर और विशेष स्थानों पर की जाती है। जब कहीं कोई खास घटना घटी, कोई उत्सव हुआ, सभा हुई, कोई और वारदात हुई तब सम्वाददाताओं की नियुक्ति होती है। वे उस स्थल और अवसर पर जाकर तमाम बातों की छानबीन करते हैं और उसकी सूचना समाचार पत्र के पास भेजते हैं। वे लोग भी सम्वाददाता कहलाते हैं जो किसी विशेष स्थान के रहनेवाले हैं और उन्हें उस स्थान के या उसके आसपास के समाचार भेजने का अधिकार या हुक्म दे दिया जाता है। रिपोर्टर एकही स्थान के लिए बँधे नहीं होते। उनके जिम्मे सब तरह के काम होते हैं। कहीं जाकर समाचार लाने के लिए वे भेजे जा सकते हैं। उनके गुणों और कर्मों में भी काफी अन्तर होता है। चूंकि सम्वाददाता की नियुक्ति विशेष अवसरों पर और विशेष घटना के लिए होती है उनके लिए यह आवश्यक होता है कि वे उस विषय की अच्छी जानकारी रखते हों। रिपोर्टरों के लिए यह आवश्यक नहीं क्योंकि उनको एकही या एकसी ही घटना का समाचार भेजने का काम नहीं सौंपा जाता। उन्हें अनेक स्थानों पर और अनेक प्रकार की घटनाओं का समाचार भेजना होता है और यह असम्भव है कि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक कार्य में पूर्ण दक्षता और प्रत्येक विषय का पूर्ण ज्ञान रखता हो। इसलिए रिपोर्टरों के लिए केवल इतनाही काफी होता है कि वे अनेक

विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान रखते हों। विशेष जानकारी की उन्हें आवश्यकता नहीं होती, यह और बात है कि उनमें ऐसी विशेष योग्यता भी हो। किन्तु सम्वाद्दाता के लिए अपने विषय का पूर्ण ज्ञान आवश्यक होता है, नहीं तो उसके भेजे हुए समाचार में आवश्यक महत्व नहीं आता। रिपोर्टर को अपने समाचार भेजने में, साधारणतया, यह अधिकार नहीं होता कि वह उन घटनाओ के संबंध में कुछ रायज़नी करे, किन्तु संवाद्-दाता को यह अधिकार सर्वथा प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त रिपोर्टरोंका वर्णन घटना–क्रम का एक विहगावलोकन सा होता है अर्थात् कुछ खास खास बातों का जिक्र उसके वर्णन में होता है परन्तु सम्वाद्दाता का वर्णन काफी विस्तृत और प्रायः सब बातों को लिये हुए होता है। इसी प्रकार के और भी भेद गिनाये जा सकते हैं। फिर भी इन दोनों कर्मचारियों के अनेक काम एक से ही होते हैं। और ऐसी दशा में उनके कार्यों और कर्तव्यों में भी समता होती है।

संवाद्दाताओं का इतिहास बहुत पुराना है। वह रिपोर्टरों के इतिहास से पुराना तो है ही किन्तु यदि यह कहा जाय कि उनका इतिहास समाचार पत्रों से भी अधिक पुराना है तो भी कोई अत्युक्ति नहीं क्योंकि समाचार पत्रोंका--जिस प्रकार वे इस समय संसार में विद्यमान है, उस प्रकार के समाचार पत्रों का-जब नामोनिशान तक न था तब भी संवाद्दाता गण अपना कार्य करते थे। उनके संवादों ने ही समाचार पत्रों को जन्म दिया।

'समाचार पत्र' शीर्षक अध्याय में कहा जा चुका है कि जब समाचार पत्र आदि की कोई व्यवस्था न थी तब सब से पहिले संवाददाता गण अधिकारियों की जानकारी के लिए विशेष बिशेष समाचार भेजा करते थे और आगे चलकर इन्हीं समाचारों ने समाचार पत्रों का रूप धारण कर लिया। सच पूछिए तो समाचार पत्रों की नीव ही इन संवाददाता गण की डाली हुई है। रिपोर्टर और संपादक आदि बाद की उपज हैं। प्रारंभ काल में अधिकारियों के पास समाचार भेजने वाले लोगों को मैंने संवाद-दाता ही माना है रिपोर्टर नहीं। इसका कारण यह है कि वे रिपोर्टरों की भांति समाचारों के लिए स्थान स्थान पर मारे मारे न फिरा करते थे प्रत्युत् वे एक स्थान पर रह कर किसी विशेष कार्य संबंधी सूचनाएँ ही दिया करते थे। ये बातें हिन्दी समाचार पत्रों के इतिहास में लागू नहीं होतीं। हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास इससे उलटा है। वहां तो छूटते ही पहिले समाचार पत्र निकल पड़े और फिर कर्मचारियों आदि की जो कुछ ईजाद हुई वह हुई। हिन्दी में तो विदेशों के पके पकाये भोजनों की थाली ज्यों की त्यों उठाकर रख ली गयी है। उसमें पहिले चूल्हा जलाने वाले, रोटी पकाने वाले और परोसने वाले लोगों की आवश्यकता नहीं रही। उस परोसी हुई थाली के सामने आ जाने के बाद अपने अनुकूल भोजन की आवश्यकता के अनुसार बाद में इन कर्मचारियों की यत्र तत्र नियुक्ति होने लगी है। पहिले समाचार पत्र निकलने लगे। इसके बाद पत्र को अधिक सुन्दर

अधिक उपयोगी और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कार्यालयों में रिपोर्टर और संवाददाता आदि रखे जाने लगे। किन्तु इन कर्मचारियों की हिन्दी पत्रों में आज भी काफी संख्या नहीं है। काफी क्या, न जाने कितने समाचारपत्र तो ऐसे भरे पड़े हैं जिन में इन कर्मचारियों के नाते मिट्टी का एक पुतला भी नहीं है। जहां पर हैं वहां भी बहुत थोड़े—एकाध ही। इसका कारण है। वह यह कि हमारी जनता में अभी ताजे और विविध प्रकार के तथा वास्तविक समाचार जानने की उत्सुकता ही नहीं उत्पन्न हुई। समाचार पत्रों की पूछ ही कम है, उनकी आमदनी ही काफी नहीं होती; वे बेचारे कर्मचारी रखें तो कैसे ? कब तक और कहां तक हानि उठावें ? इसी लिए हिन्दी में न तो संवाददाताओं का पता चलता है और न रिपोर्टरों का। हालत यहां तक है कि समाचार समितियों तक का यथेष्ट उपयोग उनमें नहीं होता। यह दशा केवल साप्ताहिकों ही की नहीं है बल्कि दैनिकों तक की है। इन समाचार पत्रों में होता यह है कि निकटतम स्थान के अंग्रेजी समाचार पत्रों से जो जल्दी से जल्दी प्राप्त हो सकते हैं, अनुवाद करके समाचार छाप दिये जाते हैं और उन्हीं के अनुसार संपादकीय कालमों में अपने विचार प्रकट कर दिये जाते हैं। बस, पत्र का काम समाप्त हुआ मान लिया जाता है।

सम्वाददाताओं और रिपोर्टरों के कामों में बहुत कुछ समता होती है। इसलिए रिपोर्टरों के सम्बन्ध का वर्णन करते हुए जिन

गुणों का होना आवश्यक बतलाया गया है वे समस्त गुण तो सम्वाददाता में होने ही चाहिए उनके अतिरिक्त अपने कार्य की विशेषता के अनुसार अन्य गुणों का होना भी आवश्यक होता है। सम्बाददाताओं में शार्टहैण्ड टाइप राइटिंग का ज्ञान होना एक प्रकार से अनिवार्य होता हैं। उन्हें अपने विषय की अधिक से अधिक बातें जानने की आवश्यकता होती है। विशेष अवसरों पर किसी विशेष नेता या अन्य वक्ताओं को वक्तृता अधिक विस्तार के साथ देनो होता है। इन अवसरों पर यदि शार्टहैन्ड का ज्ञान उन्हें न हो तो वे अपना काम जैसा चाहिए वैसा न कर सकेंगे। उन की श्रवणेन्द्रिय और नेत्रेन्द्रिय भी पूर्ण बल शाली होनो चाहिए ताकि कोई बात ऐसो न निकल जाने पावे जिसे वे देख या सुन न सकें। इन इन्द्रियों में जितनी अधिक चपलता होगी संवाददाता के लिए उतने ही अधिक लाभ की बात होगी। संवाददाताओं के लिए एक गुण और आवश्यक है। वह यह कि उनकी स्मरण-शक्ति काफी तीव्र हो। इससे वे अपने अभिलषित विषय पर राय-जनी करते समय पूर्व की एक सी ही कई घटनाओं का या पर-स्पर विरोधिनी बातों का उल्लेख करके अपने वर्णान को अधिक रोचक और उपयोगी वनाने में समर्थ होंगे, जो उनके लिए प्रशंसा और प्रतिष्ठा की बात होगी। संवाददाताओं के अन्य गुणों में मिष्ठभाषी होना, वाक्पटु होना, सदाचारी होना, धीर होना, साहसी होना, हरएक काम के लिए सदा तैयार रहना, ऐसा व्यवहार करना जिससे शत्रुता कम और मित्रता अधिक बढ़े,

आदि बहुत उपयोगी और लाभप्रद गुण हैं। सब से बढ़कर उनके लिए समय की पाबन्दी रखते हुए एक नियमित समय विभाजन के अनुसार काम करना आवश्यक होता है। यदि उनमें यह गुण न हुआ और वे काहिलों की भांति कभी कुछ और कभी कुछ करने के आदी हुए तो वे अच्छे संवाददाता कभी न हो सकेंगे।

सम्वाददाता प्रायः ऐसे ही अवसरों पर नियुक्त किये जाते हैं जब कोई विशेष घटना घटती है, जैसे यदि कहीं पर दंगा हो गया हो, कहीं कोई युद्ध हो रहा हो, किसी स्थान पर कोई नया आन्दोलन जारी हुआ हो, कहीं पर किसी आदमी, जमीन्दार, राजा आदि ने अपनी प्रजा पर भीषण अत्याचार किया हो, किसी विशेष महत्व रखने वाले विषय पर कोई सभा हो रही हो, किसी बहुत बड़े आदमी का आगमन हुआ हो, उसका भाषण होने वाला हो, किसी विशेष संस्था का कोई महत्व पूर्ण उत्सव या अधिवेशन हो रहा हो, कोई बड़ा सनसनी खेज मुकदमा हो रहा हो, आदि आदि। इन अवसरों पर विशेष रूप से जांच पड़ताल करने के लिए जाने वाले व्यक्ति पर कितनी जिम्मेदारी होती है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। यह बहुत आवश्यक है कि ऐसा व्यक्ति ही संवाददाता नियुक्त किया जाय जिस पर संपादक का पूरा पूरा विश्वास हो और संवाददाता को, बदले में, यह उचित और आवश्यक है कि वह बड़ी तत्परता और सावधानी से अपने कर्तव्य--कार्य का संपादन करे।

संवाददाताओं का काम रिपोर्टरों के काम की अपेक्षा अधिक सुलझा हुआ होता है। उन्हें यह आवश्यकता नहीं होती कि अदालतों, सभा सोसाइटियों, दफ्तरों और मठों में समाचारों की तलाश में फेरी लगाते फिरें, एक निश्चित स्थान पर उनकी नियुक्ति होती है और वहीं से समाचार लाना उनका काम होता है। किन्तु इससे यह भी न समझ लेना चाहिए कि उनका काम नितांत सरल और सदा सुसाध्य होता है। उसमें भी कठिनाइयां आ जाती हैं और विस्तृत जानकारी के लिए एक ही स्थान पर न पड़े रह कर उसमें भी दूर दूर भटकने की आवश्यकता पड़ जाती है। सभा सोसाइटी या किसी विशेष संस्था के अधिवेशन, किसी विशेष आन्दोलन की प्रगति आदि के ऐसे अवसरों पर जिनमें आपस में काफी मतभेद होता है संवाददाता का काम और भी कठिन हो जाता है। उसे पक्ष और विपक्ष—दोनों दलों की तमाम बातें जानने की जरूरत पड़ती है और दोनों का हाल देने की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त संवाददाता को केवल घटना का थोड़ा सा हाल लिख कर ही नहीं रह जाना होता। उसको इन बातों का उल्लेख भी करना होता है कि घटना किस कारण से घटी, किस परिस्थिति में घटी, किसके द्वारा उसको प्रोत्साहित किया गया, जनता पर उसका क्या प्रभाव पड़ा, भविष्य में फिर उसकी आशंका है या नहीं, आदि आदि। इसलिए उनका काम सुलझा हुआ होने पर भी सरल नहीं होता।

संवाददाताओं के लिए, रिपोर्टरों की भांति ही यह आवश्यक होता है कि वे खास खास समाचार पत्रों को नियमित रूप से

अध्ययन करते जायँ। इससे उन्हें अनेक बातें सूझेंगी और वे अपने काम में अधिक योग्यता के साथ सफल होंगे। सभा सोसाइटियों में यदि उनकी नियुक्ति हो तो उन्हें उसी प्रकार का सब व्यवहार करना चाहिए जैसे रिपोर्टरों को करना होता है। इसके अतिरिक्त किसी घटना विशेष का ईमानदारी के साथ शुद्ध और स्पष्ट समाचार देना, जहां तक हो सके जल्दी से जल्दी समाचार भेजना, सरल और जटिल सब प्रकार की परिस्थितियों का साहस पूर्वक मुकाबला करना, एक खास आकार प्रकार के कागजों पर लिखना, कागज के एक ही तरफ लिखना, हाशिया छोड़कर, दूर दूर साफ साफ लिखना ताकि संपादक को शुद्ध करने की गुञ्जाइश बनी रहे, प्रत्येक पृष्ठ पर क्रम संख्या देना आदि, साधारण बातों में संवाददाताओं को रिपोर्टरों की भांति ही काम करना होता है।

संवाददाता मोटे तौर से दो प्रकार के होते हैं। एक ऐसे संवाददाता जो सदा एक ही स्थान पर रहते हैं और उसी स्थान से वहां की या उसके आस पास की खबरें भेजते रहते हैं। दूसरे वे जो किसी खास अवसर पर नियुक्त होकर किसी खास घटना का समाचार लाते हैं। इनके अतिरिक्त और भेद भी होते जिन्हें 'एक संवाददाता', 'विशेष संवाददाता', 'हमारा विशेष संवाददाता' आदि नामों से पुकारा जाता है। ऊपर संवाददाताओं के पहिले जो दो भेद बताये गये हैं उनमें से वह संवाददाता जो एक ही स्थान पर रहता है और वहीं से खास उस

स्थान के या उसके आस पास के समाचार भेजता है 'साधारण संवाददाता' कहा जाता है। और जो विशेष अवसरों पर नियुक्त किया जाता है वह 'विशेष संवाददाता' के नाम से पुकारा जाता है। इसके अतिरिक्त उस समय भी एक संवाददाता 'विशेष संवाददाता' मान लिया जाता है जब वह अपने स्थान के या उसके आस पास के समाचार विशेष शुद्धता और विस्तार के साथ भेजता है। 'एक संवाददाता' उस अवसर पर लिखा जाता है जब संवाददाता द्वारा भेजा हुआ लेख सन्देह पूर्ण होता है। ऐसी अवस्था में घटना की सचाई पर जोर देने की हिम्मत नहीं की जा सकती। इसीलिए बजाय इसके कि उस समाचार को जो सन्देहास्पद हो, अपने विशेष संवाददाता द्वारा भेजा हुआ समाचार कहें, यह कह दिया जाता है कि यह 'एक संवाददाता' द्वारा भेजा गया है। इस प्रकार के उल्लेख से यह ध्वनि निकलती है कि सम्पादक को उस लेख पर पूर्ण विश्वास नहीं है। जो संवाददाता अयाचित रूप से समाचार भेजते हैं उनके लिए भी "एक संवाददाता" लिखा जाता है। जब संवाददाता का भेजा हुआ विवरण अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण और विस्तृत होता है तब उसे 'हमारे विशेष संवाददाता द्वारा' भेजा हुआ विवरण कहते हैं।

इन भेदों के अलावा संवाददाताओं का एक महत्व पूर्ण भेद और है जिसे 'सैनिक संवाददाता' के नाम से पुकारते हैं। सैनिक संवाददाता का काम बहुत ही महत्व पूर्ण होता है। यह संज्ञा

उस संवाददाता के लिए होती है जो युद्ध के समय वहां के समाचार लाने के लिए सेना के साथ भेजा जाता है। युद्ध का समय कितना भयंकर, कितना नाजुक और कितना महत्व-पूर्ण होता है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि ऐसे अवसरों पर समाचार भेजने में कितनी सावधानी, कितनी सतर्कता और कितनी योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। न जाने किस समाचार का क्या असर देशवासियों पर पड़े, उस सम्बन्ध में वे क्या काम कर बैठें, उससे अपने देश को हानि या विरोधी देश को लाभ न हो बैठे आदि बातों का सदैव भय लगा रहता है। ऐसे सशंक वातावरण में सम्वाददाता का काम कितना गुरुतम होता है! इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस काम के करनेवालों में असाधारण योग्यता होनी चाहिए। उनमें दो प्रकार की योग्यताओं की आवश्यकता है। एक शारीरिक और दूसरी बौद्धिक। कहने का यह मतलब नहीं कि इन योग्यताओं की अन्य सम्वाददाताओं को आवश्यकता नहीं होती परन्तु मतलब यह है कि सैनिक सम्वाददाता के लिए इन गुणों की विशेष रूपसे आवश्यकता होती है। उसे शारीरिक योग्यता में कठिन परिश्रम करनेवाला सिपाही और बौद्धिक योग्यता में प्रखर प्रतिभा सम्पन्न प्रधान सेनापति की योग्यता रखनी होती है, प्रत्येक समाचार को खूब समझ बूझकर भेजना होता है, सदैव इसलिए सतर्क और जागरूक रहना पड़ता है कि उसके भेजे हुए समाचार कोई अनिष्ट परिणाम न निकाल बैठें।

सैनिक सम्वाददाता के लिए इस बात का सदा भय रहता है कि वह कहीं वैरियों द्वारा अन्य सिपाहियों के साथ गिरफ्तार न कर लिया जाय, या गोली से मार ही न डाला जाय। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए द्वितीय सम्पादक सम्मेलन (भरतपुर) के सभापति तथा अनुभवी सम्पादक पं० माखनलालजी चतुर्वेदी का इस काम को 'जोखिम भरी जिम्मेदारी' का काम कहना सर्वथा सत्य है। कितनी बड़ी जोखिम इस काम में है और कितनी बड़ी जिम्मेदारी का यह काम है! देश का बनना बिगड़ना जरासी सावधानी और प्रमाद में हो सकता है। इसलिए यह नितांत आवश्यक है कि सैनिक सम्वाददाता जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण पद पर असाधारण प्रतिभा और योग्यतावाले व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाय। ऐसे आदमियों से हानि की अपेक्षा लाभ ही की अधिक आशा होती है।

सैनिक सम्वाददाताओं को लड़ाई के मैदान में कभी-कभी लगातार कई दिन सेना के साथ चलते-हो-चलते बिताने पड़ते हैं, दौड-धूप, धूप-छांह, जाड़ा, गरमी, बरसात सब कुछ सहना पड़ता है। अनेक प्रकार के स्थानों में, विभिन्न प्रकार के जलवायु में गुजर करनी पड़ती है, कभी पैदल दौड़ना, तो कभी घोड़े की जीन पर ही तमाम दिन बिताना पड़ता है। न खाना है न पानी और, न विश्राम,। आठ पहर और चौसठ घड़ी काम-काम और काम। ऐसी परिस्थिति में पड़कर स्वास्थ्य का कायम रखना बड़ा कठिन हो जाता है। इसीलिए सैनिक सम्वाददाता

के लिए यह अत्यन्त आवश्यक गुण बताया गया है कि उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो, जो इस प्रकार के वायुमण्डल और परिस्थितियों से बिगड़ न सके। जहां पर धुआंधार लड़ाई हो रही हो, चारों ओर से सन-सन गोलियां चल रही हों, हवाई जहाजों से दिन में और रात में लुक छिपकर एकाएक बम बरसा दिये जाते हों, गोलाबारी से सदा भयंकर त्रास छाया रहता हो वहां सोने की बात तो एक व्यर्थ सी ही बात मालूम होती है। नींद तो संग्राम क्षेत्र के सैनिकों के भाग्य में बदी ही नहीं होती। कभी वे विरोधी के वारों को बचाने के लिए जगते हैं और कभी अपने वार करने के लिए। सैनिकों की भांति ही सैनिक सम्वाददाताओं के लिए भी सोना अलभ्य ही होता है। इसलिए सैनिक सम्वाददाताओं को इस बात का अभ्यास करना चाहिए कि श्वान-निद्रा से ही संतुष्ट हो जायं और किसी विशेष समय का इन्तजार न करके जिस समय अवकाश मिल जाय उसी समय सो सकें। यह आदत उनके लिए बड़े हित की वस्तु होगी। उनका प्रसन्नचित्त और सदाचार युक्त तथा व्यवहार--कुशल होना भी नितांत आवश्यक होता है। इससे वे वैरियों के अनेक आघातों से अपनी रक्षा कर सकते हैं। सैनिक सम्वाददाता को कभी घबड़ाना न चाहिए। उसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि सदा सचेत रहे। उसमें वह शक्ति होनी चाहिए जिससे वह एक साथ ही विचार भी कर सके और काम भी। अनेक भाषाओं ज्ञान भी उसके लिए बड़ा सहायक होगा। उसे भूगोल का तो

बहुत ही सुन्दर ज्ञान होना चाहिए। सेना-संचालन सम्बन्धी टीका टिप्पणी इस ज्ञान के बिना होही नहीं सकती। उसके लिए अपने देश के इतिहास का पूर्ण ज्ञान तथा अन्य देशों के राजनैतिक इतिहास का साधारण ज्ञान होना भी कम आवश्यक नहीं होता।

समाचार भेजने में उसे बहुत बड़ी बुद्धिमानी से काम लेने की आवश्यकता होती है। पहिले तो देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व के कारण ही वह निरंकुश नहीं हो सकता। दूसरे उस पर सेनानायकों का कम शासन नहीं होता। इन दोनों कारणों से सैनिक सम्वाददाता का समाचार प्रेषण कार्य अन्य सम्वाददाताओं की अपेक्षा कहीं अधिक दुस्तर होता है। अन्य सम्वाददाताओं के सम्बन्ध में इस प्रकार के दोहरे बंधन नहीं होते। सैनिक सम्वाददाता को इस प्रकार समाचार लिखने चाहिए जिससे उसे जो शिकायतें मालूम पड़ती हों उनके रफा होने में सहायता मिले और जो गलतियां हों वे सुधरें। लेखन शैली बड़ी मनोमोहक आकर्षक और सरल होनी चाहिए। अपनी जीत तक के समाचार सीधी सादी और सरल भाषा में ही देना चाहिए, लम्बे-लम्बे शब्दों और लच्छेदार वाक्यों में नहीं। सैनिक सम्वाददाता का काम सब से निराला होता है। समाचार भेजने में जहां अन्य प्रकार के सम्वाददाताओं के लिए यह सर्वथा आवश्यक होता है कि वे शीघ्रातिशीघ्र समाचार भेजें वहां सैनिक सम्वाददाताओं के सम्बन्ध में यह बात सर्वथा लागू नहीं

हो सकती। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें समाचार भेजने में शीघ्रता न करनी चाहिए। शीघ्रता तो करनी ही चाहिए किंतु सदा शीघ्रता नहीं की जा सकती। युद्धकाल में ऐसे अवसर भी आ सकते हैं जब शीघ्रता करना बहुत घातक सिद्ध हो जाय। कल्पना कीजिए कि आप के सेनापति ने एक योजना बनायी और उसके अनुसार काम करना निश्चय किया। अब यदि आप का सम्वाददाता उस योजना की बात समाचार पत्रों में शीघ्रता का ख्याल रखते हुए दे द तो क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि वैरियों के सेनापति आप के समाचार पत्रों द्वारा उस योजना की बात जान कर उसके निराकरण के लिए पहिले ही से सयत्न हो जायं ? और क्या इस प्रकार शीघ्रता के फेर में पड़कर सैनिक सम्वाददाता देश के लिए हानि नहीं पहुंचाता ? इसलिए इस कार्य में सावधानी के साथ शीघ्रता करनी चाहिए। उन्हें बहुत ही जागरूकता, सतर्कता और सावधानी से काम लेना चाहिए। आज कल लड़ाई के साधनों में जो उन्नति हुई है उसके कारण अब एक सम्वाददाता से काम नहीं चलता। आज कल अनेक सैनिक सम्वाददाताओं की आवश्यकता होती है। सम्वाददाताओं की नियुक्ति में, चाहे जिस प्रकार के सम्वाददाता क्यों न हों, स्वभाव और ज्ञान का ख्याल सबसे प्रधान रहना चाहिए। स्वभाव और ज्ञान के अनुकूल ही उनकी नियुक्ति होनी चाहिए। और सम्पादक को चाहिए कि ज्यों-ज्यों सम्वाददाताओं के समाचार आते जायं त्यों-त्यों उनमें जिन-जिन कपियों

का उसे अनुभव होता जाय उन-उन का इशारा और उनके दूर करने तथा अधिक सम्पन्नता प्राप्त करने के लिए नयी-नयी हिदा-यतें देता जाय। हिंदी समाचार-पत्र-संसार में तो अभी सम्वा-द्दाताओं और रिपोर्टरों की कोई व्यवस्था ही नहीं। किन्तु जहां पर व्यवस्था है वहां ये कर्मचारी बहुत बड़ी प्रधानता पाये हुए हैं। उनका एक दल का दल समाचार पत्र के दफ्तर में होता है और वह आवश्यक अवसरों पर अपने-अपने काम के लिए भेज दिया जाता है। इसके लिए तनख्वाह के अलावा, उनके आने जाने, खाने पीने आदि के खर्चे भी, समाचारपत्रों के संचालक ही बरदाश्त करते हैं। सैनिक सम्वाद्दाताओं के लिए बहुत लम्बे-लम्बे खर्चे बरदाश्त करने पड़ते हैं। यह खर्चे कभी-कभी इतने भारी हो जाते हैं कि किसी एक समाचार पत्र के संभाले नहीं संभलते। "बोर" वार के जमाने में सैनिक सम्वाद्दाताओं का ऐसा ही खर्च हो गया था। उस समय इङ्गलैंड के समाचार पत्रों ने आर्थिक गुट बना लिये थे और वे सैनिक सम्वाद्दाताओं के खर्चे आपस में बांट लेते थे। कभी-कभी अन्य अवसरों पर भी बड़े-बड़े खर्चे बरदाश्त करके समाचारपत्र अपने सम्वाद्दाता भेजते हैं। कुछ दिन पहिले तक तो इङ्गलैंड के सम्वाद्दाताओं को इस लिए भी खर्च दिया जाता था कि वे किसी खास उत्सव में शामिल होने के लिए वैसी ही बढ़िया पोशाक बनवा सकें। यदि कोई बड़ा आदमी कहीं विदेश यात्रा आदि के लिए जाता है तो पत्र संचालक उसके साथ अपने सम्वाद्दाता नियुक्त कर सफर का तमाम खर्चा अपने सर ओढ़ने के

लिए तैयार रहते हैं। सम्वाददाता भी पत्र संचालकों के इस खर्चा बर-दाश्त करने के बदले में अपनी जान की बाजी लगा कर समाचार लाते है। यहां तो प्रतिस्पर्द्धा आदि की कोई वैसी बात नहीं है किंतु अमेरिका आदि में तो प्रत्येक पत्र यह स्पर्द्धा करता है दूसरा पत्र न उससे अच्छे समाचार दे सके और न उससे जल्दी दो। इसी स्पर्धा में हजारों रुपये खर्च होते है। विशेष अवसरों पर विशेष व्यय भार वहन कर विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त सम्वाददाता बुलाये जाते हैं और उनके द्वारा समाचार मंगवाये जाते हैं। इन सम्वाददाताओं के काम इतने आश्चर्य कारक और साहस-पूर्ण होते हैं कि बड़े-बड़े जासूसी और ऐयारी उपन्यास के पात्र भी समता नहीं कर पाते। गुप्त से गुप्त सभा में ये प्रवेश कर जाते हैं, छिपी से छिपी बात को जान लेते है और तहखानो में रखे हुए कागजात तक समाचारपत्रों के कालमों में प्रकाशित करवा कर गली-गली बंटवा देते हैं। किन्तु यह सब होता है और हो सकता है केवल इसलिए कि वहां की जनता इनका आदर करना जानती है, इनकी दाद देती है और इनका मूल्य समझती है। यदि हिंदी-भाषी जनता में भी ये भाव आ जाय तो हमारे यहां भी इन बातों की कमी न रह जाय।



समाचार-समितियां



समाचार पत्रों के लिए जिस प्रकार रिपोर्टर और संवाददाता आवश्यक हो गये हैं (यहाँ केवल हिंदी पत्रों से ही तात्पर्य नहीं है) उसी प्रकार समाचार-समितियाँ भी आवश्यक हो गया हैं। असल में समाचार समितियां रिपोर्टरों का एक संगठित समूह मात्र ही है। अंतर केवल इतना है कि रिपोर्टर एक या यदा कदा एक से अधिक पत्रों को समाचार भेजने का काम करते हैं और समाचार- समितियाँ आम तौर से अनेक पत्रों को समाचार भेजती हैं। कुछ समाचार-समितियाँ ऐसी भी हैं जो कुछ खास समाचार पत्रों को जो उसके सदस्य होते हैं और जिनकी संख्या परिमित होती है समाचार भेजती हैं, औरों को नहीं। किंतु इस प्रकार का समाचार-समितियाँ भारत वर्ष में नहीं हैं। यहाँ तो ऐसी ही समितियाँ हैं जो एक निश्चित चंदा देने पर किसी समाचार पत्र को समाचार भेज सकता हैं। इन समितियों के प्रतिनिधि देश-विदेश के तमाम बड़े बड़े शहरों और कस्बों तक में घूमा करते हैं और वे जो समाचार पाते हैं, उसे अपने निकटवर्ती पत्रों के अलावा अपनी समिति के केंद्र स्थानों को भी भेज देते हैं ताकि वह (समाचार) अन्य पत्रों को भी भेजा जा सके।

बहुत सी समाचार-समितियाँ व्यापारिक संस्था सी होती हैं जो दूसरी संस्थाओं से समाचार लेकर मुनाफे पर बेंचती रहती

हैं। ऐसी समितियां अमेरका में अधिक पाई जाती हैं। ये समितियाँ राइटर जैसी अंतर्देशीय या अन्य साधारण समाचार समितियों से भी कोई विशेष समाचार, जिसे वे समझती हैं कि वह पत्रों के लिए अधिक रुचिकर होगा; एक निश्चित रकम देकर खरीद् लेती हैं। फिर राइटर या अन्य साधारण कंपनियों को, जिनसे समाचार खरीदा जाता है, वह समाचार उस हलके के समाचार पत्रों में भेजने का हक नहीं रह जाता जिसमें उक्त खरीदार समिति समाचार भेजती है। फिर तो खरीदार समिति ही उसे अपनी ओर से उन पत्रों को वे समाचार भेजती हैं जो उसके लिए चंदा देते हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत वर्ष में समाचार समितियों का अनुकरण भी पाश्चात्य देशों के उदाहरण पर ही किया गया है। इस लिए इस विषय के एतद्देशीय इतिहास में कोई विशेष चमत्कार नहीं हैं। किंतु विदेशों में समाचार समितियों के प्रचार में आने का बड़ा विस्तृत इतिहास है। पहिले, उस प्रारम्भकाल में जब समाचार पत्रों का वैसे ही जन्म हुआ था, समाचार-समितियों की कौन कहे रिपोर्टर आदि भी संगठित रूप से नहीं थे। कुछ फुटकर रिपोर्टर इधर उधर से समाचार एकत्र करके भेजते थे और वे ही समाचार पत्रों में प्रकाशित होते थे। धीरे-धीरे कुछ समाचार पत्रों के संचालकों को इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि उनके पत्रों में समाचार भेजने के लिए ऐसे आदमी हों जो साधारण समाचारों की अपेक्षा अधिक

और अच्छे समाचार भेज सकें। यह बात उनके हृदयों में इस आशा से उत्पन्न हुई कि ऐसा करने से, वे, दूसरे पत्रों की अपेक्षा एक विशेष बात अपने पत्र में दे सकेंगे और इस प्रकार प्रतिद्वन्द्विता में दूसरों से बाजी मार ले जाँयगे। सबसे पहिले १९ वीं शताब्दी के आरम्भ-काल में इंगलैंड के 'मार्निंग क्रॉनिकल' नाम के पत्र ने इसी भाव से प्रेरित होकर अपना स्वतंत्र रिपोर्टर-मंडल स्थापित किया। उसकी देखा-देखी अन्य पत्रों ने भी रिपोर्टर रखे। यह सब इस स्पर्धा के फल स्वरूप हुआ कि एक पत्र दूसरे पत्र से अधिक और अच्छे समाचार दे। किंतु जब रिपोर्टरों की संख्या प्रायः सर्वत्र एक सी ही हो गयी, सभी पत्र एक से ही समाचार देने लगे तब अपने अपने पत्र में विशेषता लाने के और उपाय सोचे जाने लगे। अब समाचार पत्र संचालक अधिकता और अच्छाई के साथ साथ इस बात का प्रयत्न करने लगे कि उनके पत्र में अन्य पत्रों की अपेक्षा पहले समाचार प्रकाशित हो जायं। इसी बीच में तारों की एक कंपनी खुली। इससे उक्त भाव की पूर्ति को बहुत सहारा मिला। समाचार पत्र पोस्ट या हरकारे के जरिये से अपने समाचार न मँगाकर जल्दी प्रकाशित करने के बिचार से इस कंपनी के तारों द्वारा मँगाने लगे। इस प्रकार तारों के ज़रिये सबसे पहले समाचार पत्रों को जो समाचार भेजा गया वह १८४६ ई० में पार्लियामेन्ट के उद्घाटन के समय दिया गया साम्राज्ञी विक्टोरिया का भाषण था। इसके बाद साधारण समाचार भी भेजे लगे थे। इस प्रकार जल्दी जल्दी

समाचार पाने से जनता में जल्दी जल्दी समाचार जानने की रुचि बढ़ी। अभी तक देहाती पत्रों के पाठक समाचारों के जल्दी जानने की उतनी कोशिश नहीं करते थे, किंतु अब उनकी रुचि में भी सुधार हुआ और वे शीघ्रातिशीघ्र समाचार जानने की उत्कंठा प्रकट करने लगे। समाचार पत्रों के चतुर संचालकों ने, जनता की इस रुचि और इस उत्कंठा के अनुरूप अपना कार्य-क्रम बनाया। अभी तक जो तार कंपनी थी वह समाचार पत्रों ही के लिए न थी, इस लिए इसके द्वारा समाचार भेजने में कभी कभी विलंब भी हो जाता था। अतः समाचार पत्र संचालकों ने विशेषतः शहरों के समाचार पत्रवालों ने मिल कर एक अपनी तार कंपनी खोली। यह कंपनी १८६५ में स्थापित हुई। इसके द्वारा समाचार भेजने में बड़ी सुविधा हो गयी। इस कंपनी ने अपने कर्मचारी रखे जो समाचार प्राप्त करके तार द्वारा समाचार पत्रों को भेजते थे इस कंपनी पर सरकार का हाथ न था, इस लिए वह इस कंपनी द्वारा भेजे गये समाचारों पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रख सकती थी और जैसा कि स्वाभाविक सा ही है, सरकार समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले समाचारों पर नियंत्रण रखना अपनी भलाई के लिए आवश्यक समझती थी। इस लिए उसने यह कंपनी खरीद ली। अब समाचार पत्रों को थोड़ी सी कठिनाई फिर दिखलायी पड़ी। ऐसी स्थिति में पत्र-संचालकों ने एक दूसरी समिति स्थापित की जो एक समाचार प्राप्त कर भिन्न भिन्न केंद्रों में तार द्वारा पहुंचा देती थी। इसी प्रकार धीरे-धीरे

और भी ऐसी समितियाँ स्थापित हुईं और उन्नति करते करते वर्तमान रूप में आयीं।

समाचार-समितियों के प्रतिनिधियों को वे तमाम सुविधाएँ प्राप्त रहती हैं जो समाचार पत्र के किसी रिपोर्टर के लिए सुलभ होती हैं। अर्थात् समाचार समितियों के प्रतिनिधि सार्वजनिक सभाओं में प्रवेश कर सकते हैं, अदालत में रिपोर्ट ले सकते हैं, अन्य घटनास्थल पर जाकर समाचार प्राप्त कर सकते हैं। और एक रिपोर्टर के करने योग्य सब काम कर सकते हैं। समाचार समितियों का उनके जन्म-काल से ही पत्रों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जहाँ पहले समाचार पत्र अपने रिपोर्टरों पर अधिक अवलंबित रहते थे वहाँ अब वे समाचार-समितियों के अधिक मोहताज रहते हैं। यह दशा विदेशों में ही है, हमारे यहाँ इसका यदि कुछ आभास दिखलायी पड़ता हैं, तो अंगरेजी समाचार पत्रों में ही। हिंदी पत्रों में तो अभी इसकी बहुत कमी है। हमारे यहाँ के समाचार-पत्रों की अभी प्रारम्भिक अवस्था है। इस लिए पाश्चात्य देशों में प्रारंभिक अवस्था में जो दशा थी वही हमारे यहाँ भी है। ज्यों-ज्यों हम इस कला में उन्नति करते जायंगे त्यों-त्यों हमारी स्थिति में भी परिवर्तन होंगे और हम भी समाचार-समितियों के अधिक आश्रित होते जायंगे।

भारत वर्ष में समाचार-समितियों के अस्तित्व का इतिहास कोई विशेष चमत्कार-पूर्ण नहीं हैं। हमारे सामने विदेशों का उदाहरण मौजूद था। आवश्यकता सिर्फ इतनी थी कि समाचार पत्र

इतनी अधिक संख्या में निकलने लगें जिन में समाचार भेज कर कोई कंपनी आमदनी कर सके। जब यह अवस्था आगई, तब समाचार-समितियों का भी जन्म हो गया।

इस समय पाश्चात्य देशों में राइटर कंपनी, प्रेस एसोसियेशन और एसोसियेटेड प्रेस (अमेरिका) बहुत प्रसिद्ध समाचार-समितियाँ हैं। राइटर कंपनी सबसे अधिक पुरानी है। यह कंपनी सन् १८४८ईसवी में पेरिस में स्थापित हुई थी और इसके संस्थापक थे मि० ज्यूलियस राइटर। प्रारंभ में यह नितांत सरकारी संस्था थी कोई १७ वर्ष तक यह संस्था अपनी इसी हैसियत से काम करती रही। सन् १८६५ ईसवी में कुछ व्यक्तियों के आंदोलन और उद्योग से यह संस्था सार्वजनिक संस्था बना ली गई। किंतु फिर भी यह सदा सरकारी पक्षका समर्थन करती रही और अब तक करती रहती है। अब इस की प्रसिद्धि एक अर्ध सरकारी संस्था की भाँति है मगर काम अब भी पूर्ण सरकारी नीति से ही होता है। यह संस्था अंतर्राष्ट्रीय समाचार भेजने के लिए समस्त-संसार में प्रसिद्ध है। इस के संस्थापक एकस ला चेपल में एक सामान्य कर्मचारी थे। पहिले कुछ कबूतर पाल करके उन्होंने खबरें मगाना शुरू किया था। धीरे-धीरे उस काम को बढ़ा कर वर्तमान रूप दिया। अब इसके केंद्रस्थान संसार भर में स्थापित हैं, जहाँ से यह हर जगह समाचार भेजती रहती है। यह संस्था व्यापकता के बिचार से संसार की समस्त समाचार-समितियों से बड़ी है।

इसके बाद न्यूयार्क अमेरिका की एसोसियेटेड प्रेस नामक संस्था का स्थान है। कार्य-बहुलता की दृष्टि से यह संस्था भी संसार में अपना सानी नहीं रखती। इस दृष्टि से यह संसार की सबसे बड़ी संस्था मानी जाती है। इसके जन्म के संबंध में कहा जाता है कि अमेरिका के पत्र पहिले इस प्रकार की समाचार-समितियों से काम नहीं लेते थे। पत्रों के अपने अपने रिपोर्टर थे और अपना-अपना अलग-अलग काम होता था। बाहर से समाचार प्राप्त करने के लिए समाचार पत्रों के अलग अलग जहाज भी थे। किंतु इस प्रणाली से अधिक खर्च भी पड़ता था और असुविधायें भी होती थीं और इतने पर भी समाचार शीघ्रता पूर्वक न पहुंच पाते थे। इस लिए १८५० ईस्वी के बाद से इस प्रथा से काम लेना बंद होने लगा। इसके बाद वहाँ के कुछ समाचार पत्रों ने मिलकर एक सम्मिलित समाचार-समिति स्थापित की। इसी का नाम एसोसियेटेड प्रेस पड़ा। एसोसियेटेड प्रेस ने अपने मेम्बरों की संख्या निश्चित कर ली है और उससे अधिक मेम्बर उस संस्था में शामिल नहीं हो सकते। इस समिति का नियम है कि अपने मेम्बरों के अलावा अन्य किसी समाचार-पत्र को अपने समाचार नहीं भेजती। इस लिए अमेरिका के दूसरे पत्र अपनी अलग संस्थाएँ बनाने के लिए मजबूर हुए हैं। एसोसियेटेड प्रेस तीन प्रकार के काम करती है। एक तो इधर-उधर के समाचार एकत्र करती है, दूसरे उन्हें अपने मेम्बरों के पास भेजती है, और तीसरे अपने समाचार दूसरी समाचार-समितियों को दे कर बदले

में उनके समाचार लेतीहै। इस प्रकार एसोसियेटेड प्रेस-समाचार संकलन, समाचार-विक्रय और समाचार-विनिमय प्रभृति तीन काम करती है। इस कंपना को खूब लाभ रहता है। कुछ दिन हुए 'माधुरी' के एक लेख में इसके मुनाफे का व्योरा छपा था। पाठकों की जानकारी के लिए, सामयिक न होने पर भी, वह नीचे दिया जाता हैं। यह मुनाफा वह है जो समितिके हिस्सेदारों में बाँटा गया था।

१९०६....................	८ फी सैकड़ा
१९०७-१०..................	१० ,,
१९११-१३..................	१२ ,,
१९१४.....................	१७ ,,
१९१५.....................	१२ ,,
१९१६.....................	१२ ,,
१९१७.....................	१५ ,,
१९१८-२०..................	२० ,,

इस मुनाफे के अलावा सन् १९२० में ४० लाख रुपया हिस्सेदारों में बांट दिया गया था। इन अंकों से एसोसियेटेड प्रेस के मुनाफे का अंदाजा लगाया जा सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि समाचार पत्रों द्वारा स्थापित तार कम्पनी के ब्रिटिश सरकार द्वारा खरीद लिये जाने पर इङ्गलैंड के समाचार पत्रों ने अपनी समाचार-समिति स्थापित की। इस समिति की नियमित स्थापना १८६८ में हुई और इसका नाम

प्रेस एसोसियेशन डाला गया। यह समित वहां के प्रांतीय समाचार पत्रों को समाचार भेजती रहती है। किन्तु लन्दन के समाचार पत्रों को नहीं भेजती। इसका कारण यह है कि लन्दन के समाचार पत्र स्वतः ही इससे समाचार लेना नहीं चाहते। अमेरिका के एसोसियेटेड प्रेस को भांति—इसके सदस्यों की संख्या परिमित नहीं है। यह किसी भो समाचार पत्र को अपना मेम्बर बना सकती है, संख्या का कोई प्रतिबंध नहीं है, जितने पत्र चाहें इसके मेम्बर बन सकते हैं। यह संस्था इङ्गलैंड की सबसे अधिक लोक-प्रिय समाचार-समिति बन रही है।

भारतवर्ष में सब से पुरानी समाचार-समिति एसोसियेटेड प्रेस है। कहते हैं कि पहिले भारतवर्ष में समाचार संकलन के काम पर "पायनियर" ने एकाधिपत्य सा स्थापित कर लिया था। उसका वृहद् रिपोर्टर मण्डल देश के विभिन्न स्थानों में रह कर यह काम किया करता था। धीरे धीरे अन्य पत्रों ने पायनियर के साथ प्रतिस्पर्धा में सफल होने के विचार से गुट बांध कर समाचार संकलन का काम शुरू किया। यह समाचार समिति का सूत्रपात था। श्री के० सी० राय इस समिति के प्रधान कार्यकर्त्ता थे। जब यह समिति चल निकली तब, कहते हैं, कि श्री के० सी० राय महोदय ने समिति का पूर्णस्वामित्व तलब किया। अन्यान्य सदस्यों को यह स्वीकार नहीं था। इसलिए राय साहब ने अलग से एक समिति इस नयी समिति को नीचा दिखाने के विचार से स्थापित की। इस से पहिली समिति के डायरेक्टर

कुछ घबड़ाए और उन्होंने राय साहब की शर्तें मंजूर कर लीं। तब राय महोदय फिर पहिली समिति में आ गये। यही समिति एसोसियेटेड प्रेस के नाम से प्रसिद्ध हुई। एसोसियेटेड प्रेस यद्यपि अर्ध सरकारी संस्था कह कर ही प्रसिद्ध है तथापि कार्यरूप में वह बिलकुल सरकारी है। उसके द्वारा भेजे हुए समाचारों में सरकारी रंग सदा चढ़ा होता है। सार्वजनिक दृष्टि-कोण से इस कम्पनी के समाचार प्रकाशित नहीं होते, प्रत्युत वे प्रकाशित होते हैं सरकारी दृष्टिकोण से। सरकार की नीति स्वेच्छाचार पूर्ण निरंकुश शासन प्रणाली की नीति है। इसलिए इस प्रेस के कर्ताधर्तागण भी उसी नीति का समर्थन करते है। इस मामले में वे यहां तक बढ़े हुए हैं कि कभी-कभी अपने सार्व-जनिक सेवाभाव तक को तिलांजलि देकर ऐसी संस्थाओं के समाचार, जो निरंकुशता और स्वेच्छाचार का विरोध करती हैं, उन संस्थाओं द्वारा तत्स्थानीय एसोसियेटेड प्रेस प्रतिनिधि के पास भेजे जाने पर भी, स्वीकृत नहीं करते। इस प्रकार का अन्धेर खाता इस संस्था द्वारा मचाया जाता है। फिर भी समाचार पत्र ऐसी संस्थाओं की कमी होने के कारण इस से समाचार लेने के लिए मजबूर होते हैं। इसमें भी ग्राहकों की संख्या परिमित नहीं है। जो कोई इसकी फीस अदा करे वही समाचार प्राप्त कर सकता है। इस संस्था के संबंध में कहा जाता है कि कुछ दिनों से इसका प्रबंध राइटर कम्पनी के हाथों में आ गया है। और भारतवर्ष के समाचार इसी कम्पनी की मारफत

राइटर के पास पहुंचते हैं। इसका प्रधान कार्यालय शिमला में है और देश के प्रायः प्रत्येक शहर में इसके प्रतिनिधि रहते हैं जो वहां के समाचार एकत्र कर सब समाचार पत्रों को भेजते रहते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि यह संस्था नितांत सरकारी संस्था है। इसलिए खास प्रकार के समाचार यह संस्था ऐसे भ्रमात्मक या अस्पष्ट ढङ्ग से भेजती है जिससे वस्तुस्थिति का ठीक पता ही नहीं लगता। यही हाल राइटर साहब का भी है। उनके द्वारा प्राप्त विदेशो समाचारों में भी यही हाल होता है। मुश्किल से कोई समाचार साफ और सच्चा निकलेगा। अन्यथा विदेश संबंधो वास्तविक बातों को जानने के लिए हमें दूसरे साधनों पर ही अवलंबित रहना पड़ता है और उन साधनों के सुलभ न होने के कारण विदेशों संबंधी हमारा अधिकांश ज्ञान अधूरा ही रहता है। एसोसियेटेड प्रेस की कृपा से अपने देश संबंधी ज्ञान की भी यही हालत है, किन्तु देश में दूसरे साधन उतने दुर्लभ नहीं होते इसलिए यहां की वस्तुस्थिति छिपती नहीं है। फिर भो जितनी जल्दी और जितनी सुगमता से चाहिए उतनी जल्दी और उतनी सुगमता से हमें सब समाचार नहीं प्राप्त होते। बहुत से समाचार तो यह कम्पनो प्रकाशित ही नहीं करती, केवल इसलिए कि उनसे सरकारी नीति पर आक्षेप होने का डर रहता है। उदाहरण के लिए बंगाल के नज़रबन्दों की हालत, अकाली कैदियों की दशा आदि के संबंध में इस कम्पनी के फूटे मुंह से

कभी एक शब्द तक नहीं निकला।

इस प्रकार का सरकार का अंधपक्षपात सब से अधिक खटकने की बात है। देश के समुन्नत पत्रकार इस त्रुटि का निरंतर अनुभव करते हैं। वे इस प्रयत्न में भी है कि ऐसा प्रबंध किया जाय जिससे समाचार अपने असली रूप में समाचार पत्रों के पास पहुंच सकें। इसी विचार से प्रेरित होकर श्री एस० सदानंद ने कुछ सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के सहयोग से १९२५ के जनवरी मास में एक समाचार-समिति की स्थापना की। इसका नाम 'फ्री प्रेस' रखा गया। इसके पहिले कांग्रेस न्यूज सर्विस का भी प्रबन्ध किया गया था। हिंदी-सम्पादक-सम्मेलन ने भी इसी विचार से अपने उद्देश्यों में एक स्वतंत्र समाचार-समिति स्थापित करने की चर्चा की है। किंतु अभी तक अन्यत्र कोई काम निश्चित रूप से सामने नहीं आया। स्वतंत्र रूप से एक 'फ्रीप्रेस' ही सामने है। इसके मैनेजिंग एडीटर इसके और संस्थापक श्री एस्०सदानंदजी ही हैं। इस संस्था का प्रधान कार्यालय बम्बई में है। सन् १९२६ के अप्रैल महीने से यह संस्था प्राइवेट लिमिटेड लाइबिलिटी कंपनी के रूप में परिवर्तित हो गयी है। उस समय इसमें १ लाख का मूल धन लगाया गया था। अब यह धन बढ़ाकर तीन लाख कर दिया गया है। फ्रीप्रेस के प्रतिनिधि देश के समस्त नगरों में हैं और वे वहाँ के समाचार भेजा करते हैं। नीति में यह कंपनी पक्षपातहीन बनने की कोशिश करती है। सार्वजनिक महत्व के अनुसार समाचार भेजने के जिस उद्देश्य से

इसका जन्म हुआ था इसके अधिकारी उस उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर सच्चे और निष्पक्ष समाचार भेजने का उद्योग करते है। इसके प्रतिनिधियों में बड़े-बड़े महानुभाव शामिल हैं। इसके बोर्ड आफ डाइरेक्टर में अध्यक्ष सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, सर फिरोज सेठना, श्री जयकर, श्री घनश्यामदास बिडला, श्रीबालचंद हीराचंद आदि बड़े-बड़े आदमी सम्मिलित हैं। थोड़े दिनों की सेवा से ही इस कंपनीने अपनी योग्यता और स्वतंत्र भावनाके लिए ख्याति प्राप्त कर ली है। इस समय लोक प्रियता में यह एसोसिएटेड प्रेस से बढ़ रही है। किंतु फिर भी कहते हैं कि इसको घाटे में ही काम करना पड़ता है। इतने बड़े देश में सच्चे और निष्पक्ष समाचार भेजने वाली एक ही संस्था होने पर भी उसे पर्याप्त सहायता न मिलना वास्तव में परिताप की बात है। स्वतंत्रता-आंदोलन के इस जमाने में ऐसी संस्थाओं का होना कितना आवश्यक है, यह बतलाने की जरूरत नहीं है। और जब इसकी आवश्यकता निश्चय है तब इस संस्था को सहायता न देना अपने हित को अपने हाथों ही हानि पहुंचाना हैं। कितने दुःख की बात है कि जो कंपनियाँ उलटे-सीधे झूठे-सच्चे, और भ्रमोत्पादक समाचार दें, वे तो मजे में चलती रहें और जो सच्ची और निष्पक्ष बातें प्रकाशित करें वे घाटा उठावें। देश के समाचारपत्रों और सार्वजनिक कार्य-कर्ताओं को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

किन्तु इतना करके ही हमें शांत न हो जाना चाहिए। समाचारपत्र संचालकों को संगठित होकर भारतवर्ष में तो अपनी एक

स्वतंत्र समाचार-समिति स्थापित ही कर लेनी चाहिए। इसके अलावा बिदेशों में भी एक ऐसी संस्था स्थापित करनी चाहिए जो वहां के ठीक-ठीक समाचार दिया करे। इसमें निःसन्देह बहुत बाधाएँ हैं और यह काम भी अत्यंत दुःसाध्य है। किंतु इसकी आवश्यकता है, यह निश्चय है और इसलिए इसकी पूर्ति का ध्यान रखना भी आवश्यक ही है।

———

भेंट और बातचीत

——:※:——

इन्टरव्यू, जिसे मैं भेंट और बातचीत के नाम से पुकारना चाहता हूं, पत्रकारकला-सम्बन्धी कामों में अपना एक खास स्थान रखती है। इस समय भेंट और बातचीत केवल किसी विशेष विषय पर विचार जानने के लिए ही की जाती है, किन्तु पहले यह बात नहीं थी। रिपोर्टर और संवाददातागण समाचार जानने के लिए लोगों से भेंट और बातचीत किया करते थे। धीरे-धीरे जब पत्रकारों के कार्यों का सम्यक् विभाजन हो गया और एक-एक कार्य के लिए अलग-अलग कर्मचारी नियुक्त होने लगे, तब इस काम को रिपोर्टरों से अलग करके भेंट और बातचीत करने-वाले एक भिन्न कर्मचारी के सुपुर्द कर दिया गया। इस कार्य-विभाजन के साथ साथ उसमें थोड़ासा अन्तर यह भी कर दिया गया, या आ गया, कि जहां पहले लोगों से समाचार जानने के लिए बातचीत की जाती थी, वहां अब किसी विशेष विषयपर उनके विचार जानने के लिए बातचीत और भेंट की जाती है। इस परिबर्तित और संशोधित परिपाटी का जन्म देने का श्रेय अधिकांश में अमेरिका के 'न्यूयार्क हेरल्ड' पत्र के संचालकों को प्राप्त है। इन्होंने सन् १८५६ में पहले पहल इस प्रथा को जन्म दिया, और इसके अनुसार काम करना शुरू किया था। इसके बाद लन्दन के 'रिव्यू-आफ-रिव्यूज' नामक पत्र के जन्मदाता स्वर्गीय

मिस्टर डब्ल्यू टी० स्टेड ने इस प्रणाली की विशेष उन्नति की। कोई बड़ा आदमी विदेश से पहुंचता, तो वे चट उससे मिलते और बातचीत कर बड़े मनोरंजक ढंग से उसे प्रकाशित करते। इन कार्यों से इस प्रणाली को और भी प्रसिद्धि मिली।

भेंट ऐसे व्यक्तियों से की जाती है, जो किसी बात के लिए या तो मशहूर होते हैं, या बदनाम होते हैं। विदेशों में इस प्रथा का बहुत चलन है। ज्यों ही कोई मनुष्य पहुंचा, समाचारपत्रों और समाचार-प्रेषक संस्थाओं के कर्मचारीगण उससे बातचीत करने और जिस विषय में उसकी शोहरत हुई, उस विषय में उसके विचार जानने के लिए दौड़ पड़े। भारतवर्ष में भी इस प्रथा का प्रचार है, किन्तु यहां पर अधिकांश में समाचार-समितियां ही अपने भेंट करनेवालों को भेजती हैं, समाचारपत्र बहुत कम भेजते हैं, और जो भेजते भी है, वे अंग्रेजी के समाचारपत्र होते हैं। हिन्दी के समाचारपत्र तो इस सम्बन्ध में विलकुल उदासीन रहते हैं। इसका कारण वही है, जो अन्य बातों में हिंदी-पत्रकार-कला को पीछे ढकेले रहता है, अर्थात हिंदी-भाषी जनता का समाचारपत्रों के प्रति उपेक्षाभाव।

रिपोर्टर, संवाददाता और भेंट करने वाले-तीनों का कम-से कम इस बात में साम्य होता है कि सब समाचार पत्र के लिए विशेष समाचार प्राप्त करते हैं। फिर भी इन तीनों में अन्तर होता है। भेंट करने वाला समाचार विशेष के सम्बन्ध में नेताओं और खास-खास आदमियों के विचार जानने की कोशिश करता है,

घटनाचक्र की वर्णनात्मक बातों को जानने की कोशिश नहीं। रिपोटर और संवाददाता प्रायः ऐसी बातों का पता लगाते हैं, जो सर्वसाधारण के लिए प्रत्यक्ष सी होती हैं किन्तु भेंट करने वाला उन सब बातों का पता लगाता है जो प्रत्यक्ष नहीं होती। कोई विशेष घटना किस प्रकार घटी, क्या कारण था, क्या परिणाम हुआ, आदि बातें ऐसी हैं, जो सर्वसाधारण के सामने आ ही जाती हैं, और यही बातें संवाददाता और रिपोर्टर प्रायः एकत्र किया करते हैं किन्तु अमुक व्यक्ति या अमुक नेता उस घटित घटना के सम्बन्ध में क्या विचार रखता है यह सर्वसाधारण के सामने अपने आप नहीं आ जाता; क्यों कि यह कोई बाहय घटना नहीं है यह तो भीतर की बात है इसे भेंट करने वाले प्रयत्न करके जनता के सामने लाते हैं। सारांश इसका यह कि जहां रिपोर्टरों और संवाददाताओं का काम यह होता हैं कि वे बाहर घटी हुई बातों को खोज करें, वहां भेंट करने वालों का काम अभ्यन्तर की बातें खोज निकालने का होता है।

किसी के दिल की बात खोज निकालना कोई आसान काम नहीं होता। भेंट करने वालों का काम भी सरल नहीं हैं, क्यों कि उन्हें भी तो किसी न किसी रूप में व्यक्ति विशेष के दिल की बात ही खोज निकालनी होती है। स्वर्गीय पं० नन्दकुमार देव शर्मा ने अपनी 'पत्र सम्पादन-कला' नामक पुस्तक में बहुत ठीक कहा है कि - 'इन्टरव्यू के काम में वही मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकता है, जो बात चीत में दूसरे मनुष्य के हृदय की थाह लगाने में

समर्थ हो। ये गुण अभ्यासज नहीं जन्मज होते हैं, इसी लिए मि० लोवारे ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'जर्नलिज्म' में कहा है—"Inter-viewers arn bore, not made." (भेंट करने वाले पैदा होते हैं बनाये नहीं जाते)किन्तु इसका अर्थ यह न समझ लेना चाहिए कि प्रयत्न करनेपर भी कोई व्यक्ति इस काममें सफल हो ही नहीं सकता। सतत अध्यवसाय से वे गुण पैदा किये जा सकते है। और मनुष्य उन गुणों को प्राप्त करनेके बाद इस काममें पूर्ण सफलता प्राप्तकर सकता है। जैसे कविता के सम्बन्ध में, जिस के लिए भी ऐसी ही बात कही जाती है प्रतिभा, शक्ति और अभ्यास तीनों बातें मिलकर काम करती हैं और न्यूनाधिक रूप में अलग होने पर भी अपना-अपना फल दिखाती ही हैं उसी प्रकार इस काम में भी इन तीनों बातों का एकत्र संग्रह तो सर्वोत्तम होता है किंतु यदि ये बातें अलग अलग भी हों, तो भी अपना फल किसी न किसी अंश में दिखाती ही हैं। प्रतिभा स्वभावज या जन्मज है, शक्ति और अभ्यास अपने अध्यवसाय से बढ़ाये जा सकते है, और इन दोनों क योग से प्रतिभा भी कुछ न कुछ मँज ही जाती है। इस प्रकार यदि मनुष्य सतत परिश्रम करे तो भेंट करने के काम में उसे सफलता न मिले यह असम्भव है। मेरी तो दृढ़ धारणा है कि यदि उसमें लगन हो, दृढ़ संकल्प हो, परिश्रम शीलता और अध्यवसाय की भावना हो तो उसे निश्चय पूर्वक सफलता मिल सकती है।

ंसार में अनेक प्रकार के मनुष्य होते हैं। नेताओं के स्वभाव

भी मानव प्राकृतिक से बाहर नहीं होते। उनमें भी विभिन्नता रहती है। भेंट करने वालों को इन विभिन्न प्रकृति वाले मनुष्यों से मिलने और बात चीत करने की जरूरत पड़ती हैं। इस लिए उनमें विभिन्न स्वभाव के मनुष्यों से बात चीत करने की क्षमता सब को राज़ी रखने की चतुरता वाक्-पटुता, व्यवहार-कुशलता आदि गुणों का होना आवश्यक होता है। उनमें यह गुण भी होना चाहिए कि समय पड़ने पर मनोगत भावों को बदल कर दूसरे रूप में प्रदर्शित करने में समर्थ हों। इन गुणों से वे बात चीत करने में काफी सफलता प्राप्त कर सकेंगे। इन बातों के अलावा उनमें साहित्यिक ज्ञान की भी आवश्यकता है, क्यों कि प्रत्येक पत्रकार के लिए उसका होना आवश्यक है। अपने इस ज्ञान के सहारे वे अपनी बात चीत का विवरण अपेक्षित ढंग से समाचार पत्रों को दे सकेंगे और नाम कमा सकेंगे। तमाम गुणों में मनोविज्ञान की जानकारी और वाक्पटुता प्रधान गुण हैं, जो भेंट करने वाले कर्मचारियों में अवश्य होने चाहिए। मनोविज्ञान के सहारे वे मनुष्य के स्वभाव को ताड़कर वाक्-पटुता द्वारा उसके साथ ऐसी बात चीत करने में समर्थ हो सकेंगे जिससे उनके हृदय का सारा भेद खुल जाय।

भेंट करने वालों में जब ऐसे व्यक्ति मिलते हैं, जिनसे जितना पूछो उतना ठीक-ठीक स्पष्टरूप से कह देते हैं,तब भेंट करने वाले कर्मचारी को कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। दो-चार सवाल पूछे और काम खतम। किन्तु ऐसे व्यक्ति मिलते बहुत कम हैं।

अधिकांश में ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जिनमें से कोई तो ऐसे होते हैं जो बहुत अधिक बोलते हैं, और कोई ऐसे होते हैं जो बहुत ही कम बोलते हैं। इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों के साथ भेंट करना टेढ़ी खीर होती है। ऐसी दशा में भेंट करने वाले को विशेष योग्यता और सावधानी से काम लेना चाहिए। बातों से ऊब जाना पूरा जवाब न पाने से चिड़-चिड़ाना धैर्य, खो देना आदि भेंट करने वाले के दुर्गुण हैं। उन्हे उसे पास न फटकने देना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों के साथ बात चीत करते समय उन्हें बहुत ध्यान पूर्वक बातें सुननी चाहिए और उनकी एक-एक बात हृदयंगम करके अपने प्रश्न से सोधा सम्बन्ध रखने वाली बात टीप लेनी चाहिए, और उन्हीं के आधार पर मिलने वाले के बिचारों का प्रदर्शन करना चाहिए। कम बोलने वाले से अपना प्रश्न कर के जितना जवाब मिले, उतना ध्यान में रख कर जितने के सम्बन्ध में स्पष्ट उत्तर न मिला हो, उतना सवाल फिर करना चाहिए। इस प्रकार जब तक थोड़ा-थोड़ा कर के प्रश्न का पूरा उत्तर न मिल जाय तब तक बराबर प्रश्न करते रहना चाहिए, किन्तु हर हालत में ध्यान रखना चाहिए कि जिस से बातचीत को जाय,वह ऊबने न पावे।

भेंट और बातचीत करने वालों के लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि जिस विषय में वे बातचीत करने जा रहे हों; उस विषय की बहुत-कुछ जानकारी पहिले ही से प्राप्त कर लें। किताबों से, समाचार पत्रों से, मिलने वालों से, किसी-न-किसी तरह से उस सम्बन्ध की बातें जान कर और तत्सम्बन्धी एक

प्रश्नावली तैयार करने के बाद भेंट करने के लिए आगे क़दम बढ़ाना चाहिए, अन्यथा पहले से तैयार न होने पर वहां जाकर कोई श्रृंखलाबद्ध प्रश्नोत्तर न हो सकेंगे, और व्यर्थ में बहुत-सा समय नष्ट होगा। साथ ही भेंट करने वालों में अप्रसन्नता और चिड़चिड़ाहट पैदा होने की भी आशंका होगी। प्रश्नावली भी ऐसी जँची हुई बनानी चाहिए जिस में कम-से-कम प्रश्न करने पर और थोड़े से थोड़ा समय लेने से पूरा काम निकल जाय। भेंट करने के लिए जाते समय यदि एक केमरा भी साथ हो, जिस से व्यक्ति-विशेषका, जिससे भेंट करने के लिए कर्मचारी जा रहा है, चित्र भी लिया जा सके, तो बहुत अच्छा। विवरणके साथ चित्रका निकालना सोने में सुगंध होगा। अमेरिका आदि देशों में इस काम के लिए ऐसे-ऐसे केमरा ईजाद किये गये हैं कि जो बाहर से बिलकुल घड़ी की शकल के होते हैं और घड़ी की कूक की भांति चाबी देते ही चित्र खिंच आता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि पहले से अच्छी तरह तैयारी करके जाना चाहिए, और बातचीत करते समय सामने वाला मनुष्य जो कुछ कहे; उसको गौर से देखना-सुनना चाहिए। उसकी एक-एक बात को ध्यान में रखना चाहिए, और एक-एक दलील को समझना चाहिए, तथा उन में जो आवश्यक हों उन्हें टीपते भी जाना चाहिए। किन्तु टीपने की बात इतनी अधिक नहीं होनी चाहिये जिस से बातचीत करने में बराबर बाधा पड़े। बहुत थोड़ी केवल अत्यन्त आवश्यक बातें ही टीपना चाहिए। यदि उत्तर देने वाला

किसी सम्बन्ध के कोई आंकड़े दे या कोई ख़ास महत्व पूर्ण वाक्य कहे, तो उन्हें अवश्य टीप लेना चाहिए। भेंट करने वाले को अपना लक्ष्य सदा सामने रखना चाहिए। किस विषय पर बातचीत कर रहा है, किस बात को खोज निकालने के लिए बातचीत कर रहा है आदि बातें सदैव ध्यान में रखनी चाहिए। बातचीत करते-करते यह भूल न जाना चाहिए कि अभी कितने सवाल करने हैं। एक बात का उसे और भी ध्यान रखना चाहिए, वह यह कि वक्ता किस बात को बार-बार दोहराता है। अनेक मनुष्यों को कुछ ख़ास-ख़ास वाक्यों से अधिक प्रेम होता है। वे बार-बार उसका प्रयोग करते हैं। ऐसे वक्यों पर :अवश्य ध्यान रखना चाहिए और टीप लेना चाहिए तथा वर्णन लिखते समय उस का प्रयोग करना चाहिए। इस से वर्णन अधिक रोचक और आकर्षक बन जायगा, भेंट और बातचीत करने वाले को इस बात का बहुत अधिक ध्यान रखना चाहिए कि जिस समय पर किसी व्यक्ति विशेष से मिल कर बातचीत करना हो, ठीक उसी समय वहां पहुंचे। समय की पाबन्दी न रखना एक बहुत बड़ा दोष है। यह दोष भेंट और बातचीत करने वालों में कदापि न होना चाहिए। उस के लिए वक्त की पाबन्दी अनिवार्यतः आवश्यक होती है। यह पाबन्दी न निभाने से अनेक कठिनाइयां आ सकती हैं। जिस व्यक्ति से मिलना निश्चित होता है, वह बेचारा निश्चित समय पर बाट जोहता है। यदि उस समय भेंट न की गई, तो इन्तजारी में उसे व्यर्थ का कष्ट उठाना पड़ता है। कभी-कभी तो

कार्याधिक्य के कारण वह व्यक्ति अधिक देर तक प्रतीक्षा न करके दूसरे काम के लिए चला जाता है, और उस दशा में भेंट भी नहीं हो सकती, या यदि भेंट होती है, तो कोई दूसरा समय निश्चित करना पड़ता है, और भेंट करने वाले को भी दुबारा जाने का व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ता है। इस प्रकार एक समय की पाबन्दी न रखने के कारण भेंट करने वाले को और जिससे भेंट की जाने को है, उसको—दोनों को व्यर्थ का कष्ट उठाना पड़ता है, और कभी-कभी तो भेंट हो सकना तक असम्भव हो जाता है।

भेंट और बात चीतका वर्णन समाचार पत्रों में दो प्रकार से भेजा जा सकता है। एक तो प्रश्नोत्तर के रूप में और दूसरे निबन्ध के रूप में। दोनों ही ढंग अच्छे हैं। तथापि प्रश्नोत्तर के रूप की अपेक्षा निबन्ध के रूप में फ़जना अधिक अच्छा और उपयोगी होता है, क्यों कि प्रश्नोत्तर के ठीक-ठीक शब्द याद हुए बिना उसका मजा नहीं आता और ठीक-ठीक शब्द याद रहना बड़ा कठिन है। निबन्ध में :अपने शब्दों में वक्ता के विचार सरल और सुबोध भाषा में प्रकट किये जा सकते हैं। फिर भी निबन्ध के रूप में बात-चीत का वर्णन देते हुए भी जो खास मार्के की बात हो, उसके सवाल-जवाब ज्यों के त्यों देना ही आवश्यक होता है। इससे उस बात का महत्व प्रकट होगा, और ऐसा न करने से वह बात अन्य मामुली बातों के बीच में मिल जायगी तथा विशेष रूप से ध्यान आकर्षित न कर सकेगी। विवरण भेजते

समय भी बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। एक-एक शब्द खूब समझ बूझ कर तौल तौल कर लिखना चाहिए। जिससे वास्तविक बात-चीत और वर्णन में किसी प्रकार का अन्तर न आ सके। सावधानी की इस लिए जरूरत है कि उस विषय का वर्णन भेंट करने वाले के लिखने के अलावा अन्यत्र कहीं नहीं होता। रिपोर्टरों आदि के वर्णनों तो ऐसे होते है जो अन्य स्थानों में भी प्रकाशित होते हैं, इस लिए उन के मिलाने का मौका रहता है और यदि मिलाने से दोनों वर्णनों में कुछ भेद पाया गया तो सुधारने का अवकास भी रहता हैं; किंतु भेंट करने वाले का वर्णन अन्यत्र नहीं छपता, इस लिए उसे मिलाने का या सुधारने का कोई अवसर नहीं होता। अतः भेंट करने वाले का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह जो कुछ लिखे खूब सोच समझ कर लिखे, और पत्र में प्रकाशित करने के लिए भेजने के पहले दो वार दुहरा जाय ताकि फिर गलती रहने का अन्देशा न हो। यदि यह नियम बना दिया जाय कि भेंट करने वाला वर्णन भेजते समय वर्णन की 'कापी' में स्पष्टरूप से अपने हस्ताक्षरों के सहित यह लिख दिया करे कि 'पत्र में प्रकाशनार्थ' तो अधिक अच्छा हो। यह हस्ताक्षर यह सूचित करने के लिए होने चाहिए कि भेजा हुआ मैटर-कर्मचारी ने अच्छी तरह जाँच-पड़ताल लिया हैं। पाश्चात्य देशों में यह प्रथा प्रचलित भी है। यह उपयोगी प्रथा हमारे यहां भी काम में लायी जानी चाहिए।

——:०:——

लेख और लेखक



लेख और लेखक शीर्षक किंचित् व्यापक है। इससे पुस्तकों में लिखे जाने वाले, नोटिस आदि में लिखे जाने वाले, समाचारपत्रों में लिखे जाने वाले आदि अनेक प्रकार के लेखों और उनके लेखकों का बोध हो सकता है। इसलिए यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यहां पर लेख और लेखक शीर्षक केवल समाचार पत्रों में लिखे जाने वाले लेख और उनके लेखकों को लक्ष्य करके लिखा गया है। समाचार पत्रों में, विषय-भेद के अतिरिक्त, लेख दो प्रकार के होते हैं। एक अग्रलेख अथवा सम्पादकीय लेख और दूसरे विशेष लेख। दोनों प्रकार के लेख सम्पादक द्वारा भी लिखे जा सकते हैं, और सम्पादक के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति द्वारा भी। हिन्दी समाचार-पत्रों में अधिकांश में—प्रायः सदैव--अग्रलेख सम्पादक द्वारा ही लिखे जाते हैं। किन्तु विदेशों में, जहां पत्रकार-कला की काफी उन्नति हो चुकी है, विशेष व्यक्तियों द्वारा भी अग्रलेख लिखाये जाते हैं। वहां के दैनिक पत्रों में तो दूसरे व्यक्ति अग्रलेख लिखते ही हैं; क्योंकि दैनिकपत्रों में सम्पादक को दूसरे-दूसरे काम इतने अधिक होते हैं कि उन्हें लेख आदि लिखने की फुरसत ही नहीं मिलती। यही हाल विशेष लेखों का भी है। वे भी सम्पादकीय या गैर सम्पादकीय, दोनों

प्रकार के हो सकते हैं। अग्रलेख सम्पादकीय स्तम्भों में अर्थात् समाचारपत्र के उस स्थान पर दिया जाता है, जहां सम्पादक अपने विचार प्रकट करता है। यह समाचार-पत्रों का प्रमुख स्थान होता है। इस लिए इस स्थान पर प्रकाशित लेख मुख्य लेख भी कहलाता है। अग्रलेख और मुख्य लेख, दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। विशेष लेख प्रमुख स्थान के अतिरिक्त समाचार पत्र के अन्य स्थान में प्रकाशित किया जाता है। इन लेखों में एक अंतर और भी होता है। वह यह कि अग्रलेख का विषय विशेष लेख की अपेक्षा तात्कालिक राजनीति से अधिक सम्बन्धित होता है। विशेष लेख में हम यह आशा करते हैं कि उससे हमें तद्विषयक अधिक-से अधिक बातें जानने को मिलेंगी। विशेष लेख के लेखक को इस बात की ओर ध्यान भी देना चाहिए। किन्तु मुख्य लेख के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। उसमें तो, पत्र के डेढ़ दो कालमों में, विषय की ख़ास-ख़ास बातें आवश्यक जोरदार और सब के समझने योग्य भाषा में लिख देना ही पर्याप्त होता है। किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं कि अग्रलेख में किसी विषय की गूढ़ मीमांसा हो ही नहीं सकती। उनमें भी विषयों का सविस्तार वर्णन प्रकाशित किया जा सकता है। उक्त कथन का तात्पर्य केवल यह है कि यदि ऐसा न भी हो, तो भी अग्रलेख का काम चल सकता है।

उपर्युक्त बातों के होते हुए भी लेख आखिरकार लेख ही है। उनमें इस प्रकार का भेद कैसे पैदा हो गया ? यदि किसी भेद की

आवश्यकता थी ही, तो विषय-भेद काफ़ी था, यह स्थान-भेद क्यों पैदा हो गया ? इसका इतिहास बड़ा मनोरञ्जक है। हमारी समाचार-पत्र-सम्बन्धी कला विदेशों की सम्पत्ति है। वहीं से हमने उसे लिया है। इसलिए प्रत्येक बात के निर्णय और अनु-सन्धान के लिए हमें पाश्चात्य देशों की ओर देखना पड़ता है। अग्रलेख शब्द अँग्रेज़ी 'लीडर' शब्द से लिया गया है। 'लीडर' का अर्थ है वह, जो आगे हो। इसी लिए हमने अग्रलेख कहना शुरू किया। हिन्दी में तो अग्रलेख शब्द का इतनाही इतिहास है। किंतु अँग्रेज़ी 'लीडर' के साथ काफ़ी दिलचस्प इतिहास जुड़ा हुआ है। यह जान लेना आवश्यक है कि 'लीडर' का उच्चारण 'लेडर' भी किया जा सकता है, और उस अवस्था में उसका एक अर्थ 'लेडों वाला' भी किया जा सकता है। पहले-पहल समाचार पत्रों में अग्रलेख नहीं हुआ करते थे। पत्र आदि से अंत तक समाचारों से ही भरे रहते थे। धीरे-धीरे ख़ास-ख़ास समा-चार पहले और दूसरे समाचार बाद में दिए जाने लगे। फिर इन ख़ास समाचारों के सम्बन्ध में विचार भी उन्हीं के साथ ही प्रकट किये जाने लगे, वे सटिप्पण प्रकाशित होने लगे। इस प्रकार विचार प्रकट किये गये समाचारों को अधिक स्पष्ट और अधिक आकर्षक बनाने के विचार से इनके बीच में एक के स्थान पर दो-दो लेडों का डाला जाना शुरू हुआ। इससे ये समाचार लेडर कहे जाने के पात्र हुए। फिर ये लीडर कैसे कहाने लगे, इस सम्बन्ध में मालूम यह होता है कि पहले ये लेडर ही कहाते थे।

किन्तु बाद में अग्रता चरितार्थ करने के विचार से ये लीडर कहे जाने लगे। विशेष लेखों के सम्बन्ध में ऐसा कोई इतिहास नहीं है। वे किसी विषय को अधिक स्पष्ट करने या किसी आंदोलन का प्रचार आदि करने के लिए यों ही प्रकाशित किये जाते हैं।

दोनों प्रकार के लेखों के—अग्रलेख और विशेष लेख के—दो भेद और भी होते हैं। कुछ लेख विचारात्मक होते हैं, और कुछ वर्णनात्मक। विचारात्मक, लेखों में स्पष्ट भाषा में किसी विशेष विषय पर लेखक के विचार प्रकट किये जाते हैं, और वर्णनात्मक लेखों में किसी स्थान, उत्सव, यात्रा, आदि विषयों का वर्णन होता है। विचारात्मक लेखों की अपेक्षा वर्णनात्मक लेख प्रायः अधिक रोचक होते हैं। जनता उन्हें बड़े चाव से पढ़ती है। यदि वर्णनात्मकता के साथ-साथ लेखों में भाषा-सौन्दर्य और मनो-रंजक शब्द-योजना की पुट भी हुई, तो ये लेख जनता द्वारा बहुत ही अधिक पसन्द किए जाते हैं।। विचारात्मक लेखों की अपेक्षा वर्णनात्मक लेखों में खुल खेलने का मौका भी अधिक रहता है। भाषा-सम्बन्धी ज्ञान, शब्द-योजना-चातुर्य, उपमाओं और उत्प्रे-क्षाओं के प्रयोग, कल्पना की उड़ान आदि के प्रदर्शन का जितना मौका वर्णनात्मक लेख में मिलता है, उतना विचारात्मक लेख मे नहीं। इसी लिए उनमें स्वभावतः अधिक सौन्दर्य आ जाता है, और जनता उन्हें अधिक पसंद करती है।

इन के अलावा दो प्रकार के लेख और भी होते हैं, एक नामां-

कित लेख और दूसरे गुमनाम या गुप्तनाम लेख। नामांकित लेखों में लेखक का स्पष्ट नाम रहता है, और गुमनाम या गुप्त-नाम लेखों में या तो नाम रहता ही नहीं, या कोई कृत्रिम नाम रख दिया जाता है। समाचार-पत्रों में, विशेष कर विदेशी समाचार पत्रों में, इन लेखों के प्रकाशित करने का नियम यह है कि जो ख्यात नामा लेखक हैं, उनके लेख तो नाम के साथ छापे जाते हैं, किंतु जो ऐसे नहीं हैं, उनके लेख गुप्त नाम करके ही छापे जाते हैं। कभी-कभी लेखक स्वयं अपना नाम प्रकाशित नहीं करना चाहता, और उस दशा में प्रसिद्ध-से-प्रसिद्ध लेखक के लेख भी गुप्तनाम ही से छपते हैं। इस लिए गुप्तनाम वाले लेख प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध, दोनों प्रकार के लेखकों के हो सकते है। यह दुबिधा होने के कारण गुप्तनाम लेखों के संबंध में जनता में भ्रम और उत्सुकता रहती है, और वह लेख को उसकी वास्तविकता जानने के लिए पढ़ती है। किंतु यदि लेख नामांकित हुआ, तो—यदि वह प्रसिद्ध लेखक का हुआ, तब तो पढ़ा ही जायगा, किंतु यदि ख्याति-हीन लेखक के नाम से वह प्रकाशित हुआ, तो—जनता में स्वभावतः उसके प्रति उपेक्षा-भाव-सा पैदा हो जाता है, और वह लेख के गुणा व गुण विचारे बिना ही, उसे पढ़ने से छोड़ देती है। इस लिए नए लेखकों के लेखों का गुप्त-नाम या गुमनाम कर के प्रकाशित करना ही समाचार-पत्रों के लिए श्रेयस्कर होता है। ऐसा न करने से पत्र को हानि की आशंका रहती है। जनता में एक ऐसी धारणा रहती है कि नए

या प्रतिष्ठा-हीन लेखकों के लेखों में कुछ होता ही नहीं, और यदि किसी पत्र में लगातार नए लेखकों या अप्रतिष्ठित लेखकों के ही लेख प्रकाशित होते रहे, तो इस बात की आशंका रहती है कि जनता उस पत्र के संबंध में यह धारणा बना ले कि उसमें अच्छे लेख ही नहीं होते—चाहे वे नए लेख पुराने लेखकों के लेखों से भी अच्छे क्यों न हों। जनता की इन धारणाओं का पत्र की ग्राहक-संख्या और प्रतिष्ठा पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। इस लिए पत्रों को इस सम्बन्ध में उक्त नीति का ही अवलम्बन करना चाहिए। इससे लेखकों का कोई हर्ज नहीं, उलटे उन्हें भी लाभ ही है। नाम देने पर तो यह आशंका रहेगी कि नए लेखक या अप्रतिष्ठित लेखक समझ कर जनता उनके लेखों को पढ़ने की उपेक्षा कर जाय। इस से उन्हें अपनी योग्यता और गुणों का प्रदर्शन करने का मौक़ा ही न मिलेगा, जो प्रतिष्ठा-प्राप्ति के खास साधन है। इसके विपरीत यदि नए लेखक निश्चित गुप्त-नाम द्वारा अपने लेख प्रकाशित करवाते जायँगे, और वे प्रकाशित होकर ख्याति पाते जायँगे, तो थोड़े दिनों बाद वह लेखक स्वयं भी ख्यात नामा हो जायगा। हमारे सामने इस प्रकार के उदा-हरण भी हैं। श्री प्रेमचन्द, श्री सनेहीजी, आदि इसी प्रकार प्रख्यात हुए हैं। मेरी धारणा है कि यह प्रथा लेखकों और सम्पादकों, दोनों के लिए हितकर है।

अग्रलेख या मुख्य लेख लिखना समाचार पत्र का ख़ास काम होता है। किसी विशेष महत्व-पूर्ण विषय पर समाचार

पत्र के विचार प्रकट करते हुए लिखे गए साप्ताहिक पत्रों में दो-ढाई कालम और दैनिक पत्रों में डेढ़-दो कालम के मज़मून को अग्रलेख या मुख्य लेख कहते हैं। ये लेख सम्पादकीय विचार प्रकट करनेवाली अन्य टिप्पणियों से प्रायः लम्बे होते है। किंतु यह कोई नियम नहीं। वे छोटे भी हो सकते है। इस प्रकार के लेख, प्रारम्भ में तो, किसी पत्र के एक अंक में एक से अधिक नहीं होते थे; किंतु अब यह बात नहीं रही, और पत्र के एकही अंक में एक से अधिक मुख्य लेख भी प्रकाशित होने लगे हैं। हिंदी पत्रों में तो अभी इस नवीन प्रथा को उतना नहीं अपनाया गया, किन्तु अँग्रेज़ी पत्रों में यह आम तौर से रायज हो गयी है। अग्रलेख सम्पादक स्वयं लिखता है या किसी से लिखाता है। विदेशों में तो अब यह प्रथा-सी चल पड़ी है कि अग्रलेख प्रायः दूसरे व्यक्तियों से, जो उस विषय के, जिस पर लेख लिखना होता है, विशेषज्ञ होते है, लिखाए जाते है; क्योंकि इससे सम्पादकों को तद्विषयक बहुत परिपक्व विचार प्राप्त हो हैं। किन्तु लेख जैसा लिखकर आता है, वैसा ही छाप नहीं दिया जाता। सम्पादक अपनी नीति और अपने मत के अनुसार उसमें काफी संशोधन, परिवर्तन करता है। इस संशोधन परिवर्तन के कारण कभी-कभी तो नौबत यहां तक आती है कि तमाम लेख का ढांचा इस प्रकार बदल दिया जाता है कि जब प्रकाशित होकर वह सामने आता है, तब लेखक पहचान तक नहीं पाता कि वह लेख उसी का लिखा हुआ है या किसी और का? इस प्रकार देखने से

यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि दूसरों से लिखाने पर भी मुख्य लेख में सम्पादक का बहुत अधिक हाथ रहता है।

मुख्य लेख और विशेष लेख के लेखकों में भी काफी अन्तर होता है। मुख्य लेख के लेखक का उत्तरदायित्व बहुत अधिक होता है। मुख्य लेख की बात पत्र की अपनी बात मानी जाती है, जब कि विशेष लेख की बातें केवल उसके लेखक की ही बातें होती हैं। पत्र की बात का महत्व किसी व्यक्ति की बात के महत्व से अधिक होता है, और इसी महत्वाधिक के कारण उसका उत्तरदायित्व भी अधिक होता है। विशेष लेख का लेखक जिस बात को जिस रूप में समझता है, उसको उसी रूप में लिख सकता है। किंतु अग्रलेख का लेखक ऐसा नहीं कर सकता। उसे अपने समाचार पत्र के विचार और उसकी निर्धारित नीति के अनुरूप ही लेख लिखना पड़ता है। इसके लिए उसे अपने विरोधी भाव ताक पर रख देने पडते हैं। उस सम्बंध में मुख्य लेख के लेखक का काम उस वकील का-सा होता है, तो मुकदमे को झुठाई जानते हुए भी अदालत में उसे सच्चा साबित करने की कोशिश करता है। पत्र के भाव और उसकी नीति-सम्बंधी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए मुख्य लेख के लेखक को यह ज़रूरत होती है कि वह सम्बिन्धित पत्र के नियमित रूप से पढ़ता रहे। विशेष लेख के लेखक के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। उसके लिए भी इतनी ज़रूरत तो होती ही है कि जिस पत्र में वह अपना लेख भेजना चाहता हो, उस पत्र को—इस लिए कि यह निर्णय

किया जा सके कि पत्र किस प्रकार के लेख प्रकाशित करता है, और अपना लिखा हुआ लेख उस श्रेणी का है या नहीं, जिस श्रेणी के लेख उसमें प्रकाशित होते हैं—अच्छी तरह पढ़ ले। बस, इससे अधिक जानने की ज़रूरत विशेष लेख के लेखक को नहीं होती; मुख्य लेख के लेखक की भांति प्रत्येक विषय पर विशेष लेख के लेखक को उस पत्र की नीति जानने की कोशिश नहीं करनी पड़ती। इस के अतिरिक्त एक छोटा-सा अन्तर और होना चाहिए, जो प्रचलित परिपाटी के अनुसार नहीं होता। वह है 'हम' और'मैं'शब्दों के प्रयोग का। प्रायः लेखकगण अपने लेखों में, चाहे वे मुख्य लेख के लिए लिखे गये हों और चाहे वैसे ही, एक वचनात्मक 'मैं' शब्द का प्रयोग न करके बहुवचनात्मक 'हम' का प्रयोग करते हैं। सम्भव है, यह प्रयोग लेखक की गुरुता प्रकट करने के लिए किया जाता हो; किंतु मुझे इसकी उपयोगिता सर्वत्र उचित नहीं मालूम होती। सम्पादकीय लेख-अग्रलेख–के लिए मैं उसकी उपयोगिता स्वीकार कर सकता हूं; क्योंकि उसके विचार पत्र के विचार होते हैं, इस लिए एक वचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु विशेष लेख के सम्बन्ध में यह प्रयोग खटकता है। अपने आपको 'हम' से इंगित करना अहम्मन्यता और गर्व का भाव प्रकट करता है। इसके अतिरिक्त उसकी और कोई उपयोगिता नहीं। इसके स्थान पर 'मैं' शब्द का प्रयोग करने से लेखक का कोई भाव विकृत नहीं हो जाता। फिर सामणा विनीत 'मैं' न

लिखकर अभिमानी 'हम' क्यों लिखा जाय ? रही गुरुता प्रदर्शित करने की बात। सो वह इस प्रकार के शब्द प्रयोग से प्रकट नहीं होतो। उसका आधार तो विचार-प्रौढ़ता, भाषा-सौन्दर्य आदि अन्य गुण हैं। 'हम' और 'मैं' वहां पर कोई अन्तर पैदा नहीं कर सकते। हां, हम अपने आप मियाँ मिट्ठू अवश्य बन लेते हैं। अस्तु।

लेखक प्रायः तीन प्रकार के होते हैं। एक तो वे, जो किसी पत्र-विशेष को को मुख्य लख लिखते हैं; दूसरे वे, जो लिखते तो विशेष लेख है, किन्तु किसी एकही पत्र के लिए लिखते है; और तीसरे वे, जो किसी एक ही पत्र के लिये नहों भिन्न-भिन्न पत्रों के लिए विशेष लेख लिखते है। इनको क्रमशः मुख्य लेख लेखक (लीडर राइटर) विशेष लेख-लेखक (स्पेशल कन्ट्री ब्यूटर) और स्वतंत्र लेखक (फ़्रीलान्स) के नाम से पुकारा जाता है। इतिहास की दृष्टि से पहला कर्मचारी (लीडर राइटर) बहुत पुराना नहीं है। पत्रकार-कला की काफ़ी उन्नति के बाद इसका जन्म हुआ है। पहले यह काम सम्पादक के ही ज़िम्मे रहता था, और हिंदी में तो अब तक यही हाल है। दूसरे का हाल भी क़रीब-क़रीब ऐसा ही है। हाँ, तीसरा अवश्य काफ़ी पुराना है। जबसे समाचार पत्र अपने नव्य रूप में प्रकाशित होने लगे, तभी से स्वतंत्र लेखकों का समुदाय पैदा हो चला था और उन के विभिन्न विषय के लेख पत्रों में यथा सम्भव स्थान पाते रहे हैं। आजकल भो इस श्रेणी के लेखकों की संख्या बहुत अधिक है। हिंदी में तो

प्रायः जितने लेखक हैं, सब इसी श्रेणी के हैं।

लेख लिखने के लिए लेखक को ऐसा विषय पसंद करना चाहिए, जिससे उसे अधिक प्रेम हो। जिस विषय की ओर जिस की जितनी अधिक स्वाभाविक प्रवृत्ति होगी, उस विषय पर वह उतना ही अधिक अच्छा लिख भी सकेगा। लिखने के पहले विषय पर खूब विचार कर लेना चाहिए। उसके संबंध के आंकड़े, तथा तत्सम्बंधी अन्य वास्तविक बातें, अधिक-से-अधिक किताबों और लेखों आदि को अत्यन्त सावधानी के साथ पढ़कर एकत्र कर लेने के बाद ही लिखने के लिए क़लम उठानी चाहिए। इन बातों को जितना अधिक सोचा-विचारा और पढ़ा जायगा, लेख उतना ही अधिक विचार-पूर्ण, गम्भीर और मूल्यवान् होगा। लेख के सम्बन्ध की सब सामग्री एकत्र करके, सीधी-सादी भाषा में, बिना अतिरंजन के, अपने भाव व्यक्त करने चाहिए। अँग्रेज़ी में एक कहावत है—'Short and simple is sweet' अर्थात् वही सुन्दर है, जो सादा और छोटा है। लेखों के सम्बंध में यह कहावत बहुत अधिक चरितार्थ होती है। अनावश्यक भूमिका-विस्तार न करके सीधे अपने अभीष्ट विषय पर आ जाना ही लेखकों के लिए अच्छा होता है। छोटे लेखों के प्रकाशन में भी सुविधा होती है। हमें इस बात पर सदा ध्यान रखना चाहिए कि जहां तक हो सके, सीधी-से-सीधी बातों द्वारा, और कम-से-कम शब्दों में, अपने भाव व्यक्त करें। लेखक के लिए इस गुण का ग्रहण और इसकी उन्नति करना बहुत आवश्यक और उपयोगी होता

है। एक बात पर ध्यान देने की आवश्यकता और होती है। वह यह कि प्रत्येक लेखक अपने लिए यथा साध्य कोई एक ही विषय चुन ले, और सदा उसी पर पढ़ने-लिखने का अभ्यास करे। इस से वह अपने जीवन में अधिक सफलता प्राप्त कर सकेगा। सब विषयों में टाँग अड़ाने की अपेक्षा एक विषय को ले लेना, उसी का अध्ययन करना, और उसी पर लिखना अधिक सफलता प्राप्त करा सकता है। अब समय वह आ रहा है, (किसी अंश में आ भी गया है), जब साधारण योग्यता काम न देगी। साधारण ज्ञान-प्रदर्शन सफलता की ओर पहुंचाने में उतना सहायक नहीं हो सकता। इस समय तो तभी सफलता मिल सकती है, जब लेखक किसी विषय में असाधारण ज्ञान-प्रदर्शन करे, और यह तभी हो सकता है, जब उपर्युक्त रीति से किसी एक ही विषय पर निरंतर मनन और अध्ययन किया जाय। किन्तु हमारे यहाँ उल्टी ही गंगा बहती हैं। लेखक प्रायः प्रत्येक विषय में टाँग अड़ाने को तैयार रहते हैं। यह अनिष्ट हैं। लेखक को इससे बचने का सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए। इन बातों के अतिरिक्त लेखक को सदैव जागरूक और सावधान रहना चाहिए। मुद्रा और मस्तिष्क इतना शांत रखना चाहिए कि विकार पैदा ही न होने पावे और विवेक शक्ति उत्तरदायित्व की भावना आदि को सदा अपनाये रहना चाहिए। लेखक में यह समझने की शक्ति का होना आवश्यक होता है कि किस समय पर किस प्रकार का और किस विषय

का लेख लिखा जाना चाहिए। बेसुरा और असामयिक राग अलापना निष्प्रभाव और व्यर्थ होता है। लेखक को प्रेस और समाचार पत्र सम्बन्धी साधारण बातें जानने की भी आवश्यकता होती है।

लिखने के पहले लेख का एक ढाँचा तैयार कर लेना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि लेख सम्बन्धी खास खास बातें स्मरण के लिए कागज पर लिख ली जाया करें, और इस प्रकार स्मृति पत्र तैयार हो जाने के बाद ही लिखना प्रारम्भ किया जाया करे। प्रायः लेख के तीन भाग होते हैं—प्रारम्भ, मध्य, अन्त। प्रारम्भ में जिस-विषय-पर कुछ लिखना हो, उसे समझाना चाहिए; मध्य में उसके पक्ष या विपक्ष में तर्क-वितर्क करना चाहिए, और अंतिम भाग में उक्त तर्क-वितर्क के बाद लेखक जिस निर्णय पर पहुंचा हो, उसका उल्लेख किया जाना चाहिए। इस सब क्रियामें आदि से अन्त तक विचार तारतम्य का निर्वाह करना बहुत आवश्यक होता है। यह कार्य किञ्चित् कठिन है, और इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। प्रारम्भ में लेखक विचार प्रवाह के साथ बह कर इधर-उधर हो जाते हैं; किंतु धीरे धीरे अभ्यास के साथ साथ ज्यों ज्यों संयम आता जाता है, त्यों त्यों उनके विचार प्रवाह का नियंत्रण भी ठीक-ठीक होता जाता है, और विचार तार-तन्य की रक्षा भी होती जाती है। सामयिक विषयों पर लेख लिखना अन्य विषयों पर लिखने की अपेक्षा अधिक कठिन काम होता है। नित्य परिवर्तित होने वली परिस्थिति में किसी विषय का प्रति-

पादन करना स्वभाव से ही सरल नहीं होता। उसके लिए परिस्थिति का ज्ञान समय की परख दूर-दर्शिता आदि गुणों की बहुत आवश्यकता होती है। हर प्रकार के लेखों में लेख के अनुसार विषय की जमीन (Back ground) तैयार कर लेनी चाहिए। जिस प्रकार चित्र पटल पर अनुकूल रंग की जमीन बनाकर चित्र बनाने से चित्र अधिक शोभित होता है उसी प्रकार विषय की जमीन बनाकर लिखा गया लेख भी अच्छा होता है। विषय की जमीन उसकी सबसे पहिली अवस्था है। पहिली अवस्था की जमीन पर वर्तमान अवस्था का खींचा हुआ चित्र अपनी महत्ता प्रदर्शित करने में अधिक सफल होगा। इसके विपरीत यह न दिखला कर कि पहिले उसकी अवस्था क्या थी केवल वर्तमान अवस्था का वर्णन किया जायगा तो विषय की महत्ता उतनी स्पष्ट न होगी।

निबन्ध-रचना-सम्बन्धी विशेष बातों का उल्लेख करना इन पंक्तियों का उद्देश नहीं है। इस लिए तद्विषयक विस्तृत विवेचना की आवश्यकता नहीं। तथापि उस सम्बन्ध की कुछ ख़ास ख़ास बातों का उल्लेख कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। सबसे प्रधान बात जो इस सम्बन्ध में ध्यान रखने की है, वह है विराम चिह्नों की। हिन्दी में विराम चिह्नों के प्रति अधिकांश में उपेक्षा सी की जाती है। यह अवाञ्छनीय है। भावाभिव्यक्ति में विराम चिह्नों से जितनी अधिक सहायता मिलती है, उतनी कभी कभी शब्दों से भी नहीं मिलती। जहां पर भाव माला का कोई छोटा सा अंतर्भाव समाप्त होता हो वहां अल्प विराम (कामा—,) जहां

कोई विशेष अन्तर्भाव समाप्त होता हो वहाँ अर्ध विराम (सेमी-कोलन —;) जहां भाव माला की पूर्ण समाप्ति होती हो वहां पूर्ण विराम (फुलस्टाप— ।) देकर तथा प्रश्न बाचक बाक्यों में प्रश्न चिह्न (नोट आफ इनटरोगेशन —?) लिख कर, आश्चर्य सूचक वाक्यों में आश्चर्य चिह्न (मार्क आफ एक्सक्लेमेशन— !) लिख कर कहीं से उधृत किये गये विशेष बाक्यों को इनवर्टेड कामज ("   ") के अन्दर बन्द करके और असम्बन्धित वाक्यों को, विषय के स्पष्ट करने के विचार से जिनके लिखने की आवश्यकता पड़ जाय, ब्रैकेट (   ) के अन्दर बन्द करके अपने भाव जितनी सरलता सुविधा और स्पष्टता के साथ व्यक्त किये जा सकते हैं उतनी सरलता सुविधा और स्पष्टता इन चिन्हों के बिना नहीं आती। दूसरी बात जिस पर ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है वर्ण विन्यास के सम्बन्ध की है। हिन्दी में एक यह ऐब है (यद्यपि कुछ विद्वान इसको ऐब नहीं मानते) कि उसमें अनेक शब्द ऐसे हैं जो भिन्न भिन्न प्रकार से लिखे जाते हैं। जैसे कोई परंतु लिखता है कोई परन्तु; कोई लिये लिखता है कोई लिए; कोई चाहिए लिखता है कोई चाहिये आदि। ये दोनों प्रयोग सही और ठीक माने जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अक्सर एक ही लेखक एक ही शब्द को कभी किसी प्रकार और कभी किसी प्रकार लिखता है। वह अपने लिए भी कोई एक बात निश्चित नहीं कर लेता। यह उचित नहीं। दोनों प्रकार का लिखना सही भले हो, जो जिस प्रकार चाहे लिखे, किन्तु एक ही मनुष्य दोनों

प्रकार से न लिखे। अपने लिए तो प्रत्येक लेखक को एक बात तय कर लेनी चाहिए और उसी के अनुसार सदा लिखना चाहिए। यह बहुत भद्दा मालूम होता है कि एक ही लेखक कहीं 'हुवा' लिखे और कहीं 'हुआ'। इन बातों के अतिरिक्त उद्धृत वाक्यांश और विशेष विषय के अंक आदि के लिखने में लेखक को स्पष्टता का बहुत ख़्याल रखना चाहिए। यों तो स्पष्टता सभी जगह अच्छी और आवश्यक होती है। किन्तु इन स्थानों में तो उसका होना अनिवार्य है अन्यथा बहुत भ्रम फैल सकता है और बड़ी गड़बड़ी हो सकती है। इसके अतिरिक्त एक ही आकार के कागज पर हाशिया छोड़ कर साफ और सुन्दर अक्षरों में सतरों और शब्दों के बीच में काफी जगह छोड़ छोड़ कर लिखना, प्रत्येक प्रष्ठ पर प्रष्ठ संख्या देना आदि साधारण बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। एक बात पर और ध्यान देना चाहिए। वह यह कि जहां तक अपनी भाषा के शब्दों से काम चल सके वहां तक अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग न करना चाहिए। लेख समाप्त हो जाने पर उसे दुबारा ध्यान पूर्वक पढ़ जा ा और इसके बाद कापी पर अपने साफ साफ हस्ताक्षर और पूरा पता लिख कर कांपी प्रेस में भेजनी चाहिए। लेख के साथ सम्पादक के नाम जो पत्र भेजे जाते है उनमें लम्बे मजमूनों की आवश्यकता नहीं होती। संक्षेप में लेख भेजने की बात भर लिख देनी चाहिए। अपनी योग्यता अयोग्यता आदि के सम्बन्ध की बातें लिखने की आवश्यकता नहीं। हाँ, जब तक अपना कोई स्थान न बन जाय तब

तक प्रसंगवश परिचय के रूप में यह लिख देना अनुचित या अनावश्यक नहीं होगा कि लेखक के लेख कहाँ कहाँ छप चुके है, उसने कौन सी पुस्तकें लिखी है, या अन्य दिशाओं में क्या सफलता प्राप्त की है। साधारणतया लेख के साथ अपने पूरे पते और टिकटों सहित एक लिफाफा भेजने का भी नियम है। यह इस लिए कि यदि सम्पादक लेख को प्रकाशित न कर सके तो उसी लिफाफे में भर कर वापस कर दे।

लेखकों का अपने लिए एक स्थान (स्थिति) बना लेना आवश्यक होता है। नवीन लेखकों को यह स्थान बनाने में बड़ी कठिनता पड़ती है। हिन्दी के लिए तो यह बात और भी अधिक सत्य है क्यों कि हिन्दी का साहित्य क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक संकुचित है। वह बढ़ रहा है और आशा है कि निकट भविष्य में ही विस्तीर्ण होकर नवीन लेखकों को कुछ सुविधा दे सकेगा। परंतु वर्तमान समय में बेचारे नये लेखकों को बहुत अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पहले तो यही सच है कि नये लेखकों के विचारों में प्रौढ़ता कम होती है या नहीं होती। उनके विचार अधकचरे और उलझे हुए होते हैं। इस लिए समाचार पत्र उन्हें स्थान देने में हिचकते हैं। दूसरे जब समाचार पत्रों को लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों से ही लेख प्राप्त होते रहते हैं तब वे नये लेखकों के—ऐसे लेखकों के; जिन्होंने साहित्य-क्षेत्रमें अभी तक कोई स्थान प्राप्त नहीं किया—लेख क्यों लें ? यदि साहित्य-क्षेत्र इतना विस्तृत हो जाय कि केवल लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक उसकी पूर्ति न कर सकें, अन्य

लेखकों की गुंजाइश भी उसमें रहे, तो नए लेखकों को अवश्य सुविधा हो जाय। किंतु जब तक ऐसी अवस्था नहीं आती, तब तक नए लेखकों को अधिक धीरता और आशावादिता से काम लेना चाहिए। यदि एक बार कहीं से लेख वापस आ जाय, तो उससे हतोत्साह होकर लिखना ही न छोड़ बैठना चाहिए। अपने ज्ञान और शक्ति भर अधिक-से-अधिक परिश्रम करके लेख लिखना चाहिए। उसके बाद भी यदि कोई सम्पादक उसे वापस करे, तो यह समझ कर निरुत्साह न हो जाना चाहिए कि लेख अच्छा नहीं है। सम्पादकों के लेख अस्वीकार कर देने का लेख का अच्छा नहीं होना ही एकमात्र कारण नहीं होता उसके कई अन्य कारण भी होते हैं। कभी स्थान की कमी से, कभी सम्पादक की रुचि के विरुद्ध होने से, कभी पत्र की नीति के प्रतिकूल होने से और कभी केवल इस लिए कि उन्हें अधिक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के लेख प्राप्य हैं सम्पादकगण लेख अस्वीकृत कर देते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि वापस किया हुआ लेख बुरा ही हो। हो सकता है कि एक सम्पादक द्वारा वापस किया हुआ लेख दूसरे सम्पादक द्वारा स्वीकृत कर लिया जाय। इसलिए लेखकों का कर्तव्य है कि वे ईमानदारी के साथ सतत परिश्रम और अध्यवसाय से धीरता और साहस पूर्वक अपना काम करते जायं, और भगवान श्रीकृष्ण के "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" का स्मरण रखते हुए आशा पूर्वक आगे बढ़ने का प्रयत्न करते जायं।

—:o:—

प्रूफ़-रीडिंग



पत्रकारों के काम में लोग प्रूफ़-रीडिंग की ओर प्रायः उतना ध्यान नहीं देते; जितना दिया जाना चाहिए। बहुत लोग तो ऐसे भी हैं, जो इसे पत्रकारों के कार्यों की गणना में भी नहीं रखते। उनकी दृष्टि में यह काम क्लर्कोंका है। यह भ्रांति है। प्रूफ़-रीडिंग का काम भी पत्रकारों के काम की परिगणना में ही आना चाहिए। यों तो बहुत संभव है, आगे चलकर रिपोर्टरों, संवाददाताओं, समालोचकों और संपादकों के काम को भी लोग क्लर्कों का काम समझने लगें, और यह कहने लगें कि पत्रकार का काम केवल यह है कि वह अपने विचार क्लर्कों पर प्रकट कर दें, और क्लर्क लेख लिख कर तैयार कर दिया करें। इस प्रकार पत्रकारों के कार्य की परिभाषा में केवल जमा-खर्च ही रह जाय। किन्तु यह बात ठीक नहीं। पहले तो इस लिए कि प्रायः क्लर्कों में लेख लिखने की शक्ति ही नहीं होती, दूसरे संपादक या पत्रकार परिस्थिति से जितनी अच्छी तरह परिचित होते हैं, उतनी अच्छी तरह क्लर्क नहीं रहते। इस लिए क्लर्कों को इस बात का उतना अच्छा ज्ञान भी नहीं हो सकता कि कौन-सी बात किस ढंग से, किन शब्दों में व्यक्त की जानी चाहिए, जिस से अभिलषित परिणाम निकले। उसके लिए तो पत्रकार को स्वयं लेखनी उठानी ही पड़ेगी। इसी प्रकार

प्रूफ़-रीडिंग में भी बहुत-सी बातें ऐसीं हैं, जिन्हें पत्रकार ही कर सकते हैं, क्लर्क नहीं। उदाहरण के लिए मान लीजिए, किसी मज़मूनके छपते-छपते कोई नयी बात पैदा हो गयी।उसके अनुसार मज़मून में परिवर्तन करना आवश्यक हो ही जाता है। किन्तु क्लर्क से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह उन बातों को इतनी जल्दी जान ले, और जान लेने के बाद उचित शब्दों में, उचित ढंग से प्रूफ में संशोधन कर दे। यह काम तो पत्रकार ही कर सकता है। इस लिए प्रूफ़-रीडिंग के काम को नितांत पत्रकार के काम में ही गिना जाना योग्य हैं। और, आज कल तो, जब केवल संपादकीय काम ही नहीं, अधिकांश प्रबंध-संबन्धी काम भी पत्रकार के कामों को श्रेणी में गिने जाते हैं इसको पत्रकार का काम मानना और भी युक्तिसंगत और उचित है।

प्रूफ़-रीडिंग के संबंध में इस प्रकार उपेक्षापूर्ण भावना होने के कारण ही ऐसे लोग भी, जो उसे पत्रकार का काम मानते हैं, उसको उतनी महत्ता नहीं देते, जितनी दी जानी चाहिए। अँग्रेजी पत्रों और पुस्तकोंमें—विशेषकर ऐसे अँगरेज़ी पत्रों और पुस्तकोंमें, जो हिंदोस्तान के बाहर यूरोप, अमेरिका आदि महाद्वीपों में छपी हैं—देखिए, पुस्तक-की पुस्तक और पत्रों की फ़ाइलों-को फ़ाइलें उलटते चले जाइए, कहीं नाम को भी कोई गलती नहीं मिलेगी। इसका कारण यह है कि वे लोग इस विषय की महत्ता का अनुभव करते और इसकी ओर विशेष सावधानी के साथ ध्यान देते हैं। किंतु हिन्दोस्तानी प्रेसों की—विशेष कर हिंदी-

प्रेसों की—तो बात ही निराली है। वहाँ इस विषय की कोई गिनती ही नहीं। प्रूफ़-रीडिंग तो वहाँ एक बेगार है। इस बात पर कभी ध्यान ही नहीं दिया जाता कि ज़रा-सी ग़लती छूट जाने पर अर्थ का कितना भयंकर अनर्थ हो सकता है। इस उपेक्षा-वृत्ति का परिणाम यह होता है कि सैकड़ों अशुद्धियां छूट जाती हैं। एक एक दो दो 'फ़ार्म' की किताबों में शुद्धि पत्र के दो-दो तीन तीन पुछल्ले जुड़े रहते हैं। और फिर भी अशुद्धियां सर्वांश में शुद्ध नहीं हो पातीं। यह ठीक है कि इसका एक कारण यह भी है कि हिंदी की वर्णमाला अंगरेजी की वर्णमाला की भांति प्रेस के काम के लिए सरल नहीं है, उसमें मात्राओं और संयुक्ताक्षरों की ऐसी ऊभड़-खाभड़ जमीन है कि प्रेस-'टाइप' का शकट उसमें सरलता-पूर्वक नहीं चल सकता। यह भी ठीक है कि वहां के कंपोजीटर पढ़े लिखे सुशिक्षित होते हैं और हमारे यहाँ के अधिकांश में निरे गोबर-गणेश। इसलिए उनका संशोधन हमारे यहाँ की अपेक्षा अधिक अच्छा होता हैं। फिर भी यदि अधिक सावधानी से काम लिया जाय तो उपर्युक्त त्रुटियों के होते हुए भी निश्चित रूप से सुधार हो सकता है और जहां पर इस प्रकार की सावधानी रक्खी जाती है वहाँ गलतियाँ होती भी कम है। सच पूछिए तो यह विषय उतना ही महत्व का है जितना लेख लिखना। इसकी उपेक्षा करना बड़ी भारी भूल हैं। संतोष की बात है कि इस ओर लोगों का ध्यान कुछ कुछ आकर्षित होने लगा है।

प्रूफ़-रीडिंग का इतिहास भी बड़ा मनोरंजक है। पहले जब प्रेसों का आविष्कार हुआ तब प्रूफ-रीडिंग के लिए कोई सुविधा-जनक व्यवस्था न थी। होता यह था कि कंपोजीटर लोग लेख आदि छापकर तैयार करते और संशोधन या स्वीकृति के लिए उन्हें लेखकों या संपादकों के पास भेज दिया करते थे। लेखक स्वयं उन्हें देखता था और जो अशुद्धियाँ रह जाती थीं उन्हें सुधारता था। इसके बाद उस 'प्रूफ-कापी' को वह अपने मित्रों के पास भेजता था और मित्र भी जहाँ आवश्यकता समझते थे सुधार कर देते थे। कभी कभी तो यह तक होता था कि प्रूफ कापियाँ विश्व विद्यालयों के नोटिस बोर्डों या किसी अन्य सार्व-जनिक स्थान में टाँग दी जाती थीं और देखने वाले लोग उसमें आवश्यक संशोधन कर दिया करते थे। कोई खास आदमी इस काम के लिए नियुक्त नहीं होता था। उस समय संशोधन संबंधी नियमों और चिन्हों का भी प्रयोग नहीं होता था। इस लिए जो संशोधन किये जाते थे, उनमें बड़ा विस्तार होता था, और तमाम कागज रँग जाता था। कंपोजीटरों को भी उसके संशोधन में अधिक परिश्रम पड़ता और अधिक समय व्यय करना पड़ता था। किंतु धीरे-धीरे आवश्यकता ने सब कुछ सिखा दिया। कुछ लोग प्रूफ-रीडिंग का काम खास तौर से करने लगे। अपनी सुविधा के लिए उन्होंने इस विषय के कुछ नियम और चिन्ह भी बनाए। अब सुधार होते-होते यह काम वर्तमान स्थिति तक आ पहुंचा है। अब तो इङ्गलैंड आदि देशोंमें प्रूफ-रीडरोंकी सभाएँ

भी स्थापित हो गई हैं, जो अपने पेशे के आदमियों को सुविधा और अधिकारों की रक्षा का प्रयत्न करती रहती हैं, साथ ही उसमें सुधार और उन्नति के उपाय भी सोचा करती है।

प्रूफ-रीडरों का काम लेखकों या संपादकों और कंपोज़ीटरों के बीच में एक बिचवानी का-सा काम है। अधिकांश में यह बड़ा अरुचिकर भी होता है। बार-बार एक-सी ही बातों को दोहराना पड़ता है। नवीनता का एक प्रकार से अभाव ही रहता हैं। इससे प्रायः लोग इस काम से ऊब जाते हैं। किन्तु इस कार्य-चित्र की प्रकाशमान दिशा भी है। प्रूफ-रीडिङ्ग कोई निर्जीव मशीन द्वारा किए जानेवाले कार्यो की भांति नितांत नवीनता और विशेषता शून्य भी नहीं है। प्रूफ-रीडर का कार्य केवल यही नहीं है कि लेख में वर्ण-विन्यास और विराम-चिह्नों आदि का संशोधन करके ही बैठा रहे, प्रत्युत उसे इन कामों के अतिरिक्त यह भी देखना चाहिए कि पृष्ठ जिस प्रकार से बाँधे गए हैं, वह ठीक है या नहीं, पृष्ठों के ऊपर की लकीरें (हेडलाइनें), उनकी क्रम-संख्या तथा अन्य सजाव ठीक है या नहीं, ब्लाक आदि किसी विशेष लेख या पृष्ठ के उचित स्थान पर और अच्छे ढंग से लगाये गये है या नहीं; पृष्ठों की सुन्दरता में किसी प्रकार की त्रुटि तो नहीं रह गयी, या कोई ऐसी बात तो नहीं की जा सकती, जिससे उसकी सुन्दरता बढ़ सके। इन तमाम बातों में नवीनता और विशेषता बराबर रहती है। इस लिए ऐसे स्थानों पर प्रूफ-रीडिंग का काम मनोरंजक भी हो जाता है। प्रूफ-रीडर में तीव्र

दृष्टि, बुद्धिमत्ता, छिद्रान्वेषिणी शक्ति, जागरूकता, धैर्य आदि अनेक गुणों का होना आवश्यक होता है।

प्रूफ की प्रायः तीन श्रेणियां होती है। हस्त-लिखित या पांडु-लिपि को, जिसे प्रेसमेन 'कापी' कहते हैं, कम्पोज करके पहिले-पहिल कंपोज़ीटर जो प्रूफ लाता है, उसको पहिला प्रूफ या गेली-प्रूफ कहते हैं। यह प्रूफ अलग-अलग कॉलमों में जिनकी लंबाई एक-सी नहीं होती, बँधा हुआ होता है। जो कंपोज़ीटर जितना कंपोज़ करता है, उतना ही अलग अलग लाकर प्रूफ देता और फिर उसका संशोधन करता है। यह प्रूफ़ 'मैटर' 'गेलियों' में रखकर दिया जाता है, इसीलिए इसे गेली-प्रूफ़ भी कहते हैं। प्रूफ़ के अलग-अलग कॉलमों में रखने से संशोधन में सहूलियत होती है। पहिले प्रूफ़ में संशोधनों का अधिक होना स्वाभाविक होता है, इसलिए पहिला प्रूफ़ इसी प्रकार देने की प्रथा है। इसके बाद सब मैटर पृष्ठों के आकार-प्रकार का बनाकर बाँधा जाता है, और पृष्ठ-पृष्ठ का प्रूफ़ दिया जाता में। इसको दूसरा प्रूफ़ पृष्ठ-प्रूफ़, या 'रिवाइज़र' कहते हैं। इसके बाद जो प्रूफ़ आता है, वह तीसरा, अंतिम, 'आर्डरली', 'क्लीन' आदि नामों से पुकारा जाता है। अंतिम प्रूफ़ को प्रायः सम्पादक या लेखक स्वयं देखते हैं।

ये तो हुईं प्रूफ़-रीडिंग-संबंधी साधारण बातें। इस विषय की विशेष बातों के सम्बन्ध में सबसे पहिली बात यह है कि प्रूफ़-कॉपी बहुत साफ़ और काफ़ी बड़े काग़ज़ पर छपी हुई होनी

चाहिए। यदि ऐसा न हो, तो प्रूफ़ संशोधक का यह कर्तव्य है कि उसे अस्वीकार कर दे और दूसरी कॉपी मंगावे, जो साफ और अच्छी हो। प्रूफ़-कॉपी साफ़ न होने से अशुद्धियाँ छूट जाने का भय रहता है। कभी-कभी तो अक्षर पहचान तक नहीं मिलते, इसलिए ग़लतियाँ मालूम ही नहीं होतीं। अतः प्रूफ़-कॉपियों का साफ होना आवश्यक है। इस प्रकार साफ कागज़ पर और सफ़ाई के साथ आये हुए प्रूफ़ को शुद्ध करने के लिए दो आदमियों को लगाना चाहिए। एक प्रूफ़ का संशोधन करने के लिए और दूसरा हस्त-लिखित पांडु-लिपि पढ़ने के लिए। पांडु-लिपि पढ़ने-वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह लिखा हुआ लेख इतने जोर से पढ़े कि प्रूफ़-संशोधन करने वाला व्यक्ति साफ़-साफ़ सुन सके। प्रूफ़-संशोधक यह देखता जाय कि जो कुछ पांडु-लिपि पढ़ने वाला पढ़ रहा है, वह प्रूफ़-कॉपी में है या नहीं। जहां पर कोई बात हेर-फेर की मालूम हो, वहाँ पर आवश्यक सुधार करे। इस सम्बन्ध में एक नियम यह भी हो सकता है कि प्रूफ़-संशोधक मज़मून पढ़ता जाय, और पांडु-लिपि पढ़नेवाला देखता रहे कि प्रूफ़-संशोधक जो कुछ पढ़ रहा है, वह लिपि के अनुसार है या नहीं। किंतु इस नियम से पहला नियम अधिक अच्छा है; क्योंकि प्रूफ-संशोधन का आधार पांडु-लिपियां हैं, प्रूफ-कापी नहीं। उपर्युक्त रीति से काम करने से एक तो जल्दी होगी, दूसरे संशो-धन अधिक शुद्ध होगा। इसके विपरीत यदि एक ही आदमी को पांडु-लिपि से मिलाने और प्रूफ-संशोधन करने का सम्मिलित

काम दे दिया गया तो समय तो अधिक लगेगा ही, साथ ही संशोधन भी उतनी शुद्धता के साथ न हो सकेगा। क्योंकि संशोधक का ध्यान दो तरफ बटा रहने के कारण किसी एक पर उतनी सावधानी के साथ न रह सकेगा। इससे ग़लतियों के छूट जाने का भय रहेगा।

प्रूफ-संशोधन के सम्बन्ध में एक बात और भी देखी जाती है। जहां कुछ लोग ऐसे हैं, जो प्रूफ-रीडिंग की उपेक्षा करते हैं, वहां कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो ख़ामख़ाह प्रूफ में अशुद्धियां निकाला करते हैं। ये दोनों बातें अनुचित और अहितकर है। पहले तो संपादक का यह प्रधान कर्तव्य है कि हस्त-लिखित पांडु-लिपियां छपने के लिए प्रेस में देने के पहले वह यह देख ले कि जिन संशोधनों और परिवर्तनों की आवश्यकता हैं, वे सब बन चुके है या नहीं। जो पांडु-लिपि प्रेस में दी जाय, उसमें किसी प्रकार का—कम-से-कम लिपि दिये जाने के समय तक—कोई आवश्यक परिवर्तन छूट न जाने पावे; एक-एक मात्रा और विराम आदि के चिह्न तक ठीक करके कापी प्रेस में दी जानी चाहिए। इसके बाद जब प्रूफ आवे, तब ध्यान रखना चाहिए कि वे ही ग़लतियां बनायी जायँ, जिनका बनाना नितांत आवश्यक हो। प्रूफ में अधिक संशोधन या परिवर्तन करने से समय और धन, दोनों का अपव्यय होता है। पांडु-लिपि के संशोधन में संपादक को थोड़ा-सा परिश्रम अवश्य उठाना पड़ता है; किन्तु इससे कोई आर्थिक हानि नहीं होती। परंतु यदि कापी में अशु-

द्धियां छोड़कर प्रूफ में वे बनाई जाती हैं, तो अधिक असुविधा और हानि उठानी पड़ती है। कंपोज़ीटर एक बार पांडु-लिपि के अनुसार कंपोज करता है, संशोधन होने पर फिर वह अपने कंपोज किए हुए 'मैटर' को निकालता है, इसके बाद संशोधित शब्द उसके स्थान पर रखता है। इस तरह जमाकर निकालने और दुबारा जमाने में कंपोजीटर को परेशानी जो होती है, वह तो होती ही है, उसके अलावा प्रेस के मालिक को कंपोजीटर के अधिक समय लग जाने का जो 'ओवर टाइम-वेतन' देना पड़ता है, वह अलग। इस प्रकार आर्थिक हानि, समय का अपव्यय परेशानी आदि अनेक हानियां उठानी पड़ती हैं।

कभी-कभी तो इस प्रकार के संशोधनों से बहुत ही अधिक हानि हो जाती हैं। जहां पर 'लाइनोटाइप' मशीन द्वारा कंपोज किया जाता है, वहां तो एक-एक शब्द के लिए पूरी लाइन तोड़ी जाती है। किंतु हिन्दी में अभी इस प्रकार की मशीनों का प्रयोग नहीं होता। फिर भी रद्दोबदल के कारण हिंदी-प्रेसवालों को कुछ-न-कुछ हानि उठानी ही पड़ती है, और कभी-कभी तो यह हानि वृथा ही उठानी पड़ती है, यह अवस्था उस समय आती है, जब प्रूफ-संशोधक व्यर्थ में ही एक शब्द के स्थान पर बदल-कर उसका पर्यायवाची शब्द रख देता है। यह व्यापार नितांत अवांछनीय है। इस प्रकार के परिवर्तनों से (आम तौर पर) लेखक के भावों में तो कोई विशेष बात पैदा नहीं हो जाती, उलटा

स प्रेके मत्थे एक व्यर्थ का व्यय-भार आ पड़ता है। कभी-कभी लगातार कई शब्द बदलने से या कोई वाक्य या वाक्यांश बढ़ा देने से, लाइनोटाइप की छपाई न होने पर भी, हिंदी-प्रेसों में पैराग्राफ-के पैराग्राफ तोड़ने पड़ते हैं। इन तमाम दिक़्क़तों को दूर करने का सब से सरल उपाय यह है कि छपने के लिए देने के पहिले पांडु-लिपि इतनी सावधानी और सतर्कता के साथ देख ली जाय कि उसमें फिर परिवर्तनों और परिवर्धनों की आवश्यकता अन्त तक न पड़े।

एक बात और भी ध्यान देने की है। हिंदी-पत्रकार बहुधा यह किया करते है कि कोई लेख यदि छपने के लिए आया या तैयार किया गया, तो बिना इस बात का विचार किये हुए ही कि लेख जितने स्थान के लिए दिया जा रहा है, उतने से कम-ज़्यादा तो न होगा, प्रेस में दे देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कंपोज़ करने के बाद यदि लेख बढ़ा, तो काटा जाता है, और यदि घटा, तो स्थान-पूर्ति के लिए और कुछ लिखा जाता है। इन दोनों अवस्थाओं में प्रेस को हानि उठानी पड़ती है। बढ़ने की हालत में कम्पोज़ीटरों की की-करायी मेहनत और उनका उतना समय नष्ट होता है, और घटने में उनके एक खास निश्चय के अनुसार काम करने में बाधा पहुंचती है। निश्चित काम कर चुकने के बाद स्वभावत: उन में शिथिलता आ जाती है, और इस प्रकार काम में

उतनी तत्परता नहीं रह जाती। इतना ही नहीं, उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में एक हानि यह भी होती है कि जो चित्र या ख़ास मज़मून खूबसूरती के साथ किसी स्थान पर जमा देने के लिए होता है, उस के लिए उचित स्थान करने पर में व्यर्थ की परेशानी और बढ़ जाती है, और समय का अपव्यय भी होता है।

ऊपर प्रूफ़ में बहुत कम–नितांत आवश्यक संशोधन करने पर काफी जोर दिया गया है; किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि आवश्यक संशोधन भी छोड़ दिए जायँ। आवश्यक संशोधन तो करना ही चाहिए। कभी कभी तो समाचारपत्र की सुविधा के लिए बड़े-बड़े परिवर्तन भी करने पड़ते हैं। ऐसे अवसर विशेषतः उस समय आते हैं, कि जब पत्रों में कोई ऐसा विषय छापा जाता है, जो समाप्त नहीं हो चुका होता और जिसका आंदोलन चलता रहता होता है। ऐसे अवसरों पर क्षण-क्षण पर परिस्थितियों में परिवर्तन होते रहते हैं। और, यह बहुत संभव होता है कि पांडु-लिपि देने से प्रूफ आने के समय के भीतर कोई खास परिवर्तन हो जाय—घटना चक्र किसी अचिंत्य दिशा की ओर मुड़ जाय। ऐशी दशा में संशोधन करना अनिवार्य हो जाता है। संशोधन भी ऐसा-वैसा नहीं, पैराग्राफ तक बदलने की आवश्यकता पड़ जाती है। उस समय संशोधन न करना ही अहितकर और अनिष्ट कर होता है; क्योंकि आवश्यक बातों के प्रकाशित न होने से पत्र की महत्ता को बहुत बड़ा धक्का पहुंचता है। यहाँ तो उतनी सख्ती नहीं है

किंतु विदेशों में यहाँ तक नौबत आ जाती है कि इस प्रकार की दो हा एक भूलों से पत्र का महत्त्व इतना गिर जाता है कि फिर उसके सँभलने तक को आशा जाती रहतो है।

प्रूफ-रीडिंग के सम्बन्ध में एक बात और जान लेने की आवश्यकता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रूफ का संशोधन करते समय कंपोज़ीटर हाशिए पर लिखे हुए इशारों पर ही ध्यान रखते हैं, लेख के बीच में संशोधक ने क्या संशोधन किया, क्या नहीं किया (यदि उसका उल्लेख हाशिए पर न हुआ तो) इसकी परवा नहीं करते। और, बात भी ठीक है। उनकी सहूलियत के लिए जब हाशिए पर इशारा लिख देने का नियम बना दिया गया है, तब कोई कारण नहीं कि प्रूफ-संशोधक उसकी अवहेलना करे, और कम्पोज़ीटर लेख का अक्षर अक्षर टटोलते फिरें। इससे उनका समय भी अधिक नष्ट होगा, और परेशानी भी बढ़ेगी। इस लिए प्रूफ संशोधकों को सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि लेख का कोई संशोधन ऐसा न छूटने पावे, जिसके संबंध की हिदायत हाशिए में, निश्चित इशारों द्वारा न दे दी गयी हो। प्रत्येक संशोधन के संबंध का इशारा हाशिए पर होना ही चाहिए। यदि लेख की कोई बात समझ में न आवे, तो उसके नीचे एक लकीर और हाशिए पर प्रश्न-सूचक चिह्न लगाकर उसे लेखक या संपादक के पास उचित संशोधन के लिए भेज देना चाहिए। संशोधन, जहां तक संभव

हो लाल रोशनाई से करना चाहिए, जिससे संशोधित शब्द और उसके चिह्न अनायास स्पष्ट रूप से दृष्टिगत हों। लाल रोशनाई के आभाव में दूसरी रोशनाइयों से भी काम लिया जा सकता है किंतु यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि ऐसी रोशनाई इस्तेमाल की जाय, जिसका लिखा हुआ दूर से जाहिर हो। ऐसा करने से किसी संशोधन के सुधार से रह जाने का डर न रहेगा।

विषय की पूर्णता और उसके अधिक स्पष्टीकरण के बिचार से यह आवश्यक प्रतीत होता है कि यहाँ पर प्रूफ़ संशोधन संबंधी इशारों का उल्लेख कर दिया जाय। ये इशारे प्रायः अंगरेजी ढंग के हैं। इसका कारण यह है कि ये लिये ही अँगरेजी से गये हैं। इसलिए यह संभव ही नहीं कि उनमें अंगरेजी का रंग न दिखलाई पड़े। हिंदी में स्वतंत्र रूप से कोई इशारे अभी तक नहीं बने। इसके लिए हम अंगरेजी का ही मुंह ताकते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जब कभी ऐसे संशोधन आ पड़ते हैं, जिनका अंगरेजी में कभी काम नहीं पड़ता, तब हम—अपना स्वतन्त्र इशारा न होने के कारण—पूरा का पूरा शब्द या अक्षर काट देते है और उसको जिस रूप में परिवर्तित करना चाहते हैं उस रूप में हाशिए पर लिख देते है। यदि अपने स्वतन्त्र इशारे हों तो यह दिक्कत न रह जाय और जितने अंश के लिए संशोधन की आवश्यकता हो उतने ही में संशोधन-चिह्न लगाकर सरलतापूर्वक काम निकाला जा सके। हिंदी का यह दुर्भाग्य है कि उसके बड़े-

बड़े विद्वान् इस विषय पर उचित ध्यान नहीं देते। उपर्युक्त संशोधन-संबंधी अड़चनों के स्थल, विशेष कर मात्राएँ बनाने या हलंत आदि करने के समय आते हैं। इसके लिए हिंदी में कोई चिह्न नियुक्त नहीं हुआ। आशा है, हिंदी के अग्रगण्य विद्वान् इस ओर ध्यान देंगे, और इस त्रुटि को शीघ्र दूर करेंगे। ऐसे विषयों का साहित्य तैयार करने की भी बड़ी ज़रूरत है। जब तक इस प्रकार का कोई साहित्य किसी प्रौढ़ और प्रांजल लेखनी द्वारा सामने नहीं आता, जो सर्वमान्य हो, तब तक इन पंक्तियों में अन्य प्रचलित चिह्नों के साथ-साथ ऐसे स्थलों के लिए भी चिह्न निर्धारित करने का साहस किया जाता है जिनका उल्लेख ऊपर आया है—

लेख का निशान	मतलब	हाशिये का इशारा
[	नया पैराग्राफ	*N. P.*
	इटालिक	इटालि०
अत्यन्त	निकाल दो	
	जैसा छपा है, वैसा रहने दो	रहने दो
“	इनवर्टेड कामा	
वर्णन जिस रूप में जिसका	एक को दूसरे के स्थान पर लाओ	बदलो

लेख का निशान	मतलब	हाशिए का इशारा
⅄	थोड़ी जगह छोड़ो	#
——	लेड भरो	लेड
⅄	डैश लगाओ	|—|
राम को ला घुसेड़ा सूरदास	एक साथ रक्खो	Run on
प्रेम	अक्षर उलटाओ	୨
और	अक्षर स्पष्ट नहीं है	×
	इसके स्थान पर परन्तु करो	परन्तु |
⅄	इस स्थान पर जीवन-शब्द बढ़ाओ	जीवन |
राम	एकसा अक्षर लगाओ	W.f.
⅄	पूर्ण विराम दो	(।)
‖	हाशिए की सतरें एक सीध में करो	‖
सू र	अक्षर साथ-साथ रक्खो	⁐
जीवनो	अक्षर सीधी सतर में रक्खो	=
⅄	हाइफेन लगाओ	| - |

लेख का निशान	मतलब	हाशिए का इशारा
LL	शब्दों के बीच की जगह बराबर करो	L eq # ()
और ;	उभरे हुए टाइप को दबा दो	!
जाता है कहा	कहा को जाता के पहिले रक्खो	बदलो
मङ्गलोतसव	'त' को हलन्त करो	् |
ॖ	'उ' की मात्रा लगाओ	ु |
ं	अनुस्वार दो	ं |
:	विसर्ग दो	: |

ऊपर की तालिका में इटालिक्स के लिए जो निशान बना है वैसा ही निशान बड़े-छोटे अक्षरों के लिए भी लगता हैं; किन्तु उस दशा में हाशिये पर बड़ा टाइप छोटा टाइप अथवा यदि किसी खास बाडी का टाइप लगवाना हो तो जिस 'बाडी' का टाइप लगाना अभीष्ट हो उसका उल्लेख हाशिए पर कर देना चाहिए; इनवर्टेड कामाज को लगाने और बन्द करने के लिए भी एक सा ही निशान लगता है। अन्तर केवल यह होता हैं कि बन्द करने में „ इस प्रकार का निशान होजाता है। लेड भरने वाले निशान की भाँति ही लेड निकालने का निशान भी होता है; किन्तु उसमें हाशिये पर 'लेड निकाल दो' यह लिखा हुआ होता है। विरामों के चिन्ह भी एक से ही होते हैं। आवश्यकता केवल यह होती है कि हाशिये के वृत्त में जो विराम चिन्ह लगाना हो वह बना दिया

जाय। यही बात मात्राओं के संबंध में भी समझनी चाहिए। लेख में आवश्यक मात्राएँ बनाकर हाशिये पर वही मात्रा बना देना चाहिए अनुस्वार और अर्धचन्द्र की बात बिलकुल एक सी है। पहिली हालत में अनुस्वार और पिछली में अर्धचन्द्र हाशिये पर लिख देना चाहिए, इन चिह्नों के अतिरिक्त यदि कहीं कुछ वाक्य या वाक्यांश जोड़ने हों तो जिस स्थान पर उनके जोड़ने की आवश्यकता हो उस स्थान पर | इस प्रकार का निशान बनाकर उसके ऊपर से ही लकीर खींचकर हाशिये पर या अन्यत्र जहाँ कहीं ऊपर या नीचे, स्थान मिले वहां वह वाक्य या वाक्यांश लिख देना चाहिए।

हाशिये के निशान ठीक उस लाइन के सामने बनाये जाते हैं जिस लाइन में संशोधन करना होता है और उनके लिखने का नियम यह है कि लाइन के पहिले संशोधन का चिह्न बाईं ओर के हाशिये पर पहिले लिखा जायगा और उसके बाद फिर उस लाइन के उसके बाद वाले संशोधन-चिह्न उसके बाद बाईं ओर से दाहनी ओर को लिखे जांयगे। इस प्रकार लिखते लिखते यदि बाईं ओर का हाशिया भर जाय तो दाहिनी ओर के हाशिये पर चिन्ह बनाये जाते हैं। परन्तु नियम यह होता हैं कि चिन्ह संशोधन-स्थलों के क्रमानुसार बाईं ओर से दाहिनी ओर को ही बनाये जाते हैं। कभी कभी यह भी होता है कि जगह रहते हुए भी प्रूफ संशोधक बाईं ओरके हाशिये पर चिन्ह न बनाकर सुविधानुसार दाहिनो ही ओर चिन्ह बनाता है। इसमें कोई आपत्ति नहीं परन्तु यह नहीं हो सकता

कि पहिले दाहिनी ओर चिन्ह बनाना शुरू करके स्थानाभाव होने पर बाईं ओर बनाना शुरू कर दें। क्यों कि कम्पोजिटर जो संशोधन करेगा वह बाईं ओर से और बाईं ओर के हाशिये सेचिह्न मिला कर ही शुरू करेगा; या यदि बाईं ओरके हाशिये पर कुछ न हुआ तो दाहिनी ओर के हाशिये की बाईं ओर से—चिन्ह मिला मिला कर मजमूनके निशानोंको जगह पर संशोधन करता जायगा। इस प्रकार संशोधक के प्रथम संशोधन स्थल की जगह अंतिम संशोधन होगा और अन्यान्य संशोधन-स्थलों में भी भयंकर बेतरतीबी होगी। नियम बाईं ओर के हाशिये से शुरू करके क्रमशः दाहनी ओर को बढ़ते हुए चले जाने का ही है। यदि इस नियम के विपरीत कुछ करना आवश्यक हो तो मजमून के संधोनस्थान से संशोधक चिह्न पर्यन्त एक लकीर खींचने की जरूरत होती है। इस से किसी के भ्रम की गुंजाइश नहीं रहती। हाशिये के प्रत्येक संशोधन "चिन्ह के बाद।" इस प्रकार को एक कुछ लम्बी सी पाई लगा देने की भी परिपाटी है। इससे प्रत्येक चिन्ह एक दूसरे से अलग दिखलायी पड़ता है। कभी कभी जब दोनों ओर के हाशिये चिह्नों से भर जाते हैं तब संशोधन स्थल से किसी कोरी जगह तक एक रेखा खींचकर संशोधक चिह्न बना दिया जाता है।

इन चिन्हों को और भी अधिक स्पष्ट करने के विचार से प्रूफ संशोधन का एक उदाहरण दे देना अनुचित न होगा—

प्रूफ संशोधन का रूप

इटालि० तुलसीदास और सूरदास की ~~कविता~~ रहने दो

बदलो के सम्बन्ध में जाता कहा है कि तुलसी ने ॐ

त ~~सबकी~~ अत्यन्त अधीन/भाव से राम की #

|—| वन्दना की/ जगह/जगह पर राम को ला |-|

③ घुसेड़ा/

|-| सूरदास का नायक/प्रेम मित्रता का ⑦

X प्रेम है और अच्छा है।✓ ~~किन्तु~~ यदि ॐ पाठक/

लाइनिकालो ——

w.f. तुलसी के नायक राम और सूर ⊂

के नायक कृष्ण की जीवनी पर दृष्टि =

डालें तो मालूम होगा कि जिस

बदलो कवि ने वर्णन/जिसरूपमें/जिसका

किया है वही ठीक है/ राम के साथ सूर ①

के कृष्ण का सा बरताव करना अ- लेड डालो

L eq# स्वाभाविक/ हो जाता L और कृष्ण L

के साथ राम का बरताव करना [राम का जीवन N.P.

जीवन/ कठिन व्रत और कृष्ण का/ मंगलोत्सव ॐ /

है।

भी उसी प्रकार अस्वा-

भाविक होता

प्रूफ का संशोधित रूप यह होगा :—

"तुलसीदास और सूरदास की कविता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि "तुलसीने अत्यन्त अधीन भावसे राम की वंदना की—जगह-जगह पर राम को ला घुसेड़ा; सूरदास का नायक-प्रेम मित्रत्व का प्रेम है, और अच्छा है।" परन्तु यदि तुलसी के नायक राम और सूर के नायक कृष्ण की जीवनी पर दृष्टि डालें, तो मालूम होगा कि जिस कवि ने जिसका जिस रूप में वर्णन किया है, वही ठीक है। राम के साथ सूर के कृष्ण का-सा बर्ताव करना अस्वाभाविक हो जाता, और कृष्ण के साथ राम का बरताव करना भी उसी प्रकार अस्वाभाविक होता।

राम का जीवन कठिन व्रत और कृष्ण का मंगलोत्सव है।"

इस परिपाटी के अतिरिक्त प्रूफ देखने की एक दूसरी परिपाटी भी है। अन्य भाषाओं में क्या प्रथा है, इसका निश्चित ज्ञान न होने के कारण उसका उल्लेख करना मेरे सामर्थ्य की बात नहीं; किन्तु हिन्दी में एक दूसरे ढंग से भी प्रूफ देखे जाते हैं। इस ढंग में इशारों में कोई अन्तर नहीं होता, किन्तु जो इशारा जहां से सम्बन्ध रखता है, उस इशारे से वहां तक सम्बन्ध दिखाने के विचार से एक लकीर खींच दी जाती है। उसी प्रकार की लकीर, जैसी उपर्युक्त उदाहरण में वाक्यांश बढ़ाने के लिए दिखायी गयी है। यह प्रथा संभवतः इसलिए चलन में आयी कि हिन्दी के कंपोज़ीटर अधिकांश में अशिक्षित होते हैं, और वे इशारों का सम्बन्ध समझने में ग़लती कर बैठते हैं। किंतु

यह प्रथा अच्छी नहीं, और अब इसकी आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती। कंपोज़ीटरों की अब कमी नहीं, इसलिए ऐसे कंपोजीटर प्राप्त किये जा सकते हैं, जो इशारों के समझने-भर का ज्ञान रखते हों। इस प्रथा से प्रूफ-कांपी गंदी हो जाती है। फिर भी उस समय, जब प्रूफ कॉपी ऐसे काग़ज़ पर दी जाती है, जिसमें हाशिया बहुत कम होता है, इसकी उपयोगिता अवश्य होती है। संकीर्ण हाशिये पर सब चिह्न बनाना असंभव होता है, और उस समय ऊपर-नीचे की ख़ाली जगह का आश्रय लेना पड़ता है। तब इस प्रकार लकीर खींचना ही आवश्यक होता है। किन्तु ऐसा करने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा होता है कि पहले ही से लम्बे-चौड़े काग़ज़ पर प्रूफ की कांपियां ली जायँ; और यदि प्रूफ लम्बे-चौड़े काग़ज़ पर और साफ छपा हुआ न हो, तो प्रूफ-संशोधक को चाहिए कि उसे वापस करके दूसरा अच्छा प्रूफ मँगावे। अच्छे और साफ प्रूफ में अधिक सरलता और शुद्धता के साथ संशोधन किया जा सकता है।

समाचार सम्पादन

—:※:—

समाचारों का सम्पादन करना समाचारपत्रों का प्रमुख कार्य है। वास्तव में समाचार ही समाचारपत्र के प्राण हैं। और इस समय तो जब कि जनता की रुचि अधिकांश में संपादकीय लेख और अन्य विशेष लेखों से हटकर समाचार पढ़ने की ओर अधिक प्रवृत्त हो रही है, समाचार सम्पादन और भी अधिक महत्व रखता है। विदेशों में खास तौर से अमेरिका में इस विषय को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। समाचार प्राप्त करने के लिए न जाने कितनी-कितनी आपत्तियां और कठिनाइयां उठानी पड़ती है। अमेरिका की दशा तो यह है कि कभी-कभी वहां पर समाचार गढ़े तक जाते हैं। यह सब किस लिए होता है? इस का प्रधान कारण यह है कि वहाँ के पत्र संचालक जनता की रुचि पहचानते है और उसके अनुसार अपने पत्रों को अधिक उपयोगी और आकर्षक बनाने का प्रयत्न करते हैं। हालत यह है कि इस समय लोग संपादकीय लेख पढ़ने की ओर कम ध्यान देते हैं। साधारण धारणा कुछ ऐसी हो गयी है कि लेखों में किसी समाचार पर सम्पादकीय विचार के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता, प्रत्येक मनुष्य को स्वतंत्र रूपसे विचार करने का अधिकार है, प्रत्येक मनुष्य ऐसा कर सकता है, फिर दूसरे के विचार पढ़ने में व्यर्थ समय नष्ट करने को क्या आवश्यकता,

समाचार पढ़ लिये, बस काफी है, उन पर विचार हम अपने आप कर लेंगे आदि। इन धारणाओं के कारण पाठकों की प्रवृत्ति सम्पादकीय लेखों से उठकर समाचारों पर लगी है। यह हाल तो विदेशों का है। भारतवर्ष में और खासकर हिन्दी संसार में इस दशा में थोड़ा सा अन्तर है। यह तो यहां के लिए भी सत्य ही है कि लोग लेखों की अपेक्षा समाचार अधिक पढ़ते हैं, किंतु यहां ऐसा करने का वह कारण नहीं, जो विदेशों में है। यहां के किसो विशेष समुदाय में चाहे वह कारण हो भी किन्तु आमतौर से जन साधारण में नहीं है। यहां तो इसका कारण शिक्षा का अभाव है। लेख प्रायः समाचारों से बड़े होते हैं। जनता में शिक्षा का इतना अभाव है कि बड़े-बड़े मजमून-फिर चाहे वे समाचार के ही क्यों न हों देखकर पहिले वे घबड़ा जरूर उठते हैं। एक-एक अक्षर पढ़ने में जहां एक-एक मिनट लगता हो वहां इतना बड़ा लेख कौन पढ़े? दूसरी एक बात यह भी है कि प्रायः लेख का विषय समाचारों की अपेक्षा कुछ अधिक गहन होता है जिसके समझने की भी अधिकांश जनता में शक्ति नहीं होती। इन कारणों से हिन्दी जनता की रुचि लेखों से उठकर समाचार पढ़ने की ओर अधिक आकृष्ट हुई है। अस्तु।

इन कारणों की छान-बीन करने की आवश्यकता नहीं। प्रतिपाद्य विषय तो केवल यह है कि किसी भी कारण से हो जनता की रुचि समाचार पढ़ने की ओर अधिक प्रवृत्त हैं और इसलिए समाचार-सम्पादन का विषय बड़ा महत्व रखता है।

समाचारों की महत्ता और जनता का उसकी ओर झुकाव देखकर यह बात सरलता पूर्वक समझ में आ जायगी कि समाचारों का सम्पादन करनेवाले पर कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। आजकल समाचारों से वह काम लिया जाने लगा है जो कुछ दिन पहिले संपादकीय लेखों से लिया जाता था। जनता की विचारधारा को मोड़ देने के लिए जहां पहिले लम्बे-लम्बे लेख लिखे जाते थे वहां अब छोटे-छोटे समाचारों से काम लिया जाता है। ऐसे ढंगसे ऐसी भाषा में समाचार लिखे जाते हैं जिनका लिख देना ही एक प्रकार से संपादकीय लेख हो जाता है। कहने का मतलब यह है कि संपादक लेखों द्वारा जिस भाव को जनता में फैलाया करता था वे भाव आजकल समाचारों के लिखने के ढंग से फैलाये जाते हैं। अब विद्वानों की यह धारणा हो गयी है कि लेखों को अपेक्षा समाचारों द्वारा प्रचार कार्य अधिक प्रभावशाली और व्यापक हो सकता है। इन सब धारणाओं और परिस्थितियों ने समाचार संपादन के कार्य को बहुत अधिक उत्तरदायित्व-पूर्ण बना दिया है। समाचार संपादक को बहुत अधिक ईमानदार, सच्चरित्र, बुद्धिमान, और मनोविज्ञान का ज्ञाता होना चाहिए। उसे जो कुछ लिखना चाहिए वह सफाई और सच्चाई के साथ लिखना चाहिए और इस बातको ध्यान में रखते हुए भी ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे जनता की रुचि की तृप्ति हो और उसका हित साधन भी हो। अपने पापी पेट को भरने के लिए जनता के हिताहित का विचार छोड़कर दुरा-

चार मूलक अश्लील और गन्दे समाचार न देना चाहिए।

समाचार किसको कहते हैं यह एक इतनी सीधी सी बात है कि इसके लिए कुछ लिखने की आवश्यकता न थी। रेलवे दुर्घटना, हत्याकाण्ड, अग्निकाण्ड, सभा-समितियां, राज्याभिषेक, जलूस आदि अनेक घटनाएँ समाचार कही जाती हैं। यह सर्व विदित है। फिर भी इसके देने की इसलिए आवश्यकता हुई कि कुछ विद्वान ने इसकी परिभाषा बड़े विचित्र ढंग से की है और उनकी परिभाषा से कुछ नवीन बातें भी समाचार शब्द की परिधि में समाविष्ट हो गयी हैं। यहां पर और कुछ न लिखकर मि० लाइल स्पेन्सर की व्याख्या ज्यों की त्यों दीजाती है। In its final analysis news may be defined as any accurate fact or idea that will interest a large number of readers; and of two stories the accurate one that interests the greater number of people is the better. Strangeness, abnormality, unexpectedness, nearness of the events, all add to the interest of a story, but none is essential. Even timelyness is not a prerequisite. Freshness, enormity, departure from the normal, all are good and add to the value of news but they are not essential. Only requirements are that the story shall be accurate and shall contain facts or ideas interesting to a considerable number of readers." इसका भावार्थ यह है :—

अंतिम छानबीन करने पर समाचार की परिभाषा इस प्रकार की जायगी कि कोई भी ठीक घटना या भाव जो बहु-संख्यक पाठकों का मनोरंजन कर सके समाचार कहा जायगा ; दो कहानियों में से वह कहानी जो ठीक हो और बहु-संख्यक पाठकों के लिए मनोरञ्जक सिद्ध हो अधिक अच्छी मानी जायगी। विचित्रता, असाधारणता, संभ्रम, घटना-नैकट्य, आदि बातें कहानी को रोचक बनाने में सहायक अवश्य होती हैं किन्तु ये उसका आवश्यक अंग नहीं है। यहां तक कि सामयिकता भी अनिवार्यतः आवश्यक नहीं है। नवीनता, घोरता, भावातिरेक आदि सब अच्छी बातें हैं। इनसे समाचार का महत्व बढ़ जाता है किन्तु ये भी आवश्यक नहीं है। जो कुछ आवश्यक है वह यह है कि कहानी ठीक हो और उसमें ऐसी घटना और ऐसे विचारों का समावेश हो जो काफी बड़ी संख्या में पाठकों का मनोरंजन कर सकें।

इस सम्बन्ध में, एक बात और है। वह यह कि प्राकृतिक गति विधि से साधारणतया जो घटनाएँ रोज-रोज घटा करती हैं वे समाचर नहीं होती। उदाहरणार्थ जैसे हाथी को देखकर कोई कुत्ता भूकने लगे तो समाचार पत्रों के लिए यह कोई समाचार न हो जायगा कि फलां हाथी को देखकर फलां कुत्ता भूकने लगा। इसका कारण यह है कि रोजमर्रा होनेवाली यह एक ऐसी साधारण बात है कि इसमें 'कोई विशेषता नहीं' है। किंतु यदि दैवात् ऐसा हो कि किसी विशेष कुत्ते को देखकर कोई हाथी चिघ्घाड़ उठे तो अवश्य यह समाचार का विषय हो

जायगा। इसलिए समाचार पत्रों के समाचारों का विषय ऐसा होना चाहिए जो कुछ विशेषता लिये हो।

ऊपर की परिभाषाओं से तीन बातें स्पष्ट हो जाती है। एक तो यह कि समाचार सच्चे और ठीक हों दूसरे वे मनोरंजक हों और तीसरे उनमें कुछ विशेषता भी हो। समाचार पत्रों में समाचार संकलन करते समय इन बातों पर आवश्यक ध्यान दिया जाना चाहिए। समाचार-सम्पादक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि संसार में सब प्रकार के मनुष्य रहते हैं, किसी को एक विषय पसन्द आता है किसी को दूसरा, इस लिए समाचार संकलन में विभिन्नता और विविधता अवश्य हो। जितने अधिक प्रकार की प्रकृति वाले मनुष्यों की तृप्ति की जायगी उतना ही अधिक अच्छा होगा। किन्तु इस प्रयत्न में इतना आगे भी न बढ़ जाना चाहिए जिस से भार संभालना भी कठिन हो जाय। किसी काम को शुरू करके पूरा किये बिना छोड़ देने की अपेक्षा न करना अधिक अच्छा होता है। इस लिए अपनी शक्ति का अन्दाजा करके ही पैर फैलाने चाहिए जिस में जिन जिन विषयों का समावेश समाचार संकलन में कर लिया जाय उन उन विषयों पर बराबर समाचार निकलते रहें।

समाचार संकलन और सम्पादन का काम प्रधान सम्पादकीय काम से भिन्न है। यह काम अधिकांश में उपसम्पादक द्वारा सम्पादित होता है। इस में जनता की रुचि के अतिरिक्त और भी

कई बातों का ख्याल रखना पड़ता है। अच्छे पत्र के लिए अपने समाचारों को ऐसा बनाने का प्रयत्न करना जो समाज के पूर्ण प्रतिबिम्ब हों, बहुत आवश्यक है। प्रथम सम्पादक सम्मेलन के सभापतिकी हैसियतसे श्री० बाबूराव विष्णु पराड़करने समाचारों का आदर्श बताते हुए दो बातें बड़े मार्के की कही थीं। एक तो यह कि समाचार पत्र अपने समाज के प्रतिबम्ब हों और दूसरे वे सच्चे उपदेशक हों। ऊपर कहा जा चुका है कि अब समय वह आ गया है जब जनता को जाग्रत करने में लेखों की अपेक्षा समाचारों का हाथ अधिक रहता है, इस लिए उपर्युक्त दोनों बातें समाचारों द्वारा प्रतिपादित होनी चाहिए। जनता का आकर्षण करना समाचार सम्पादक का खास उद्देश्य होना चाहिए। इसके लिए आकर्षक शीर्षक सब से अच्छा साधन हैं। किन्तु शीर्षक देने का काम आसान भी नहीं है। आज कल ऐसी प्रवृत्ति हो चली है कि आकर्षक बनाने की धुन में लोग अनर्गल बातें लिख जाते है। अनावश्यक भावोत्तेजना पैदा करने, तिलका ताड़ बनाने के लिए ऐसे संपादक गण सदा तैयार रहते हैं। यह प्रवृत्ति अननुमोदनीय है। इसको रुकना चाहिए। शीर्षक आकर्षक अवश्य हो किन्तु साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रहे कि उनमें अनावश्यक अनर्गलता न आने पावे। वह आकर्षक शब्दों में लिखा हुआ, यथा सम्भव छोटा और ऐसा होना चाहिए जिस से शीर्षक पढ़ते ही समाचार के विषय की तमाम बात समझ में आ जाय।इस से पाठकों को यह सुविधा रहेगी कि जो समाचार

उनकी रुचिका और हित का होगा उसे पढ़ेंगे अन्य समाचारों को पढ़ने में व्यर्थ का समय न नष्ट करेंगे। ऐसा न होना चाहिए कि मजमून तो कुछ और शीर्षक कुछ हो। एक उदाहरण देकर इस विषय को अधिक स्पष्ट कर देना अनावश्यक न होगा। उस दिन एक समाचार पत्र पढ़ रहा था। एक समाचार पर दृष्टि पड़ी। शीर्षक था 'सरोजिनी को भगा ले गया।' सरोजनी नाम पढ़ते ही श्रीमती सरोजिनीनायडू का बोध होना स्वाभाविक था। बड़ी उत्सुकता हुई कि उन्हें कौन भगा ले गया। मजमून पढ़ा तो मालूम हुआ कि सरोजिनी नामक एक धोबिन को कोई भगा लेगया था। अब इस प्रकार के शीर्षक यद्यपि समाचार के विचार से अशुद्ध नहीं है। और आकर्षक भी हैं। तथापि अनर्गल अवश्य है। इससे पढ़ने वाले का जिसने सरोजिनी के धोखे में आकर समाचार पढ़ा समय व्यर्थ ही नष्ट होता है इस प्रकार के शीर्षक देना एक प्रकार की धोखे बाजी है। समाचार सम्पादक को सच्चा और ईमानदार होना चाहिए। ऐसे अवसरों पर सरोजिनीका नाम न लिख कर-क्योंकि नाम उसी समय लिखा जाता है जब वह काफी प्रसिद्ध होता है—यह लिखा जाना चाहिए कि 'धोबिन को भगा लेगया' या 'एक स्त्री को भगा लेगया' आदि।

सामान्य रूप से शीर्षकों में कोई विराम चिन्ह नहीं होते। किन्तु यदि कोई आश्चर्य कारक या शोक जनक सन्देह सूचक या प्रश्नद्योतक शीर्षक हो तो उसमें आश्चर्य चिन्ह प्रश्न चिन्ह आदि अवश्य लगा दिये जाते हैं। साधारण अवसरों पर

यही नियम बरता जाता है। शायद इसका कारण यह है कि शीर्षक में व्याकरण की दृष्टि से कोई वाक्य पूरा नहीं होता। इसी लिए विराम चिन्ह नहीं लगाये जाते। शीर्षक में जो कुछ लिखा जाता है वह प्रायः इस प्रकार का होता है कि 'तहसीलदार की नादिरशाही' 'पुलिस का जुल्म' 'मा० गांधी का भारत भ्रमण' 'जलियाँ वालामें हत्या कांड,' 'कानपुर में भयंकर दंगा'आदि। ऐसे वाक्यांशोंमें कोई विराम चिन्ह कैसे लगाया जा सकता हैं। किन्तु उन अवसरों पर भी जहां शीर्षक व्याकरण की दृष्टि से पूरा वाक्य होते हैं, बिराम चिन्ह नहीं लगाया जाता। यह प्रथा सर्वथा अनु-मोदनीय नहीं कही जा सकती। ऐसे अवसरों पर शीर्षक में विराम चिन्ह लगा देना भी अनुचित न होना चाहिए।

शीर्षक दो प्रकार के होते हैं। एक प्रधान शीर्षक दूसरे अन्त-शीर्षक प्रधान शीर्षक मेटर में सबसे ऊपर लिखे जाते हैं। इनके सम्बन्ध में कोई खास उल्लेखनीय बात नहीं है। साधारण ढंग से, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है, ये शीर्षक लिख दिये जाते हैं परन्तु अन्तशीर्षक के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें हैं। ये शीर्षक बड़े मजमूनों ही में लिख जाते हैं। कभी कभी विशेष महत्व पूर्ण छोटे मजमूनों में भी उनका प्रयोग होता है। अन्त शीर्षक दो प्रकार से लिखे जाते हैं। कभी वे कालम के बीच में लिखे जाते हैं और कभी कभी कालम के बाँये किनारे। इसके लिखने के दो प्रकार और भी होते हैं। कभी कभी अन्त शीर्षक बिलकुल अलग से बनाकर रखा जाता है। वह किसी

वाक्य के साथ सम्बन्धित नहीं होता और कभी कभी मजमून के अन्दर वाक्यों के सिलसिले में ही कुछ विशेष शब्द एक लाइन में, शीर्षक की तरह मोटे टाइप में रखकर फिर दूसरी लाइन से अधूरा वाक्य शुरू किया जाता है और इस प्रकार एक लाइन का वह शब्द समूह अन्तर्शीर्षक बना दिया जाता है। जैसे "इसके बाद

रिजर्व बैंक बिल"

पर बहस शुरू हुई। "इसमें रिजर्व बैंक बिल" शीर्षक भी होगया और उसका वाक्य से सम्बन्ध भी कायम रहा। पहिले में यह बात न होती। उस दशामें तो, 'रिजर्व बैंक बिल' यह शीर्षक देकर उसके नीचे शुरू से इस प्रकार मजमून लिखा जाता :—"उस दिन रिजर्व बैंक बिलपर खूब बहस हुई।" या और कोई ऐसीही इबारत शुरू की जाती।

यदि समाचार पर शीर्षक न देना हो तो उसका प्रारम्भ की एक दो पंक्तियाँ ऐसी होनी चाहिए जिस से समाचार का पूरा पूरा अन्दाजा हो जाय। इसमें भी पाठकों के परिश्रम और समय की बचत का वही भाव काम करता है जो ऊपर दिखलाया गया है।

शीर्षक के बाद खास समाचार का नम्बर आता है। समाचार संकलन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जनता सनसनी खेज समाचारों को अधिक पसन्द करती है, विद्वता पूर्ण भाषणों को नहीं। इसलिए पहिले प्रकार के समाचारों को अधिकता पत्र को लोक प्रियता के लिए आवश्यक है। किन्तु ऊपर जिस मानव-प्रकृति-विभिन्नता का उल्लेख किया गया हैं उसका ख्याल रखना भी आवश्यक है। इसलिए सब प्रकार के समाचार दिये जाने

चाहिए। हां, यह अवश्य हो कि जिस प्रकार के समाचार अधिक पसन्द किये जायं उनका अनुपात औरों की अपेक्षा अधिक हो। जो समाचार अधिक मनोरंजक और विनोद पूर्ण हों, उनका वर्णन कुछ अधिक विस्तार के साथ करना चाहिए। इस प्रकार पाठकों की उत्सुकता अधिक तृप्त होगी और वे पत्र का अधिक प्यार करगे। साधारणतया अपेक्षाकृत किंचित् अधिक बुद्धि से काम लेने पर ये सब बातें अपने आप समझ में आ जाती हैं। यदि समाचार सम्पादक थोड़ा सा सतर्क सावधान और जागरूक रहे तो इस प्रकार की बातें अपने आप उसे सूझती रहेंगी। इन बातों का एकत्र वर्णन करना कठिन है। ये तो प्रसंग और अभ्यास से स्वयं ज्ञात होने की ही बातें हैं।

समाचारों में ताजापन दिखाने का प्रयत्न सदा रखना चाहिए। समाचार पत्र की प्रतिष्ठा इस बात पर भी निर्भर होती है कि वह ताजेसे ताजे समाचार देता है। इसलिए यह आवश्यक है कि समाचारों की ताजगी का प्रदर्शन अवश्य हो। इस के लिए किसी घटना का समाचार देते समय उस के समय का वर्णन पहिले ही करना चाहिए। यदि दूसरे ही दिन समाचार पत्र प्रकाशित होने जा रहा हो तो तारीख और दिन न देकर 'कल' लिखना चाहिए। इससे समाचार की ताजगी साबित होगी। समाचारों की भाषा सरल और सुबोध और उनका मजमून छोटा तथा रोचक होना चाहिए। छोटे छोटे और रोचक पैराग्राफों में लिखे हुए समाचार जनता बड़े चाव से पढ़ती है। इसलिए इस

बातका ध्यान रखना आवश्यक है। जहांपर घटना अधिक विस्तृत हो वहां भी यथा सम्भव छोटे छोटे टुकड़े करके और उनके अलग अलग शीर्षक देकर समाचार को छोटा बना देना चाहिए। एक बात की ओर ध्यान देने की और भी आवश्यकता है। वह यह कि समाचारों का मजमून इतना स्पष्ट हो कि सब कोई सरलता पूर्वक समाचार समझ सके। लिखते समय समाचार सम्पादक को कुछ इस प्रकार के भाव से काम लेना चाहिए कि वह ऐसे पाठकों के लिए लिख रहा है जो उस समाचार के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते और उसे वह समाचार उन्हें समझाना है। समाचारों के साथ अपने विचार प्रकट करने न करने के सम्बन्ध में दो मत हैं। एक समुदाय का कहना है कि समाचार अपने असली रूप में बिना किसी टीका टिप्पणी के प्रकाशित होने चाहिए और दूसरा समुदाय सटिप्पण समाचारों के पक्ष का है। मेरी समझ से पहिला ढंग अच्छा है। समाचार अपने वास्तविक रूप में बिना किसी प्रकार के अतिरंजन के दिये जायं और पाठक अपने आप उनके सम्बन्ध में अपना निर्णय करें। और साफ बात तो यह है कि जब सम्पादकीय स्तम्भों में सम्पादक को अपने विचार प्रकट करने का अवसर रहता ही है तो फिर प्रत्येक समाचार के साथ ख्वामख्वाह अपने विचारों का पुछल्ला जोड़ने की क्या जरूरत ?

इन बातों के अतिरिक्त कुछ छोटी छोटी अन्य बातों पर भी ध्यान रखने की जरूरत है। एक विषय के सब समाचार साथ ही

हों यह न हो कि एक ही विषय के समाचार का एक टुकड़ा एक स्थान पर और दूसरा दूसरे तथा तीसरा और किसी स्थान पर पटक दिया जाय। विशेष नामों के सम्बन्ध में पहिले पहिल उनका प्रयोग करते ही वर्ण विन्यास (Spellings) का निर्णय कर लेना चाहिए और फिर जब कभी उस नाम के प्रयोग की आवश्यकता पड़ते तब बराबर उसी के अनुसार लिखना चाहिए। यह नहीं कि प्रसिद्ध विवाह कानून के विधाता श्री सारडा कभी शारदा कहे जायं और कभी सारडा। चाहे वे सारडा रहें चाहे शारदा लेकिन रहें एक ही दोनों नहीं। एक ही पत्र में इस प्रकार की विभिन्नता खटकती है।

समाचार यदि श्रेणियों में विभाजित किये जांय तो स्थूल रूप से वे तीन श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं:—घटना सम्बन्धी, अदालती और संस्था सम्बन्धी। इनमें प्रथम श्रेणी के समाचार अधिकता से पाये जाते हैं। आग लग जाना, गोलियां चल जाना, रेलों का लड़ जाना, हड़तालों का होना, उत्सवों का मनाया जाना, नयी इमारतों का बनाना, नयी संस्थाओं का स्थापित होना, प्रदर्शिनियां खुलना आदि अनेक प्रकार के समाचार इस श्रेणी में आजाते हैं। खेल कूद घुड़ दौड़ आदि को भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत माना जा सकता है। इनमें कत्ल रेलवे दुर्घटनायें दंगे, आदि के समाचार अधिक आकर्षक होते हैं। घटना सम्बन्धी समाचारों को देते समय इन विषयों के समाचार अधिक विस्तार के साथ देना चाहिए। इन विषयों में भी कत्ल के समाचार बहुत

अधिक आकर्षक होते हैं। ये समाचार उत्तेजक भी होते हैं। अमेरिका में कत्ल के समाचार बहुत ही अधिक बना कर छापे जाते हैं। इसकी इतनी अधिकता है कि वहां कत्ल सम्बन्धी या कत्ल के मामलों सम्बन्धी समाचारों के लिए एक कानून बना दिया गया हैं। इसके अनुसार ऐसे समाचारों का शीर्षक एक निश्चित आकार के टाइप से बड़े आकार में नहीं दिया जा सकता और न चौड़ाई में ही एक कालम से अधिक हो सकता है। इस नियम की पाबन्दी के लिए कानून में यह भी कह दिया गया है कि यदि कोई पत्र सम्पादक इस नियम का उल्लंघन करेगा तो उसे २०० पौंड तक जुर्माना किया जायगा या कैदकी सजा दी जायगी या दोनों प्रकार की सजायें दी जायंगी। समय के महत्व के सम्बन्ध में ऊपर कहा ही जा चुका है। उसी महत्व को दृष्टि में रखते हुए समाचारों को लिखते समय समय, का उल्लेख सबसे पहिले करना चाहिए। समय के बाद वह व्यक्ति या वे व्यक्ति जिन से घटना विशेष का सम्बन्ध हो, फिर घटना क्रम, तत्पश्चात् परिस्थिति इसके बाद घटनाके कारण और अंतमें परिणाम का उल्लेख किया जाना चाहिए। साधारण व्यवहार में सम्पादन की यही रीति अधिक अच्छी मानी जाती है। इसके अतिरिक्त विशेष स्थलों के लिए समाचार का सम्पादन किस प्रकार किया जाना चाहिए यह बहुत कुछ उपसम्पादक की साधारण बुद्धि पर निर्भर रहता हैं।

दूसरी श्रेणी के-अदालती समाचारों का सम्पादन जिम्मेदारी के विचार से बहुत महत्व-पूर्ण है। उस संबंध के समाचारों में

बहुत सावधानी, समझदारी और जिम्मेदारी से काम लेने की जरूरत होती है। जहां तक हो सके किसी मामले का वर्णन करते समय पूरी-पूरी कार्यवाही को देने का प्रयत्न करना चाहिए। संक्षेप करने में इस बात का बहुत ख्याल रखना चाहिए कि किसी पक्ष की कम और किसी पक्ष को अधिक बातें केवल संक्षेप करने के दोष से न हो जायँ। विचाराधीन मामलों में और भी अधिक सावधानी की जरूरत पड़ती है। अपने समाचारों में विशेष रूपसे यह देखना चाहिए कि ऐसे मामलों का वर्णन करते समय किसी पार्टी के किसी आक्षेप का ऐसा वर्णन न हो जाय जिससे यह साबित हो कि संपादक स्वयं उस बात पर विश्वास करता है। ऐसे अवसरों को बचाने के लिए अधिकांश में आरोपों और अभियोगों के सम्बन्ध में संपादकों को 'सुना जाता है', 'कहा जाता है', 'कहते हैं' आदि सन्देह सूचक वाक्यांशों का प्रयोग करना अच्छा होता है। यह नीति अदालती मामलों के अलावा अन्य ऐसे मामलों में भी वरती जानी चाहिए जिसमें किसी पर किसी प्रकार का आक्षेप होता हो और जिसके लिए संपादक को स्वयं निश्चित रूप से कोई बात मालूम न हो। एक अदालत में फैसला हो जाने के बाद भी और उस अदालत द्वारा किसी आरोप या अभियोग को सच मान लिए जाने पर भी संपादक उस समय तक अभियुक्त पर निश्चित रूपसे उन आरोपों को नहीं लगा सकता जब तक कि अपील की मियाद बाकी रहती हो। दौरान मुकदमा में अभियुक्त को अपराधी लिखना भी अनुचित

है क्यों कि इससे यह ध्वनि निकलती है कि संपादक उसे उस विशेष अपराध का दोषी मान चुका। इस के अतिरिक्त एक बात का ध्यान और भी रखना चाहिए। वह यह कि जिस मामले का समाचार देना शुरू किया जाय उसको कार्यवाही बीच में न छोड़ दी जाय। अंत तक उसकी कार्यवाही बराबर दी जानी चाहिए। अधूरी कार्यवाही देने से इस बात की सदा आशंका रहती है कि किसी दल की बहुत सी बातें छूट जायं और उस दशा में जनता के पास अदालत के फैसले का जो समाचार पहुंचे उससे जनता सन्तुष्ट न होकर अदालत पर आक्षेप करे।

अब रही तीसरी श्रेणी के समाचारों की बात। इसमें सभा-समितियां; कांग्रेस कान्फरेन्सों के अधिवेशन, व्यवस्था परिषदों की कार्यवाहियां आदि के समाचार समाविष्ट हैं। इनके संबन्ध का वर्णन करते समय इन बातों का उल्लेख करना आवश्यक होता है :—किस स्थान पर सभा हुई; जन-समूह कितना था, सभापति कौन था, उपस्थित सज्जनों में प्रतिष्ठित व्यक्ति कौन-कौन थे, किस प्रकार सभा का प्रारम्भ हुआ, कहां-कहां से सहानुभूति सूचक पत्र तार आदि आये, वक्ता कौन-कौन थे, क्या प्रस्ताव पास हुए, कहां-कहां पर जनता ने विरोध किया और कहां-कहां पर वह सहमत हुई और बीच में या अंत में क्या विशेष घटना घटी। जिस क्रमसे इन बातों का यहां उल्लेख किया गया है प्रायः यही क्रम समाचारों के वर्णन करने में मान्य भी है। धारा सभाएँ और कांग्रेस तथा विशेष कान्फरेन्सों के अधिवेशनों

का वर्णन इन साधारण सभाओं की वर्णन शैली से कुछ विभिन्नता रखता है। उनके वर्णन की दो रीतियां हैं। एक तो यह कि रोज-रोज की कार्यवाही जिस रूप में हुई उसका तारीखवार वर्णन दे दिया जाय। दैनिक समाचार पत्रों के लिए यही रीति उपयोगी और सम्भव होती है। दूसरी रीति यह है कि विषय के क्रम से कार्यवाही का वर्णन दिया जाय। अर्थात् अमुक विषय में किस दिन क्या हुआ इसका अंत तक वर्णन देकर दूसरा विषय उठाया जाय और उसके पूरा करनेके बाद तीसरा, फिर चौथा इस प्रकार वर्णन दिया जाय। ये रीतियां उन घटना संबन्धी समाचारों के लिए भी लागू होती हैं जो कई दिन तक घटती रहती हैं। उनके वर्णन में भी दैनिक क्रम और विषय क्रम जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, दोनों रीतियों से काम लिया जा सकता है। इनका वर्णन करते समय प्रधान शीर्षक के अतिरिक्त उप शीर्षक भी देना आवश्यक होता है। इससे पाठकों को यह सुविधा रहेगी कि जो पाठक जिस विषय को पसन्द करेगा वह उस विषय के शीर्षक के नीचे अपनी पसन्द का समाचार पढ़ लेगा। सभा-समितियों के वर्णन को रोचक बनाने और उसको समझाने का प्रयत्न हिन्दी समाचार पत्रों के संपादकों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस के लिए पिछले अधिवेशन के उल्लेख (Refference) की आवश्यकता हो तो उसको भी दे देना चाहिए। हिन्दी जनता में अभी शिक्षा का इतना प्रचार नहीं है कि वह स्वयं इन बातों से दिलचस्पी ले और इन्हें समझ सके।

अभी तो उसमें इस रुचि को पैदा करने और समझने की शक्ति उत्पन्न करने की आवश्यकता है। जनता को अधिक सुविधा देने के विचार से बड़े-बड़े समाचारों, लम्बी-चौड़ी कार्यवाहियों के ऊपर किञ्चित् मोटे टाइप में साफ-साफ कार्यवाही का संक्षिप्त किन्तु ऐसा विवरण दे देना बड़ा उपयोगी होता है जिसमें कार्यवाही की प्रायः सभी खास-खास बातें आ जायँ।

समाचारों का एक चौथा भेद भी हो सकता है। वह है नाटक, थियेटर, सिनेमा, सर्कस आदि मनोरंजन संबन्धी समाचारों का। किन्तु इन समाचारों को समाचार की अपेक्षा आलोचना का विषय समझना अधिक अच्छा होगा। इनका उल्लेख आलोचनान्तर्गत ही होना चाहिए।

समाचारों के संबन्ध में—सब प्रकार के समाचारों के संबंध में—यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि कोई समाचार ऐसा हो जो एक अंक में समाप्त न होता हो और यदि वह एकबार प्रकाशित कर दिया गया हो तो जब तक वह विषय समाप्त न हो तब तक उसे बराबर प्रकाशित करते रहना चाहिए अन्यथा पाठकों की तद्विषयक जिज्ञासा जन्य बेचैनी तृप्ति नहीं पाती। जहां पर, बड़ा होने के कारण कोई समाचार, समाचार पत्र के एक ही अंक के किसी एक पन्ने में समाप्त न होता हो और उस का कुछ बचा हुआ भाग दूसरे पन्ने में ले जाना हो वहांपर पहिले पन्ने में मजमून के नीचे "शेष अमुक पृष्ठ पर देखिए" और दूसरे पन्ने में मजमून के ऊपर "अमुक पन्ने से आगे" इस प्रकार के

वाक्यांश अवश्य लिख देना चाहिए। इससे पत्र पढ़नेवालों को सुविधा होगी। जहां पर एक कालम की बचत दूसरे कालम के नीचे दी गयी हो वहां भी इसी प्रकार के वाक्यांश दे देने चाहिए।

समाचार संग्रह करने के लिए विदेशों में तो नानाविध साधन है। अपने तार, अपने टेलीफोन, अपने जहाज, अपने हवाई जहाज, अपनी मोटरें, आदि न जाने क्या-क्या साधन समाचार संग्रह करने के लिए रहते है। किन्तु भारतवर्ष में यह बात नहीं है। यहां तो समाचार संग्रह के साधनों के नाते अधिक-से-अधिक अपने रिपोर्टर अपने सम्वाददाता हैं जिनके लिए विदेशों की भांति सवारियों का खास प्रबन्ध भी नहीं होता; हां समाचार-समितियों से सहायता अवश्य ले ली जाती है। इससे बहुत थोड़े पत्रों में उनकी अपनी निजी कोई बात होती है। हिन्दी समाचार पत्रों की हालत इससे भी गयी बीती है। वहां तो अधिकांश में न रिपोर्टर होते हैं, न सम्वाददाता और न समाचार-समितियों से ही सहायता ली जाती है। जो कुछ होता है वह यह है कि अधिकांश में अङ्गरेज़ी पत्रों से और कभी-कभी दूसरे हिन्दी उर्दू या अन्य प्रांतीय भाषाओं के पत्रों से ही छांट छांट कर समाचार भर दिये जाते हैं। यह दशा केवल साप्ताहिक पत्रों की ही नहीं है, उनके लिए तो यह क्षम्य भी कही जा सकती है क्योंकि उनका पत्र सप्ताह भर बाद प्रकाशित होता है और उसमें समाचारों की ताजगी का सवाल कम होता है,

किन्तु दैनिक समाचार पत्र तक ऐसा करते हैं। अस्तु। इस स्थान पर इस रीतिकी टीका टिप्पणी करना अभीष्ट नहीं है। फिर भी जब कि इस रीति से काम होता ही हैं तब यह आवश्यक जान पड़ता है, कि इस संबन्ध में कुछ बातों का उल्लेख कर दिया जाय।

दूसरे समाचारपत्रों से जो समाचार लिये जाते हैं उनमें बहुत ही कम ऐसे अवसर आते हैं जब समाचार ज्यों-के-त्यों उद्धृत कर दिये जाते हों, अन्यथा आम तौर से होता यह है कि समाचार संक्षिप्त करके या कभी-कभी, यदि वे आवश्यक हुए तो, कुछ विस्तार देकर उद्धृत किये जाते हैं। इन दोनों सूरतों में यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रकाशित समाचार की कोई खास बात छूट न जाने पावे। जहां पर इस प्रकार समाचार संग्रह किया जाता हो वहां के उपसम्पादक को चाहिए कि पहिले ही से ज्योंही किसी समाचार पत्रमें कोई समाचार ऐसा नजर पड़े जिसका अपने पत्र में देना आवश्यक मालूम हो, त्यों ही उसे काट कर रख ले और जिस समय उसके देने की आवश्यकता हो उस समय घटा बढ़ाकर समाचार दे दे। इस प्रकार के काटे हुए समाचारों को एकत्र रखने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे समाचार विभिन्न विषयों के अनुसार अलग-अलग फाइलों में या ऐसी अलमारियों में जिनमें कई खाने हों विषयवार रखे जाने चाहिए। खास-खास समाचारों के सम्बन्ध में कई समाचार पत्रों के वर्णन, यदि उनके वर्णनों में कोई महत्व-पूर्ण अन्तर मालूम हो तो, काट कर रख लेने चाहिए और अपने

लिए इन सब काटे हुए वर्णनों के आधार पर एक सुन्दर सा वर्णन तैयार कर लेना चाहिए। जिस स्थान की घटना हो, अधिकांश में उसी स्थान के समाचार पत्रों से उसका वर्णन लेना अधिक अच्छा होता है।

साधारणतया तो समाचार इस लिए दिये जाते है कि जनता देश की या संसार की घटनाओं से परिचित हो; किन्तु कभी-कभी उनके देने का एक और भी कारण होता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई विशेष समाचार, लिखने में एक कालम से कुछ कम पड़ जाता है उस समय वह कालम पूरा करने के लिए भी समाचार दिये जाते हैं। इनका प्रधान उद्देश्य जनता को संसार की घटनाओं से परिचित करना नहीं होता प्रत्युत कालम पूरा करना होता है। बात यह है कि पहिले कालम का समाचार तो कालम से कम पड़ जाता है और दूसरे कालम में दिया जाने वाला समाचार कालम के प्रारम्भ से ही शुरू किया जाता है। कहा जा सकता है कि दूसरे समाचार को कालम के प्रारम्भ से न लिखकर उसी स्थान से क्यों न लिखा जाय जिस से पहिला समाचार समाप्त हुआ हैं। किंतु याद रखना चाहिए कि जैसे तैसे समाचारों का भर देना ही समाचार पत्रों का उद्देश्य नहीं होता। पत्र की सुन्दरता, सजावट और समाचारों को महत्ता के अनुरूप स्थान देने आदि पर भी सम्पादक को ध्यान रखना पड़ता है। कालम के नीचे से ही किसी समाचार को शुरू कर देने से उस की महत्ता कम हो जाती है। पत्र की सजावट में भी बाधा आती

हैं। इसी लिए यह आवश्यक होता है कि नया समाचार दूसरे कालम से शुरू किया जाय और पहिले कालम का बचा हुआ स्थान किसी अन्य समाचार से भर दिया जाय। इस प्रकार समाचार भरने की क्रिया को अंग्रेजी में 'मेक अप' (Make up) कहते हैं। हिंदी में इसे स्थान पूर्तिके नामसे पुकारा जा सकता है।

कभी कभी खास स्थान का कुछ अंश जान बूझ कर खाली रखा जाता हैं। इसको 'स्टाप प्रेस' कहते हैं। यह इस लिए खाली रखा जाता है कि पत्र के छपते छपते यदि कोई आवश्यक और महत्वपूर्ण समाचार आ जाय तो उसके लिए पत्र का मेटर निकालना न पड़े और उस खाली स्थान में वह समाचार भर दिया जाय। यह प्रथा मान चेष्टर के मि० मार्क स्मिथ नाम के एक सज्जन ने चलायी थी। इससे समाचार पत्रों के मुद्रण में बड़ी सुविधा होती हैं। ज्यों ही कोई नया समाचार आया झट कंपोज करके रिक्त स्थान पर रख दिया गया और छपना शुरू हो गया। नहीं तो समाचार आने पर पहिले उसके लिए स्थान खाली करना पड़ता है और फिर उस स्थान पर वह समाचार जमाना पड़ता हैं 'स्टाप प्रेस' में कभी कभी यह भी होता है कि कोई समाचार नहीं आते। उस दशा में या तो वह स्थान खाली ही पड़ा रहता हैं या यदि सम्पादक की इच्छा हुई तो दूसरे कोई समाचार भर दिये जाते हैं।

समाचार सम्बन्धी इन पंक्तियों को समाप्त करने के पहिले कुछ ऐसे समाचारों का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता

है जो वस्तव में सार्वजनिक नहीं होते और जिनका वर्णन समाचार पत्रों में बहुत संभाल कर–अधिकांश में उसी समय जब उन से सम्बन्ध रखने वाला कोई व्यक्ति या संस्था उन्हे प्रकाशित करें–देना चाहिए। बिना उन व्यक्तियों या संस्थाओं के प्रकाशित किये हुए भी वे प्रकाशित किये जा सकते है किंतु उस दशा में कोई बात निश्चित रूप से न कही जा सकेगी। सन्देह सूचक वाक्यों द्वारा उनका वर्णन किया जा सकेगा। वे समाचार साधारणतया ये है:—बन्द अदालत के मुकदमे (cases of camara) शेयर होल्डरों और पावने वालों (creditors) की सभाए, धर्मादा और ईश्वरोपासना के लिए चन्दा देने वालों तथा नेताओं की प्राइवेट बातचीत आदि। इनके अतिरिक्त अन्य ऐसे समाचार भी इसी श्रेणी में गिने जाने चाहिए जो प्रकृति से सार्वजनीन न हों।

पत्र-सम्पादन



पत्र-सम्पादन से यहां पर समाचार पत्र के संपादन से मतलब नहीं है। मतलब है समाचार पत्र के कार्यालय में आये हुए पत्रों के संपादन से। जहां समाचार पत्रों में दूसरे समाचार पत्रों के समाचार लिये जाते हैं, लेखकों द्वारा भेजे हुए लेखों का संग्रह और सम्पादन होता हैं, समाचार समितियों के तारों का उल्था होता है, अन्य प्रकार से आये हुए समाचारों का संपादन होता है वहां कार्यालय में आये हुए पत्रों का संपादन और संकलन भी होता है। ये पत्र समाचार पत्र की खास चीजों में से होते हैं। जिस समाचार पत्र में पत्रों को उचित स्थान नहीं मिलता उनके उन्नत होने की बहुत कम आशा समझनी चाहिए। समाचार पत्रों की उन्नति में पत्रों का बहुत बड़ा हाथ रहता है। अङ्गरेजी के विख्यात पत्र 'टाइम्स' की प्रतिष्ठा और उन्नति का मूल कारण यही बताया जाता है कि वह जनता द्वारा प्रेषित पत्रों को समुचित सम्मान के साथ प्रकाशित करता था। हिन्दी के 'प्रताप'की उन्नति में भी इन पत्रों का काफी हाथ है। सोवियट रूस में तो इसका एक संगठित प्रयोग (Experiment) सा हो रहा है। मास्को से क्रेस्टियान्स काया गजेटा(Krestyans kaya gazeta) किसान अखबार नाम का एक समाचार पत्र

निकलता है। वह पत्रों के द्वारा देहाती जनता के मनोभावों को प्रकट करने का विशेष रूपसे उद्योग करता है। थोड़े ही दिनों में इस काम में उसे अशातीत सफलता मिली है। पत्र हफ्ते में दो बार प्रकाशित होता है। इस के कार्यालय में दैनिक पत्रों की आमद किसानी की फसल के अनुसार कम ज्यादा हुआ करती है। फिर भी औसतन रोज कोई १५००से २००० पत्र इसके कार्यालय में आते हैं। इन पत्रों में अधिकांश में अधिकारियों की शिकायतें आदि लिखी होती हैं। पत्र के संचालक इन शिकायतों को रफा कराने के लिए केवल अपने समाचार पत्र में प्रकाशित करके ही नहीं छोड़ देते वरन अधिकारियों से लिखा पढ़ी करके हर प्रकार से शिकायतें रफा कराने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे पत्रों को जिनके लेखक अपना नाम देना नहीं चाहते और जिनमें मान हानिकारक बातें लिखी होती हैं, संपादक अपने कार्यालय में सुरक्षित रख लेते हैं और इसी आशय के और कई पत्र प्राप्त हो जाने पर कार्यवाही प्रारंभ कर देते हैं। इस प्रकार पत्र प्रेषकों का नाम न देनेपर भी और पत्रोंके मानहानिकारक होनेपर भी शिकायतें रफा करा दी जाती है। इस प्रकार की कोई १००० शिकायतें इस पत्र ने पिछले १ वर्ष में रफा करायी थीं। इससे समाचार पत्र इतना लोक प्रिय और प्रभावशाली बन गया है कि उसकी प्रत्येक बात बड़े ध्यान से सुनी जाती है।

ये पत्र दो प्रकारसे उन्नतिमें सहायक होते हैं। एक तो स्थान स्थान के पत्रों में तत्स्थानीय समाचारों द्वारा वहां के सामाजिक

रँग-ढँग का ढाँचा खिंच जाता है और दूसरे अपने पत्र प्रकाशित देखकर पत्र प्रेषक समाचार पत्र से स्वभावतः सहानुभूति करने लगते हैं। पहिले प्रकार से उन अध्ययन शील पाठकों की मनः तुष्टि होगी जो समाज की समस्याओं का अध्ययन करना चाहते हैं और दूसरे से स्वयं पत्र संचालकों को यह लाभ होगा कि पत्र प्रकाशन की उत्सुकता में पत्र प्रेषक उनके पत्र को पढ़ने के लालायित रहेंगे, उसे खरीदने और दूसरे मित्रों से खरीदवाने की कोशिश करेंगे। इस से एक लाभ और भी होगा। वह यह कि जनता में एक-एक को देखकर पत्र भेजने और प्रकाशित हो जाने पर उन्हें पढ़ने की रुचि पैदा होगी और इस प्रकार धीरे-धीरे समाचार पत्र पढ़ने की ओर उनका ध्यान आकृष्ट होगा। इन्हीं लाभों का अवलोकन कर अब चतुर संचालक और सम्पादक गण इस ओर अधिक ध्यान देने लगे हैं और कुछ लोग विज्ञापन तक दे दे कर पत्र मंगवाने का प्रयत्न करते हैं।

ये पत्र स्थूलरूप से दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो अपने सम्वाददाताओं द्वारा, आवश्यकतानुसार उन्हें इधर उधर भेजकर मंगाये जाते हैं और दूसरे वे जो बिना मंगाये इधर उधर के कुछ लोगों द्वारा भेजे जाते हैं। इन पत्रों में, जहां जहां से वे भेजे जाते हैं वहां वहां की नानाप्रकार की बातें रहती हैं। शोक सम्वाद, हर्षोत्सव समाचार, सभा सोसाइटियों के समाचार, और सबसे अधिक जनता की अपनी शिकायतें आदि सब बातें होती हैं। साधारणतया शोक हर्ष आदि के पत्र अधिक महत्व पूर्ण नहीं होते। किन्तु शिका-

यती पत्रोंका छापना बहुत अधिक महत्व पूर्ण और बहुत अधिक जोखिम का काम है। जनता को जब किसी अधिकारी या अन्य व्यक्ति के कोई अत्याचार सहने पड़ते हैं तब वह तुरन्त उनको जन साधारण के सामने लाने की कोशिश करती है इस कोशिश में वह स्वभावतः समाचार पत्रों की शरण लेती है, अपनी शिकायत समाचार पत्र में प्रकाशनार्थ भेजती है। इन शिकायतों के छप जाने से जनता में पत्र का बड़ा आदर हो जाता है। गाढ़े में काम आने वाले स्वभावतः ही आदर के पात्र होते हैं। किन्तु इस प्रकार का आदर प्राप्त कर लेना कोई सरल काम नहीं है। यह मार्ग बड़ा भयावह है। इस पर चलने वाले में अपेक्षाकृत अधिक साहस धीरता, और सहन शीलता होनी चाहिए। क्योंकि इस में हर समय यह भय बना रहता है कि कोई व्यक्ति जिसके खिलाफ शिकायत छपी हो मान हानि का दावा न दायर कर बैठे जिस में आर्थिक और शारीरिक दोनों प्रकार की हानि उठानी पड़ जाय। कभी कभी यह भी होता है कि शिकायत भेजने वाला किसी व्यक्ति से द्वेष रखने के कारण ही उस की शिकायत कर बैठता है, वास्तव में शिकायत की बात ही नहीं होती। ऐसे अवसरों पर यदि विना उचित अनुसन्धान किये पत्र प्रकाशित कर दिये गये तो जनता को धोखा देने और उस व्यक्ति विशेषको वदनाम करनेका जो नैतिक पाप होता है वह तो होता ही है उस के अतिरिक्त, मामला चलने पर आर्थिक और शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता है सो अलग। इस लिए सम्पादकीय नेकनीयती, ईमानदारी और शिष्टाचार का यह

तकाज़ा है कि इस प्रकार के पत्र प्रकाशित करने के पहिले उनकी सच्चाई के सम्बन्ध में पूरा पूरा इत्मीनान कर लिया जाय। इस के लिए अपने रिपोर्टरों, सम्वाददाताओं और प्रतिनिधियों को भेजकर खास तौर से जांच करानी चाहिए।

इस प्रकार भेजे हुए पत्रों में किसी प्रकार की साहित्यिकता की आशा नहीं की जा सकती। ये पत्र जन साधारण द्वारा भेजे जाते हैं और जन साधारण में सर्वत्र साहित्यिक योग्यताको आशा करना व्यर्थ है। हिंदी के लिए तो यह बात और भी सत्य है। हमारी जनता अन्य भाषा-भाषी जनता की अपेक्षा अधिक अशिक्षित है। इसलिए हमारे पत्र साहित्यिक दृष्टि से और भी गये गुजरे होते है। अङ्गरेजी समाचार पत्रवाले इस प्रकार के पत्रों को 'अर्ध सम्पादित' मैटर (Half prepared matter) कहते हैं किंतु हिंदी के लिए यह बात नहीं कही जा सकती। बहुत थोड़े पत्र ऐसे होते है जो इस श्रेणी के हों नहीं तो अधिकांश में ऐसे ही पत्र आते हैं जो अर्ध सम्पादित तो क्या असम्पादित से भी गये गुजरे होते हैं। वे इतने भद्दे ढंग से, इतनी भद्दी भाषा और इतने भद्दे अक्षरों में लिखे होते हैं कि पहिले तो उनके पढ़नेमें घंटों की जरूरत होती है फिर संपादन करने में घंटे लग जाते हैं। इस प्रकार के भद्दे पत्र संपादकीय जीवन के पाप होते हैं। फिरभी वे अस्वीकृत कहकर टाले नहीं जा सकते।यदि उनमें जनताके हितकी बातें हैं तो सम्पादक का यह धर्म है कि अधिक-से-अधिकपरिश्रम और समय व्यय करके उन्हें सम्पादित करे और प्रकाशित करे।

पत्रों का संपादन दो प्रकार से किया जाता है। जो अच्छे लिखे हुए पत्र होते हैं उनमें उन्हीं पत्रों में ही काट छांट करके उन्हें अपने पत्र के योग्य बना लिया जाता है और जो खराब लिखे हुए होते है, जिनमें उन्हीं में काट-छांट करके पत्र के प्रकाशन के योग्य बना लेना संभव नहीं होता उनको फिर से अलग लिख लिया जाता है। इन दोनों सूरतों में पत्र संपादन करते समय यह बात ध्यान रखनी पड़ती है कि सम्पादन ऐसा हो जिसमें लेखक के भाव थोड़े से थोड़े शब्दों में ज्यों-के-त्यों प्रदर्शित हो जायँ। जहां पर कोई कथानक हो वहां पर पूर्वापर संबंध का ख्याल रखना आवश्यक होता है। यह देखते रहना चाहिए कि संपादन करने में कोई ऐसे वाक्य तो नहीं कट गये जिससे पूर्वा पर सम्बन्ध में कोई शिथिलता आती हो। पूर्वापर सम्बन्ध स्थापित रहते हुए हो जो वाक्य या वाक्यांश काटे जा सकते हों वे काटे जायं और पत्र जहां तक छोटा किया जा सकता हो वहां तक छोटा किया जाय। किंतु छोटा करने की धुन में इतना अधिक न बहक जाना चाहिए कि पत्र की मनोरंजक और आवश्यक बातें भी उड़ा दी जायं। कभी-कभी पत्रों में बड़ी मनोरंजक बातें लिखी होती है। उन बातों का पूर्वापर संबंध से कोई सरोकार नहीं होता। केवल मनोरंजन की दृष्टि से वे लिखी होती हैं। वे काटी भी जा सकती है। किंतु उनका काटना ठीक नहीं होता। उनसे पत्र की जानही चली जाती है। पत्र प्रेषक जिस ध्वनि से पत्र लिखता है उसका संपादन उसी ध्वनि से किया

जाना चाहिए। इसलिए पूर्वापर सम्बन्ध की स्थापना के लिए आवश्यक न होने पर भी कभी-कभी मनोरञ्जक वाक्य पत्रों की ध्वनि का तारतम्य निभाने के लिए ज्यों-के-त्यों रखने पड़ते हैं।

प्रत्येक महत्व-पूर्ण पत्र के लेखक को उसके पत्र की प्राप्ति और उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति की सूचना अवश्य दी जानी :चाहिए। चाहे पत्र भेजनेवाला अपना निजी संवाद-दाता हो और चाहे कोई स्वतंत्र व्यक्ति। दूसरे कम महत्ववाले या महत्व हीन पत्रोंके लिए भी उनकी प्राप्ति और स्वीकृति सूचना देना अच्छा होता है किंतु बहुत आवश्यक नहीं। उसके लिए स्वी-कृत पत्रों का प्रकाशित कर देना और अस्वीकृत पत्रों का समा-चार पत्र के एक स्थान पर उल्लेख कर देना; जैसा 'प्रताप' में 'नहीं छपेंगे' शीर्षक के नीचे होता है, पर्याप्त है। इस अस्वीकृत पत्रों की तालिका के सम्बन्ध में भी इतना सावधान अवश्य रहना चाहिए कि किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के पत्रों का इसमें उल्लेख न हो। वह अशोभित मालूम होता है अस्वीकृत करने की अवस्था में उसके पास उसकी सूचना भेज देनी चाहिए या पत्र वापस कर देना चाहिए। एक बात और ध्यान देने योग्य है। वह यह कि कभी-कभी पत्र प्रेषकों के शीर्षक मान हानिकारक होते हैं। ऐसे शीर्षक वाले अस्वीकृत पत्रों की सूचना उक्त तालिका में देते समय उन का शीर्षक बदल देना चाहिए अथवा पत्र प्रकाशित न करने पर भी केवल अस्वीकृति की सूचना दे देने से व्यक्ति विशेष की मान

हानि हो सकती है। यदि सब लोगों के अस्वीकृत पत्र वापस कर देने की व्यवस्था हो सके तो और भी अच्छा। उससे अस्वीकार तालिका आदि की कोई आवश्यकता ही न रह जायगी। और किसी की अप्रतिष्ठा और मान हानि का भय भी न रह जायगा।

समाचार पत्र के कार्यालय में जहां अनेक सूचना और समाचार मूलक पत्र आते हैं वहां ऐसे पत्र भी आते है जिनमें संपादकों को करारी धमकियां रहती हैं। ऐसे पत्र उन लोगों की तरफ से आते हैं जो यह समझते हैं कि पत्रमें ऐसे मजमून छप गये हैं जो उनके लिए मान हानिकारक हैं। उस प्रकार के मनुष्यों में से अधिकांश को तो अपमान का केवल भ्रम हो जाता है, वास्तव में प्रकाशित समाचार अपमान जनक नहीं होता। लेकिन फिर भी वे धमकी भरे हुए पत्र भेजते ही हैं। ऐसे पत्र कभी-कभी तो इस भाव से भी भेज दिये जाते हैं कि इन पत्रों को भेज कर संपादक पर रुआब जमा लेंगे और प्रकाशित समाचार का खण्डन छपवा कर चुप हो जायंगे। किंतु कभी-कभी ऐसे मनुष्यों से भी पाला पड़ जाता है जो अदालती कार्यवाही करने से कम पर किसी प्रकार राजी नहीं होते चाहे फिर अदालत में जाकर उनका मामला खारिज ही क्यों न हो जाय। ऐसी अवस्थाओं में जब उस प्रकार के पत्र आये हों या जब अदालती मामले दायर हो गये हों समाचार पत्र के सम्पादकों को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। एकबारगी घबड़ा कर और अपनी बात को असत्य मानकर माफी आदि मांगने का

कोई ऐसा काम न कर बैठना चाहिए जिससे चरित्र और पत्र की प्रतिष्ठामें बाधा आये। पहिले तो समाचार पत्र खूब समझ बूझ और जांच पड़ताल कर समाचार प्रकाशित करे और फिर उनको प्रकाशित कर अंत तक उनपर डटा रहे चाहे उसके लिए जितने कष्ट क्यों न झेलने पड़े। यही सम्पादक का उसूल होना चाहिए। किंतु यदि उचित जांच पड़ताल के बाद भी वास्तव में कोई गलती रह गयी हो तो उसके लिये अत्यन्त शिष्टता और सौजन्य के साथ माफी मांग लेना भी संपादकीय सभ्यता ही है। किंतु यह न करना चाहिए कि कोई सच्ची बात प्रकाशित करके केवल इसलिए माफी मांग लें कि अदालती प्रमाण नहीं मिल सकते। किसी अधिकारीके खिलाफ कुछ लिखते समय इस तरह की बातें अकसर आ जाती हैं। पहिले तो लोग उसके अत्याचारों से परेशान होकर शिकायत करते है किंतु जब बाद में मामला चलता है और वह अधिकारी उन्हें फिर धमकाता है तब उनकी हिम्मत साथ नहीं देती। ऐसी अवस्थाएँ वर्तमान नौकरशाही के जमाने में प्रायः उपस्थित हुआ करती हैं। ये अवस्थाएँ संपादक के साहस और धैर्य की कसौटी होती हैं। उस समय यह कहकर टाल मटूल न कर जाना चाहिए कि हमारे गवाह ही-वे लोग ही जिन्हें शिकायत है, साथ नहीं देते तो हमें क्या पड़ी है जो दूसरे की बला अपने सिर लें। प्रत्युत चाहिए यह कि उस अवस्था में दृढ़तापूर्वक प्रकाशित समाचार की सच्चाई पर जोर देता रहे और उसके लिए जो कठिनाई आये सब का सामना करे। संपादक का काम ही यह है

कि दूसरों की बलाएं अपने सर लेकर उन्हें बलाओं से पाक करे। उसकी शोभा अपने इसी कर्तव्य के निबाहने में है।

आलोचना



आलोचना पत्रकार कला का एक आवश्यक अंग है। हिंदी के पत्रकार इस ओर ध्यान देने लगे हैं, यह हर्ष की बात है। परन्तु इस सम्बन्ध में उन्नति के लिए अभी बहुत गुंजाइश है। अभी तक हमारी साधारण धारणा कुछ ऐसी बनी हुई थी कि आलोचना का काम मासिक या त्रैमासिक पत्रों का है, साप्ताहिक या दैनिक समाचार पत्रों का नहीं। इसीलिए आज भी जब इस ओर ध्यान दिया जाने लगा है दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में आलोचनाएँ बहुत कम प्रकाशित होती हैं। और जो प्रकाशित भी होती हैं वे ऐसी; जिनसे वास्तविक हित नहीं होता। यह खटकने की बात है। इस सम्बन्ध में हमको विदेशों से सबक सीखना चाहिए। वहां यह विषय बहुत महत्व रखता है और प्रत्येक पत्र संपादक के लिए यह आवश्यक सा हो जाता है कि वह आलोचनाएँ अवश्य दे। विदेशों में शायद ही कोई ऐसा पत्र होगा जिसमें इस विषय की चर्चा न रहती हो। हिंदी की पत्रकार कला अभी बाल्यकाल में है अथवा पराड़करजी के शब्दों यह कह लीजिए कि यह उस का "वयः सन्धिकाल" है। अभी उसका मनोभाव दृढ़ नहीं हो पाया। वह इधर उधर लुढ़कता फिरता है, इस खोज में कि कहीं पत्रिका या पुस्तक पर दो एक सतरें लिख दीं तो लिखदीं अन्यथा अधिकांश में उपेक्षा ही करते हैं। इस प्रकार की आलोचनाएँ

कोई ऐसा सहारा मिल जाय जिसके आधार पर वह अपना रास्ता तय करे। पाश्चात्य पत्रकार उसके पथ-प्रदर्शक हैं। अतः वह उन्हीं के सहारे धीरे धीरे आगे बढ़ रहा है। समाचार पत्रों का इतिहास पढ़ने से मालूम होगा कि पहिले समाचार पत्र समाचार पत्र के रूपमें थे ही नहीं वे विवरण पत्रिकाओं के रूपमें निकलते थे और भिन्न भिन्न पत्र अलग अलग किसी एक खास विषय का वर्णन मात्र छापते थे। समाचार तो उनमें होते हो न थे। जो समाचार होते थे वे एक प्रकार से सरकारी विज्ञप्तियां सी थीं। किन्तु ज्यों-ज्यों नवोन सभ्यता को उन्नति हुई त्यों-त्यों उनमें सुध र होते गये और उपयोगी विषयों का समावेश करना समाचार पत्रों के लिए जरूरी समझा जाने लगा। इसी मनोभाव ने आलोचना को भी समाचार पत्रों में स्थान दिलाया। विदेशों की यह बात अन्यान्य बातों की तरह बने बनाये रूपमें हमारे सामने आयी और हमने इस पर अमल करना शुरू कर दिया।

आलोचनाएँ प्रकाशित तो अवश्य होने लगी परन्तु उनमें बहुत अधिक उन्नति की आवश्यकता है। मालूम यह होता है कि आलोचना के सम्बन्ध में हमारे विचार अभी अधूरे से ही हैं। पहिले तो हम समाज के भिन्न भिन्न अंगो से सम्बन्ध रखने वाले सब विषयों की आलोचनाएँ ही नहीं करते दूसरे पत्र पत्रिकाओं तथा पुस्तकों आदि की जो आलोचनाएँ करते भी हैं उसमें भी बहुत संकीर्णता से काम लेते हैं। कभी एकाध बार लेखक सम्पादक या प्रकाशक के विशेष अनुरोध करने पर किसी पत्र

लिखना एक शुष्क शिष्टाचार सा बन गया है, कर्तव्य की गंभीरता का यहां दर्शन भी नहीं होता। आलोचना महज इस लिए की जाती है कि कोई चीज आलोचना के लिए उनके पास भेजी गयी है न कि इस लिए कि उसकी आलोचना करना आवश्यक है। यह स्थिति शोचनीय है। आलोचना शुष्क शिष्टाचार के रूपमें न की जानी चाहिए बलिक कर्तव्य समझ कर उत्सुकता के साथ उत्तरदायित्व का पूर्ण अनुभव करते हुए ढूंढ़ ढूंढ़ कर समालोच्य विषयों की आलोचना होनी चाहिए और होनी चाहिए अधिक से अधिक जितनी बार सम्भव हो उतनी बार।

ऊपर कहा जा चुका है कि हमारे यहां जो आलोचनाएं होती है वे प्रायः पत्रों और पुस्तकों की ही। शायद हमने यह समझ रखा हैं कि यही बस्तुएं आलोचना के योग्य होती हैं और नहीं। यह ठीक हैं कि इन बस्तुओं की आलोचना की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है क्यों कि ये देशके कोने कोने में और विदेशों तक पहुंचती हैं। सहस्रों और लाखों मनुष्य इन्हें पढ़ते और सुनते हैं। उन की जानकारी के लिए इन वस्तुओं के गुण दोष प्रकट कर देना अधिक आवश्यक और अधिक महत्व पूर्ण होता है; किन्तु यह भी नहीं है कि केवल यही वस्तुएं आलोचना के योग्य होती हों। बहुत सी अन्य बस्तुएं भी ऐसी होती हैं जिनकी आलोचना जनता के हित की दृष्टि से आवश्यक होती है। ऐसे विषयों में पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकोंके अतिरिक्त चित्रों, नाटकों, सिनेमा आदिके नाम गिनाये जा सकते हैं। जब हम सर में लगाने के तेलों और रोगों कोओषधियों

तक की आलोचनाएं अपने पत्रों में प्रकाशित करते हैं तब कोई कारण नहीं कि इन उपर्युक्त आवश्यक विषयों की समालोचना प्रकाशित न की जाय। इतने ही विषयों की क्यों, यदि आगे चल कर इनके अतिरिक्त कोई अन्य ऐसे विषय आ जांय जिनसे जनता का अधिक सरोकार हो तो उनकी भी आलोचनाएं प्रकाशित की जानी चाहिए। अपना वास्तविक अभिप्राय यह रहना चाहिए कि जिन जिन विषयों से जनता का सम्पर्क रहता हो, उन उन विषयों के सम्बन्ध में उचित राय दी जाय जिससे जनता को अपना हानि-लाभ समझने में सुविधा हो। समाचार पत्र का उद्देश्य ही यह होना चाहिए कि वह ऐसे लेख समाचार आदि प्रकाशित करे जिनसे जनता का भला हो। ऊपर जिन विषयों का उल्लेख किया गया है,—पत्र, पुस्तकें, नाटक, सिनेमा, चित्रशाला, आदि—वे सब जनता से बहुत गहरा सम्बन्ध रखते है। इनके सम्पर्क में आने से और जनता के बनने बिगड़ने से बहुत बड़ा सम्बन्ध है। इसलिए इन विषयों की आलोचना करना न केवल उचित और आवश्यक ही है प्रत्युत यह समाचार पत्र का कर्तव्य भी है।

आलोचना का जहां एक मतलब यह होता है कि उसके द्वारा जनता को हानि-लाभ की बातें बतायी जायँ और उसे उचित परामर्श दिया जाय वहां उसका एक उद्देश्य यह भी है कि जनता की रुचि परिष्कृत की जाय, उसका ज्ञान बढ़ाया जाय, उसमें यह परख पैदा की जाय कि अमुक बात अच्छी और अमुक खराब

होती है और उसकी कला सम्बन्धी बुद्धि को विकसित किया जाय। इस उद्देश्य को सामने रखते हुए आलोचक का काम अन्यान्य पत्रकारीय कर्मचारियों की भाँति अनेक विषयों का थोड़ा थोड़ा ज्ञान रखने से ही नहीं चल सकता। उसे तो जिस विषय की आलोचना करना हो उस विषय का पूर्ण ज्ञान रखना चाहिए, उसका पूर्ण पंडित होना चाहिए। आलोचक में धीरता, गम्भीरता, विद्वता, विवेकशक्ति, भाषा का अधिपत्य आदि अनेक गुणों की आवश्यकता होती है। जिसमें इन गुणों का अभाव हो उसे इस काम में हाथ ही न डालना चाहिए।

भिन्न भिन्न विषयों की आलोचना भिन्न भिन्न प्रकार से और भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से की जाती है। सबका एकत्र उल्लेख करना सम्भव नहीं। पत्र पत्रिकाओं की आलोचना में सब से अधिक इस बात का ध्यान रखने की जरूरत होती है कि उसमें जनता के हित के किन किन विषयों का और किस किस ढङ्ग से समावेश किया गया है, एक अच्छे समाचार पत्र के लिए समाचार आदि देने की जो प्रणाली होनी चाहिए वह ठीक वैसी ही है या नहीं, जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह शिष्ट और सभ्य है या नहीं, आदि। पत्रों की नीति-रीति के सम्बन्ध की आलोचना उतनी महत्व की नहीं होती क्योंकि प्रत्येक सम्पादक को यह अधिकार दिया जाना चाहिए कि वह जिस नीति में लाभ समझे उसका अवलम्बन करे। हां, यह अवश्य देख लेना चाहिए कि वह नीति इतनी बुरी, अशिष्ट और असभ्य नहीं है, जिससे

किसी भयङ्कर अनिष्ट की आशङ्का हो। मतलब यह कि ऐसा न किया जाय कि यदि कोई पत्र नङ्ग नाच नाचने के लिए तैयार हो जाय तो भी उसकी आलोचना न की जाय। ऊपर की बातों में विवक्षा केवल यह है कि जैसे कोई पत्र स्वराज्य पार्टी का समर्थक है, कोई स्वतन्त्रतावादी पार्टी का, कोई माडरेड दल का; अथवा कोई साहित्यिक पत्र देव का उपासक है, कोई बिहारी का या कोई पत्र सनातन धर्म को बड़ा मानता है, कोई आर्यसमाज को तो ऐसे अवसर पर, आलोचक के मत से भिन्न मत रखने के कारण, आलोचक को उसकी नीति की आलोचना करने न बैठ जाना चाहिए। उस अवस्था में इतना उल्लेख मात्र पर्याप्त होगा कि अमुक पत्र अमुक नीति का या अमुक मत का प्रतिपादक है। बस।

पत्रों की आलोचना के सम्बन्ध में एक बात और। पत्रों और पुस्तकों की आलोचना-विधि में भेद होता है। कारण स्पष्ट है। पत्रों का प्रकाशन रोज रोज या बहुत कम अवकास देकर होता रहता है और प्रत्येक अङ्क नयी नयी बातें जनता के सामने रखता है। पुस्तकों में यह बात नहीं होती। उनका प्रकाशन कभी कभी तो एक ही बार होकर रह जाता है और कभी कभी जब दुबारा प्रकाशित होने का अवसर आता भी है तब भी उनका रूप बहुत कुछ पहिले सा ही रहता है। इसलिए पुस्तक की आलोचना एक वार में भी समाप्त मानी जा सकती है (हालां कि उचित यही है कि प्रत्येक संस्करण की आलोचना की जाय और

उनके नवीन परिवर्तनों पर खास तौर से ध्यान दिया जाय) पत्र के किसी एक ही अङ्क की आलोचना करके कर्तव्य की इति श्री नहीं समझी जा सकती। इस सम्बन्ध में तो यही उचित है कि ध्यान पूर्वक पत्रों का निरीक्षण करते हुए जिस समय जो बात पत्र विशेष में आलोच्य समझ पड़े उसी समय उस बात की आलोचना समाचार पत्रों में की जाय। यदि कोई पत्र अच्छे अच्छे लेख या समाचार देकर जनता का हित-साधन करता है तो उसके उन गुणों की प्रशंसा करके जनता को उससे परिचित कराना तथा पत्र को उत्साह प्रदान करना चाहिए और यदि कोई पत्र अपने दूषित भावों से देश या समाज का अहित कर रहा हो तो उसकी उचित निन्दा करके उसके दोषों को हटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुस्तकों की आलोचना पत्र पत्रिकाओं की आलोचना की अपेक्षा अधिक सावधानी चाहती है। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। समाचार पत्रों का प्रभाव अल्प कालिक और पुस्तकों का का स्थायी रहता है। पुस्तकें पीढ़ियों तक पढ़ी जाती हैं। इस लिए उनकी आलोचना खूब सोच समझ कर करनी चाहिए। पुस्तकों के आलोचक को बड़ी द्विविधा का सामना करना पड़ता है। एक ओर तो उसे इस बात की आवश्यकता होती है कि वह जनता के सामने पुस्तक सम्बन्धी अपनी ठीक राय प्रकट करे, उसे उचितानुचित का बोध कराये दूसरी ओर यह ख्याल भी रखना पड़ता है कि लेखक कहीं इतना हतोत्साह न हो जाय कि

आगे से लिखना ही छोड़ दे। ऐसे अवसरों पर बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। परन्तु ऊपर के कथन से यह अभिप्राय भी नहीं लेना चाहिए कि लेखक की हतोत्साहिता का ख्याल करके पुस्तक की उचित आलोचना से मुंह मोड़ा जाय। यहां पर उपरोक्त कथन से अभिप्राय केवल यह है कि बजाय इस भाव के कि लेखक—यदि वह बुरा है तो—आलोचना द्वारा हतोत्साहित करके पुस्तकें लिखने से रोक दिया जाय होना यह चाहिए कि आलोचना ऐसी की जाय जिससे वह सुधर जाय और भविष्य में हतोत्साह न हो बैठे प्रत्युत अधिक सावधानी और उत्साह के साथ उत्तरोत्तर वर्धमान गति से अच्छी पुस्तकें लिखने में समर्थ हो। जो भलाइयां हों उनकी खूब प्रशंसा की जाय, जो बुराइयां हों उनकी निन्दा भी की जाय। किन्तु निन्दा दया पूर्वक हो जिससे लेखक को प्रोत्साहन मिले। उसकी मिहनत का भी ख्याल रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में दो बातों का विशेष रूप से ख्याल रखना चाहिए। एक तो यह कि आलोचक ऐसी कल्पना करके आलोचना करने बैठे कि लेखक मैं स्वयं हूं और दूसरी यह कि जिसके सम्बन्ध की आलोचना की जा रही हो उसके सम्बन्ध में यह कल्पना करले कि वह मेरे सामने बैठा है। इन कल्पनाओं से आलोचना बहुत कुछ दया और सहानुभूति मय हो जायगी जो उसका खास गुण है। लेखक की प्रारम्भिक कृतियों की आलोचना करते हुए तो इन बातों की ओर और भी ध्यान देना चाहिए। हिन्दी के आलोचकों में प्रायः यह देखने में आता है कि

यदि किसी आलोचक ने किसी की निन्दा प्रारम्भ की तो आदि से अन्त तक निन्दा ही करता चला गया और यदि प्रशंसा प्रारम्भ की तो आदि से अन्त तक प्रशंसा ही भर देता है। यह दोष है। केवल निन्दा करना या केवल प्रशंसा करना आलोचना नहीं है। उसमें तो गुण दोष दोनों के उल्लेख की आवश्यकता होती है।

हमारे यहां, आलोचनाओं में, प्रायः यह भी देखा जाता है कि आलोचक महाशय लेखक के व्यक्तित्व पर भी कटाक्ष करने लगते हैं, यह आदत बड़ी खराब है। आलोचना कृति की की जाती है, लेखक के व्यक्तित्व की नहीं। इस लिए जो कुछ कहा जाना चाहिए वह कृति के सम्बन्ध में कहा जाना चाहिए न कि व्यक्तित्व पर। व्यक्तिगत आक्षेप करना आलोचना के सिद्धांत के प्रतिकूल है। इस के अतिरिक्त यह भी तो सिद्ध नहीं किया जा सकता कि केवल इस लिए कि अमुक व्यक्ति झूठ बोलता है, कोई नीच कामकरता है, उसकी रचना अच्छी नहीं हो सकती। ऐसे उदाहरण मौजूद है जहां इस प्रकार के आदमियों ने अच्छी-अच्छी रचनाएँ की है। अतः यह एक निरपवाद नियम नहीं है। विवेचना रचना के गुण दोषों की होनी चाहिए। लेखकके गुण दोषों से आलोचक को कुछ क्षण के लिए अलग रहना चाहिए। यह ठीक है कि रचना पर लेखक के व्यक्तित्व की कुछ-न-कुछ छाप अवश्य पड़ती है और इस लिए कहीं-कहीं पर लेखक के व्यक्तित्व की आलोचना से रचना की आलोचना में कुछ अधिक महत्व आ सकता है। परन्तु यह बात क्वचित् ही हो सकती है और इसका

अभ्यास भी कुछ अधिकारी समालोचकों को ही करना चाहिए। साधारणतया यदि लोग इस प्रकार की आलोचनाएँ करने लगेंगे तो इष्ट के स्थान पर अनिष्ट की ही अधिक आशंका होगी जैसा कि आज कल की आलोचना प्रणाली से स्पष्ट है। अतः सुविधा इसी में है कि व्यक्तिगत आलोचना बचा ही दी जाय। प्रशंसात्मक आलोचना चाहे कर भी दी जाय परन्तु इस प्रकार की निन्दात्मक आलोचना तो अवश्य बचा देनी चाहिए। इससे कटुता फैलती है और पक्ष विपक्ष के इस प्रकार के आक्षेपों और प्रत्याक्षेपों से साहित्य में गन्दगी फैलती है।

रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटकों की आलोचना का कार्य तुलनात्मक दृष्टि से अधिक कठिन होता है। उसकी अभी हमारे यहां प्रथा भी नहीं चली। कभी किसी ने कहीं पर किसी नाटक के सम्बन्ध में दो एक शब्द लिख दिये तो लिख दिये नहीं तो अधिकांश में यह विषय अछूता ही रहता है। परन्तु है यह बड़ा महत्व पूर्ण। इसलिए इस सम्बन्ध में भी दो एक शब्द लिख देना अनावश्यक न होगा। नाटकों की आलोचना के सम्बन्ध में सबसे पहिले तो यही बात विचारणीय है कि वह की जाय कब। इस सम्बन्ध में विद्वानों में मत भेद हैं। कोई कहता है कि जिस दिन पहिले पहिल नाटक रंगमंच पर आये उसी दिन उसकी आलोचना करनी चाहिए। कोई कहता है कि रंगमंच पर आने के पूर्व ही अभ्यास अभिनय (रिहर्सल) देख कर ही उसकी आलोचना कर डालनी चाहिए और कोई कहता है कि कुछ दिन तक नाटक के

खेले जा चुकने के बाद उस पर रायजनी की जानी चाहिए। किस बात को माने किस को नहीं यह आलोचक को अपने आप निर्णय करना चाहिए। फिर भी साधारणतः पहिले दिन रंगमंच पर खेले जा चुकने के बाद ही आलोचना करना उचित होता है क्योंकि रंगमंच पर आना ही नाटक का प्रकाशन है और जिस प्रकार पुस्तकें प्रकाशित होते ही आलोचना का विषय समझी जाती हैं, न पहिले न अधिक समय विताने पर, उसी प्रकार नाटक के प्रकाशन के तुरंत बाद न पहिले और न कई दिन पीछे ही—उसकी आलोचना करनी चाहिए।

नाटक के आलोचक को नाटक मंडली के इतिहास का ज्ञान होना चाहिए, पुराने नाटकों की बातें याद होनी चाहिए, साधारण गायन, वाद्य, नाट्य, आदि का भी ज्ञान होना चाहिए। दूसरे दूसरे नाटकों का परिचय रखना भी उसके लिए आवश्यक होता है। नाटक के आलोचक के लिए यही आवश्यक नहीं है कि वह नाटक लेखन सम्बन्धी आलोचना करके कर्तव्य की इतिश्री समझे वरन् यह भी आवश्यक होता है कि वह नाटक की एक्टिङ्ग सीन सीनरी, तथा नट विशेष के अभिनय कौशल आदि की भी उचित आलोचना करे। इस अवस्था में यदि आलोचक चाहे तो किसी नट विशेष की व्यक्ति गत प्रशंसा करके उसको प्रोत्साहित भी कर सकता हैं। मि० लोवारेन ने अपनी पुस्तक में इस सम्बन्ध में ५-७ प्रश्न दिये हैं। सवाल ये हैं:—

१ क्या गाने सामयिक, मौलिक और प्रभावोत्पादक हैं ?
२ पात्रों की बातचीत प्राकृतिक और चुस्त मालूम होती है ?

३ पात्रों का चरित्र चित्रण प्राकृतिक है ?

४ नाटक कार ने नाटक में जो बातें लिखी हैं वे जीवन की सच्ची घटनाओं से मिलती जुलती है ?

५ यदि हाँ तो क्या नटों ने उन्हें ठीक ठीक अदा किया है ?

६ अभिनय (एक्टिंग) प्राकृतिक ढंग से ठीक ठीक हुआ ?

७ रंगमंचा के प्रबन्ध की सब बातें ठीक थीं ?

मि० लोवारेन का कहना है कि इन प्रश्नों के उत्तर से ही नाटक की पूरी आलोचाना हो जायगी। प्रश्न वास्तव में महत्व पूर्ण हैं।

करीब करीब नाटकों की आलोचाना की भांति ही सिनेमा की आलोचाना भी समझनी चाहिए। इसमें घटना क्रम की स्वाभाविकता तथा अभिनय का प्राकृतिक प्रदर्शन विशेष रूप से आलोच्य होंगे।

अब रही चित्रों प्रतिमाओं आदि की आलोचना की बात। इस विषय के आलोचक का काम बड़ा सुन्दर होता है। उसे अपने नेत्रों को तृप्त करने का अनायास अवसर मिलता है। वह चित्रशालाओं और प्रदर्शिनियों में बे रोक टोक जा सकता है। किन्तु इस काम को सब कोई नहीं कर सकता। इसके लिए मनुष्य में सौन्दर्योपासना का स्वाभाविक भाव होना चाहिए। जिसमें यह गुण विद्यमान होता है वही इस काम को कर सकता है। इस गुण के अभाव में कोई मनुष्य इस विषय का समालोचक नहीं हो सकता, चाहे उसे कितनी ही शिक्षा क्यों न दी जाय। इस सम्बन्ध में इस गुण का होना तो अनिवार्य है। शिल्प, चित्र

आदि के आलोचक को (Art critic) साधारण बुद्धि से काम लेने की अधिक आवश्यकता पड़ती है। चित्रालोचक (Art critic) के लिए ही बुद्धिमत्ता से काम लेने की बात पर जोर इस लिए दिया जाता है कि इसमें अन्य विषयों की भांति विषय की रीति सम्बन्धी बातें ही (technicalities) नहीं देखी जाती उनकी प्रभावोत्पादकता, उपादेयता, सुन्दरता आदि पर भी विशेष रूपसे ध्यान दिया जाता है। अस्तु। चित्रालोचकों के लिए यह आवश्यक होता है कि ज्यों ही कहीं पर प्रदर्शिनी आदि खुलें त्यों ही वह ां जाकर उसका सूक्ष्म निरीक्षण करे और दूसरे ही दिन समाचार पत्रों में तत्सम्बन्धी आलोचना प्रकाशित करे। इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का कथन यह भी है कि यदि प्रदर्शिनी खुलने के पहिले ही वहां पर रखे हुए चित्रों और प्रतिमाओं का अवलोकन करके उस पर ठीक उसी दिन जिस दिन प्रदर्शिनी खुलने को हो कुछ लिखा जाय तो और भी अधिक उपयोगी हो सकता है। यदि चित्रालोचक को अपने और पराये शिल्पों की कृतियों का ज्ञान हो तो वह और भी अच्छी आलोचना लिख सकता है। उस समय उसे दोनों प्रकार की चित्र कला प्रणाली की तुलना करने का बड़ा अच्छा अवसर मिल सकता है।

साधारणतया ऐसे ही विषयों की आलोचना की आवश्यकता होती है जो मानव मस्तिष्क को प्रभावित करते हों। जिनका

मानव मस्तिष्क पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता उनके संबन्ध में कुछ लिखा जाय या न लिखा जाय सब बराबर है। आलोचक का उद्देश्य तो यही होता है कि जनता किसी विषय विशेष के अनिष्ट प्रभाव से प्रभावित होने से बचे तथा इष्ट प्रभाव से अधिकाधिक प्रभावित हो और यह काम उन्हीं विषयों की आलोचना द्वारा हो सकता है जो मानव मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं। ऐसे विषयों में साहित्य, संगीत और कला महत्व-पूर्ण स्थान रखते है। मनुष्य के मस्तिष्क में इनका गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः इन विषयों की आलोचना नितांत आवश्यक है। इसी लिए इन विषयों की आलोचना के संबन्ध की कुछ बातों का, यहां पर विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। पत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों, आदि में साहित्य पर, नाटकों से संगीत पर और सिनेमा, चित्र तथा प्रतिमाओं आदिसे कला पर प्रकाश डाला गया है।

सब प्रकार के समालोचकों के लिए—चाहे वे साहित्य समालोचक हों, चाहे संगीत समालोचक हों और चाहे कला समालोचक हो—यह नितांत आवश्यक होता है कि वे जिस विषय की समालोचना करने बैठे उसका खूब सावधानी और ध्यान के साथ पहिले अध्ययन कर लें। खूब पढ़लें, खूब देख सुनलें, खूब समझ बूझ लें तब कलम उठावें। जो विषय समझ में न आवे उसकी आलोचना कदापि न करनी चाहिए क्योंकि उसकी आलोचना से विषय के दोष गुण का यथेष्ट विवेचन न हो सकेगा और इस बात की आशंका बनी रहेगी कि समालोचक जनता का

लाभ करने की अपेक्षा कहीं हानि ही न कर बैठे।

आलोचना में उन बातों के प्रकट करने की उतनी आवश्यकता नहीं होती जिन्हें सर्बसाधारण सरलता-पूर्वक जान सकते हैं। परन्तु ऐसे अवसरों पर जब जनता जान बूझ कर किसी कृति की बुराइयों में बही जाती हो तब इन साधारण बातों की भी आलोचना होनी चाहिए। वैसे समालोचक के लिए असाधारण और किञ्चित् अप्रकट बातों का प्रदर्शन और विवेचन करना ही उचित होता है। साथ-ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आलोचना नितांत वैज्ञानिक और शास्त्रीय ही न हो जाय, वह साधारण जनता द्वारा पढ़ी और समझी जाने योग्य भी हो। इस बात की भी आवश्यकता है कि जिन वस्तुओं को समालोचना की जाय उनके विक्रेताओं के साथ समालोचना की प्रतिलिपि या छपी हुई प्रति अवश्य भेज दी जाय। इससे यदि वास्तव में ऐसी त्रुटियां होंगी जो सुधारी जा सकती होगी जो विक्रेता या प्रकाशक को उसे सुधारने का मौका मिल सकेगा।

हिन्दी समाचार पत्रोंमें आलोचना को अभी उपयुक्त स्थान नहीं मिला। इस ओर प्रवृत्ति अवश्य होने लगी है किन्तु अभी और भी उन्नति की आवश्यकता है। हमारे यहां अधिकांश में यह होता है कि आलोचनाएं प्रायः सम्पादक गण ही लिख डालते हैं। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि सम्पादन और आलोचना दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। इसके अतिरिक्त एक सम्पादक किन किन विषयों की योग्यता रख सकता है जो सब विषयों की पुस्तकों में लेखनी

चलाने के लिए उद्यत हो जाता है? आवश्यक और उचित यह है कि आलोचना, विषय के विचार से, उस विषय के विशेषज्ञों द्वारा ही करायी जाय ताकि जनता के सामने कुछ जानने योग्य बातें पहुंचें। एक बात और भी विचारणीय है। अभी तक हिन्दी समाचार पत्रों में यह नियम सा है कि उनमें प्रायः उन्हीं पुस्तकों की समालोचनाएँ निकलती हैं जो उनके पास, प्रकाशकों द्वारा आलोचनार्थ भेजी जाती हैं। उन पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों की आलोचनाएँ प्रकाशित ही नहीं की जातीं। यह उचित नहीं। आवश्यकता यह है कि इस बात की ताक में रहा जाय कि कौनसी नयी पुस्तक कहां से प्रकाशित हुई और फिर उसकी एक प्रति जिस प्रकार से बने जल्दी से जल्दी प्राप्त की जाय और किसी विशेषज्ञ द्वारा उस पर आलोचना कराकर पत्र में प्रकाशित की जाय। समाचार पत्र जनता के स्वयं सलाहकार होते हैं। इस लिए उन्हें प्रत्येक विषय में सलाह देने की आवश्यकता होती है। उनके लिए पुस्तकें भेजे जाने की प्रतीक्षा करके बैठा रहना ठीक नहीं। किन्तु इस प्रकार खोजकर आलोचना प्रकाशित करने का कष्ट उठाना तो दूर की बात है हमारे सम्पादकगण तो यहां तक करते हैं कि यदि कोई भला आदमी अयाचितरूप से किसी पुस्तक की आलोचना भेज देता है तो वह यह कह कर अस्वीकृत कर दी जाती है कि पुस्तक हमारे यहां समालोचनार्थ नहीं आयी। अस्तु। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि ऐरी गैरी सब समालोचनाएं छाप ही देनी चाहिए

परन्तु उपर्युक्त दलील के साथ विशेष विशेष पुस्तकों की अच्छी समालोचनाएं न लौटायी जानी चाहिए। आलोचनाओंका भी एक खासा महत्व है। विदेशों में कभी कभी केवल आलोचनाओं के लिए पत्रों के विशेषांक निकलते हैं। हमें भी इस विषय को उचित महत्व देने की चेष्टा करनी चाहिए और ऐसा नियम बना लेना चाहिए कि आलोचनाएं विशेष रूप से योग्यता के साथ प्रकाशित हुआ करें।



उप सम्पादक

—:o:—

उप संपादक समाचार पत्रीय अभिनय का प्रमुख पात्र है। बिना रिपोर्टर के काम चल सकता है, बिना सम्वाददाता के काम चल सकता है, बिना भेट करनेवाले, समालोचना करनेवाले और लेख लिखनेवाले के भी काम चल सकता है किंतु बिना उपसंपादक के काम नहीं चल सकता। इस कथन से मेरा अभिप्राय उन संस्था तथा सम्प्रदाय संबंधी पत्रों से नहीं है जो अपनी जाति या अपनी संस्था सम्बन्धी दो चार बातें दो चार पन्नों में छाप कर बांट दिया करते है और इसके अतिरिक्त उनका कोई काम नहीं होता, न मेरा मतलब उन सार्वजनिक पत्रों से हो है जिनमें समाचार पत्रीय गुणों की कोई बात नहीं पायी जाती। मेरा अभिप्राय ऐसे पत्रों से है जो वास्तव में समाचार पत्र कहे जाने योग्य हों। वैसे तो खासकर हिंदी में दर्जनों ऐसी पत्र पत्रिकाएँ होंगी जिनमें सम्पादक के सिवा किसी अन्य कर्मचारी का पता ही न होगा। संपादक भी ऐसे नहीं जो उसी काम में लगे रहते हैं; वरन् ऐसे संपादक जो उसे एक अतिरिक्त कार्य की भांति जैसे कोई अध्यापक स्कूल की अध्यापकी के अतिरिक्त एकाध ट्यूशन कर लेता है उस भांति—करते हैं। ऐसे समाचार पत्रों के लिए तो यह कहना कि उनका काम बिना उपसंपादक के नहीं चल सकता निरा भ्रम है। वहां तो संपादक के बिना भी

काम चल सकता है बेचारे उपसंपादक को तो बात ही क्या ?

संपादक और उपसंपादक दो भिन्न-भिन्न कर्मचारी हैं। किंतु किसी-किसी समाचार पत्र में एक ही व्यक्ति दोनों कार्य कर लेते हैं। फिर भी इससे उनके कर्तव्यों में एकता नहीं आ जाती वे तो अलग-अलग रहते ही हैं। वैसे तो हिंदी के बहुत से संपादक संपादक से लेकर उपसंपादक, रिपोर्टर, समालोचक, प्रूफ-रीडर, डिस्पेचर और स्याही लगानेवाले तक का काम करते हैं, और हिंदी के पुराने संपादकों को तो दरवाजे-दरवाजे अपने समाचार पढ़कर सुनाने तक जाना पड़ता था ! किंतु इससे क्या इन सब कर्मचारियों के काम में एकता आ जाती है ? क्या इन कर्मचारियों का भेद और अन्तर मिट जाता है ? इनका अन्तर स्पष्ट रूपसे बना रहता है। उसी प्रकार संपादक और उपसंपादक का अन्तर भी, बना ही रहता है। किंतु इन दो कर्मचारियों के कर्तव्यों में बहुत कुछ समता रहती है, इसलिए इनका अन्तर सरलता-पूर्वक समझ में नहीं आता। जिस प्रकार रिपोर्टर और संवाददाता के कार्यों और कर्तव्यों में एक प्रकार की समानता रहती है, उसी प्रकार संपादक और उपसंपादक के अनेक कार्य और कर्तव्य भी एक से ही रहते हैं। इससे इन दो कर्मचारियों के कार्यों का भेद समझने में किञ्चित् कठिनता पड़ती है। किंतु हैं ये दो भिन्न-भिन्न कर्मचारी, एक प्रधान और दूसरा उपप्रधान। इन दोनों कर्मचारियों में प्रधान अन्तर यह होता है कि सम्पादक समाचार पत्र की

नीति निर्धारण से सम्बन्ध रखता है और उपसम्पादक उस निर्धारित नीति के अनुसार पत्र का प्रकाशन करवाता है। एक व्यवस्था देता है दूसरा उसका पालन करता है, एक शास्त्र है और दूसरा शास्त्रों का अनुयायी। सम्पादक वैसे तो पत्र के तमाम विषयों का उत्तर दाता होता ही है किंतु वास्तव में वह सम्पादकीय कालमों का हो उत्तरदायी होता है (हिंदी में तो अधिकांश में वही इन कालमों को लिखता हो है) और उपसम्पादक समाचार पत्र के शेष तमाम विषयों का। संक्षेप में सम्पादक और उपसम्पादक का यही अन्तर है।

जैसा कि पत्रकार मात्र के लिए, आलोचक आदि कुछ खास कर्मचारी छोड़कर, यह आवश्यक नहीं होता कि वे बहुत बड़े विद्वान् हों उसी प्रकार उप सम्पादक के लिए भी यह आवश्यक नहीं है कि वह धुरन्धर पण्डित हो। आवश्यकता यह होती है कि एकही विषय की समस्त बातें जानने की अपेक्षा वह समस्त विषयों की थोड़ी बातें जानें। उपसम्पादक को तो अङ्गरेजी कहावत के अनुसार (Jack of all trades—हर विषय में थोड़ा बहुत दखल रखनेवाला) होना चाहिए। इसका अर्थ यह भी न समझना चाहिए कि किसी विषय का प्रगाढ़ पांडित्य उपसंपादक के लिए अवगुण है। कहने का अभिप्राय केवल यह है कि वह आवश्यक नहीं है। किंतु यदि हो तो लाभ हो पहुंचायेगा। किसी विषय का जितना अधिक व्यापक ज्ञान उपसम्पादक को होगा उतनी ही अधिक योग्यता से वह अपने कार्य का संपादन

करने में समर्थ होगा। किंतु इस प्रकार का विशाल पाण्डित्य न होने पर भी वह योग्यता-पूर्वक काम कर सकता है। आवश्य-कता केवल यह है कि उसे भाषा पर इतना अधिकार हो जिससे रोजमर्रा बोल चाल की भाषा में समाचार लिख सके, दूसरी भाषाओं से अपनी भाषा में शुद्ध अनुवाद कर सके और समाचार पर साधारण बुद्धिमानी, ईमानदारी और स्पष्टता के साथ टीका टिप्पणी कर सके। इतना हो तो काफी है। उपसंपादक की योग्यता के लिए इस प्रकार के साधारण साहित्य ज्ञान के अति-रिक्त कुछ अन्य गुणों की भी आवश्यकता होती हैं। उसकी विवेचना शक्ति बहुत उन्नत और उसका मस्तिष्क बहुत सुलझा हुआ होना चाहिए ताकि जो बात कही जाय उसे वह बहुत जल्दी और बहुत आसानी के साथ समझ सके और उस पर अपने विचार भी सरलता-पूर्वक प्रकट कर सके। उसमें यह अव-गुण न होना चाहिए कि जरा-जरासी बातमें गुस्सा करे, उसे तो अपने मत के विरोध की बातें भी शांत चित्त से ही सुननी चाहिए। चित्त की शांति प्रत्येक कार्य में बहुत अधिक सहायक होती है। एक बात और भी होनी चाहिए। उसमें थोड़ीसी निष्ठुरता और किञ्चित् निःशीलता—उतनी ही जितनी एक न्या-याधीश को न्याय के समय रखने की आवश्यकता होती है—अवश्य होनी चाहिए। प्रायः यह देखा जाता है कि जान पहचान के बहुत से लोग उचितानुचित का विचार छोड़कर समाचार पत्रों में अपने मतलब की बातें छपवाने का आग्रह करते हैं।

उस समय उपसम्पादक में इतनी शक्ति अवश्य होनी चाहिए कि अनुचित बात के लिए वह निःसंकोच होकर कह दे कि वह न छाप सकेगा। इससे कुछ लोग रुष्ट अवश्य होंगे किन्तु उस समय उपसंपादक को इस रुष्टता की परवा न करनी चाहिए। उप-सम्पादक के लिए सब से प्रधान गुण यह होना चाहिए कि वह जनता की रुख पहचान सकता हो। इस गुण पर पत्र की सफलता का बहुत बड़ा अंश निर्भर रहता है। उसकी स्मरण शक्ति का तीव्र होना भी आवश्यक और महत्व पूर्ण है। इससे उसे टीका टिप्पणी करने और समाचारों का तारतम्य निभाने में, जो समाचार पत्र को उन्नत और आदरास्पद बनाने में बहुत सहायक होते हैं, बड़ी सुविधा और सरलता प्राप्त होगी। हिन्दी में अभी समाचार पत्र को तैयार करने की काफी सामग्री नहीं है। हमें इसके लिए विशेष रूप से अंग्रेजी का आश्रय ढूंढ़ना पड़ता है। विना इसके कम से कम इस समय कोई पत्र जैसा चाहिए वैसा अच्छा हिन्दी में नहीं निकल सकता। इस लिए उप-सम्पादक के लिए हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी का भी काफी ज्ञान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिस प्रान्त से हिन्दी का समाचार पत्र निकलता हो उस प्रान्त की भाषा जानना भी आवश्यक और लाभप्रद होता है। यदि अन्य भाषाएं भी आती हों तो और भी अच्छा। उप-सम्पादक में चपलता और शीघ्रता पूर्वक काम करने की शक्ति के होने से भी बहुत लाभ होता है। उसमें निरन्तर एक अदम्य उत्साह और कार्य शीलता भरी रहनी चाहिए। काम सामने

आया कि उसको समाप्त कर डालने की धुन उप सम्पादक के लिए एक बहुत आवश्यक गुण है। किंतु इसके अर्थ यह भी नहीं हैं कि शीघ्रता करने के लिए काम की अच्छाई का विचार छोड़ दिया जाय। वह विचार तो सर्वोपरि है। शीघ्रता न हो तो न सही किंतु अच्छाई तो होनी ही चाहिए। अच्छाई निभाते हुए यदि शीघ्रता होजाय तो सोने में सुगन्ध। इन गुणों के अतिरिक्त सावधानी, जागरूकता, अध्यवसाय, परिश्रम-शीलता यहाँ तक कि रातो दिन मेज कुरसी के साथ जुटे रहने तक को तैयार रहने की शक्ति, निश्चित समय से सब काम करनेकी आदत आदि सहकारी गुण भी उप सम्पादक की योग्यता बढ़ाने वाले होते हैं।

पत्र को प्रभाव शाली और लोक-प्रिय बनाने में उप-सम्पादक का बहुत हाथ रहता है। साधारण लोकमत कुछ ऐसा है जो समाचार पत्रों के लम्बे लम्बे लेख, चाहे वे सम्पादकीय हों और चाहे किसी लेखक द्वारा लिखे गये हों पढ़ने की ओर अरुचि रखता है। किसी विषय के विस्तृत लेख पढ़ने के लिए लोग समाचार पत्रों का सहारा न लेकर मासिक त्रैमासिम पत्रों आदि से काम लेते हैं। समाचार पत्रों में तो वे समाचार पढ़ने की ही इच्छा रखते हैं। विदेशों की बात इससे भिन्न हो सकती है। किंतु यहां की परिस्थिति कम से कम इस समय यही है। इन समाचारों के संकलन का भार उप सम्पादक पर रहता है। इसी लिए ऊपर यह कहा गया है कि समाचार पत्रों को प्रभाव-शाली और लोक-प्रिय बनाने में उप-सम्पादक का बहुत बड़ा हाथ रहता

है। समाचार संकलन के अतिरिक्त उप-सम्पादक यह भी देखता है जो'मैटर'जहां दिया गया है वह वहां के लिए ठीक है या नहीं। जो रिपोर्टें रिपोर्टरों और सम्बाददाताओं ने भेजी हैं वे यथा स्थान यथा विधि दे दी गयी है या नहीं, प्रूफ-संशोधन ठीक ठीक हुआ है या नहीं, आदि। इन तमाम कामों में सम्पादक उप-सम्पादकों को आदेश और सलाह बराबर देता रहता है। जो विषय ऐसे हैं जिन में सम्पादक द्विविधा में रहता है उन विषयों के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णायक उप-सम्पादक ही होता है। यदि सम्पादक की दृष्टि में दो विषय समान रूपसे महत्व पूर्ण हुए और दोनों को प्रकाशित करने भर का स्थान पत्र में न हुआ तो यह निर्णय कि अमुक विषय दिया जाय और अमुक रोक लिया जाय उप सम्पादक पर ही निर्भर होता है। उप-सम्पादकीय काम के लिए यह बहुत आवश्यक होता है कि सम्पादक अपने उप-सम्पादकों पर काफी भरोसा रखता हो। आवश्यकता इस बात की होती है कि पहिले ही से ऐसा उप-सम्पादक रखा जाय जिस पर पूरा भरोसा हो। यदि ऐसी प्रतीति न हो तो उस उप-सम्पादक को हटा कर दूसरा उप-सम्पादक रखना चाहिए जिस पर भरोसा किया जा सकता है। बहर हाल उप-सम्पादक पर सम्पादक का भरोसा होना अनिवार्यतः आवश्यक होता है। उप-सम्पादक को इस बात का भी ख्याल रखना पड़ता है कि कोई ऐसी बात समाचार पत्र में न चली जाय जो कभी पहिले कही गयी अपनी ही बात का खण्डन करती हो। क्यों कि इस प्रकार एक ही बात

का कभी मण्डन और कभी खण्डन करने से जनता की दृष्टि में समाचार पत्र की बात का मूल्य कम होजाता है और उसके प्रभाव पर आघात पहुंचता है। इसलिए यदि किसी ऐसी बात पर कुछ लिखने की आवश्यकता हो जो पहिले लिखी जा चुकी हो तो उसको खूब सोच बिचार कर और पहिले से मिलाकर लिखना चाहिए। हिंदी में अधिकांश में समाचार पत्रों के पास न तो अपने रिपोर्टर हैं और न सम्वाददाता न समाचार समितियों से ही समाचार लिए जाते हैं। अधिकांश में जो कुछ होता है वह यह है कि—अंग्रेजी तथा अन्य भाषा वाले समाचार पत्रों को पढ़ पढ़ कर उनसे समाचारों का संकलन किया जाता है। सब समाचार पत्रों के लिए यह बात नहीं कही जा रही। निःसन्देह ऐसे भी पत्र हैं जो अपने समाचारों के लिए किसी दूसरे समाचार पत्र के मोहताज नहीं रहते किंतु साथ ही साथ यह भी है कि ऐसे समाचार पत्र बहुत थोड़े हैं। अधिकांश में दूसरे विशेष कर अंग्रेजी समाचार पत्रों से समाचार ले लेकर हिंदी के समाचार पत्र प्रकाशित किये जाते हैं। ऐसी अवस्थामें खास कर और अन्य अवस्थाओं में आमतौर से उप-सम्पादकों के लिए यह आवश्यक होता है कि वे समाचार पत्रों का खूब अध्ययन करें। जितना ही अधिक वे समाचार पत्र पढ़ेंगे उनका समाचार पत्र उतना ही अधिक अच्छा निकलेगा। अच्छे समाचारों की खोज में उन्हें एक शिकारी की भांति समाचार पत्र-कानन के कोने कोने छान डालने चाहिए।

हिन्दी और अंग्रेजी के समाचार पत्रों के सम्पादन में बड़ा अन्तर है। अंग्रेजी में तार आते है, अंग्रेजी के पढ़े लिखे लोग उसमें लेख भेजते हैं, और अंग्रेजी में ही उनका प्रकाशन होता है इस लिए वहां के सम्पादकों और उप सम्पादकों को अधिक परेशानी नहीं उठानी पड़ती। तार आया, उसे थोड़ा बहुत काट छांट और जोड़ गांठ करके छपने के लिए दे दिया, बस खतम। लेख आते है, पढ़े लिखे आदमियों के; कम से कम इतने पढ़े लिखे आदमियों के जो अपने विचार अंग्रेजी में व्यक्त :कर सकते हैं। वे आये उन्हें भी यत्र तत्र आवश्यक सम्पादन करके छपने के लिए दे दिया। किन्तु हिन्दी समाचार पत्रों की दशा बिलकुल प्रतिकूल है। वहां के सम्पादक और उप सम्पादक को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। तार हिन्दी में नहीं आते। इसलिए यदि तार आये तो पहिले उनका हिन्दी अनुवाद, फिर सम्पादन करना पड़ता है। तब कहीं वे छपने लायक तैयार होते हैं। लेखों और समाचारों का हाल भी भिन्न ही है। हिन्दी में अभी जनता की शिक्षा उन्नत नहीं हुई। अधिकांश हिन्दी भाषी बेचारे अपने विचार तक अपनी भाषा में अच्छी तरह व्यक्त नहीं कर सकते। विचारों का तारतम्य निभाना तो बहुत कठिन है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके द्वारा भेजे गये समाचार, शिकायतें, लेख आदि प्रायः ऐसे होते हैं जिनमें बहुत अधिक काट छांट और जोड़ गांठ की जरूरत पड़ती है। अधिकांश में तो वे पुनर्वार लिखने तक पड़ते हैं। यह काम भी हिन्दी के उप सम्पादकों को करना पड़ता है।

उप सम्पादक पत्र की प्रभाव शालिता, व्यापकता और विस्तार के अनुसार एक या अनेक होते हैं। जो समाचार पत्र जितने अधिक विषयों का प्रवेश करना चाहता है उसके लिए उतने ही अधिक उप सम्पादकों की आवश्यकता पड़ती है। विदेशों में प्रत्येक विषय के लिए अलग अलग सम्पादक रहते हैं किन्तु हिन्दी में अभी इतनी उन्नति नहीं हुई कि कोई समाचार पत्र इतने अधिक सम्पादक रख सके। बेचारे एक सम्पादक का व्यय-भार ही कठिनता से उठा पाते हैं अनेक सम्पादकों का व्यय भार कैसे उठावें ? फिर भी जिन्हें एक आदर्श समाचार पत्र बनाना है वे सञ्चालकगण अपने कर्मचारि मण्डल में आवश्यक वृद्धि करते ही हैं। ऐसे समाचार पत्रों के कार्यालयों में प्रायः तीन प्रकार के उप सम्पादक होते हैं। एक प्रधान उप सम्पादक जिस को अंग्रेजो में Chief चीफ कहते हैं, दूसरा उप सम्पादक जो अंग्रेजी में Sub editor सब एडीटर कहलाता है और तीसरा या तीसरे सहायक उप सम्पादक जो अंग्रेजी में Assistants एसि-स्टेण्ट्स कहे जाते हैं। चीफ या प्रधान उप सम्पादक का ओहदा सम्पादक के नीचे होता है, किन्तु वह अन्य उप सम्पादकों से अधिक प्रभावशाली होता है। उसका काम यह होता है कि वह समाचार पत्रों को पढ़ता जाय, जो आवश्यक समाचार समझ पड़े उन पर निशान लगाता जाय और उनको काट काट कर अलग करता जाय। एक एक विषय पर अनेक समाचार पत्रों से इस प्रकार 'कटिङ्ग' लिया जा सकता है। और उस हालत में जब विषय

तो एक ही हो किन्तु विवरण में अन्तर हो तब तो विभिन्न समाचारों से एक ही विषय के कटिङ्ग लिये जाने चाहिए। फिर इन काटे हुए परचों को लेकर प्रधान उप सम्पादक को चाहिए कि उन्हें विभिन्न उप सम्पादकों के सुपुर्द कर दे और उन्हें बता दे कि उनमें से किन किन बातों का किस किस प्रकार से उपयोग करना है। उप सम्पादक और उसके सहायक प्रधान उप सम्पादक के निर्देशानुसार काम करते हैं। इन सब उप सम्पादकों को इस बात का सदा ख्याल रखना पड़ता है कि जो समाचार महत्वपूर्ण हैं वह छूट न जाने पाये। इतना ही नहीं वह खास स्थान पर अधिक प्रदर्शन के साथ प्रकाशित किया जाय। जनता की रुचि के अनुकूल यह महत्वपूर्ण समाचारों का प्रकाशित करना समाचार पत्रों को उन्नत करने का प्रधान साधन है। भाषा, भाव और वर्ण विन्यास (Spelling) में समता रखने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी में इस बात की प्रायः उपेक्षा की जाती है। वर्ण विन्यास की तो परवा ही नहीं की जाती। यह अनुचित है। इसकी ओर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। विशेष सुविधा के लिए कुछ खास खास शब्दों की, जिनके वर्ण विन्यास के संबंध में मतभेद है, एक तालिका बना रखनी चाहिए और अपने पत्र में उसी के अनुसार लिखना चाहिए जिस से यह न हो कि अपने पत्र में एक शब्द कभी एक प्रकार से लिखा जाय और कभी दूसरे। इन्हें समाचारों का हेडिङ्ग देने और कौन टाइप कहां उचित होगा, यह जानने की भी जरूरत होती है।

हेडिङ्ग देने और चित्र परिचय लिखने में जो उप सम्पादक जितना कुशल होगा उसका काम उतना ही अधिक सराहा जायगा। यह काम बड़े महत्व का होता है।

इन प्रधान और सहायक आदि के अतिरिक्त एक प्रकार के उप सम्पादक और भी होते हैं। इनको व्यावसायिक सम्पादक कहते हैं। इनका काम व्यापार व्यवसाय संबंधी समाचार देना है। ये शहर में घूम घूम कर या रिपोर्टर और सम्वाददाता भेज भेज कर व्यापार संबंधी समाचार प्राप्त करते हैं और उन्हें पत्र में प्रकाशित करवाते हैं। इनके लिए यह आवश्यक होता है कि साहित्य का चाहे उतना अच्छा ज्ञान न हो किन्तु व्यापार व्यवसाय में पूर्ण दक्ष हों। उन्हें जानना चाहिए कि किस चीज का क्या भाव है, किस कम्पनी के शेयरों में क्या परिवर्तन हुआ, कृषिका क्या हाल है, फसल कैसी है, बादल बर्षा कैसी है, इसका व्यापार में क्या असर पड़ेगा, किस कम्पनी का दीवाला निकला किसका निकलने वाला है, इससे किस व्यापार को धक्का लगेगा, देश और विदेश में धन की क्या अवस्था है, राज्यकोष का हाल क्या है, विनिमय का क्या हाल है, उसके बढ़ने घटने से व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ेगा आदि आदि। व्यावसायिक सम्पादक पर भी—सम्पादक को पूर्ण भरोसा करना पड़ता है। विदेशों में तो व्यावसायिक सम्पादक सम्पादक का समकक्ष एक कर्मचारी माना जाता है। वहां इस प्रकार विभिन्न विषयों के अलग अलग

स्वतन्त्र सम्पादक होते हैं। किन्तु भारतवर्ष में अभी वह स्थिति नहीं आयी। इस लिए यहां पर यह काम विशेष उप सम्पादक द्वारा ही कराया जाता है।

उप सम्पादक का एक सम्पादकीय काम भी होता है। यद्यपि हिन्दी के उप सम्पादकों को इसका अवसर बहुत कम आता है, तथापि उसका उल्लेख इस लिए आवश्यक प्रतीत होता है कि वह कभी कभी आही जाता है। वह काम हैं समाचारों पर टिप्पणी करने का। ऐसे अवसरों पर उप सम्पादक को बड़ी सावधानी की जरूरत होती है। उस समय ज़रा सी गलती कर जाने से महा अनिष्ट परिणाम निकल सकता है। जरा सी गलती कर जाने पर फिर चाहे वह असावधानी के कारण हुई हो चाहे अज्ञान के–जनता में एक दूषित धारणा बँध जाती है जो पत्र के लिए घातक होती है। भारत वर्ष में तो अभी गनीमत है कि यह भावना इतनी तेज नहीं है किन्तु विदेशों में तो यह हाल बताया जाता हैं कि एक बार की गलती करने से ही हजारों की ग्राहक संख्या कम हो जाती है। यहां भी यदि ऐसी गलतियां कई बार हो जांय तो ग्राहक संख्या पर घातक धक्का पहुंचेगा। और पत्र बिलकुल निष्प्रभाव हो जायगा। लोग यह धारणा बना लेते हैं कि अमुक पत्र तो इसी प्रकार बे सिर पैर की उड़ाया करता है। इस प्रकार पत्र का विश्वास, जो पत्र की जान है, जाता रहता है। ऐसे अवसरों पर उप सम्पादक को पूर्ण सावधनी के साथ कलम उठानी चाहिए। जो बात समझ में न आवे उसको छूना तक न चाहिए। विवादा-

स्पद विषयों में पूरी जानकारी प्राप्त कर लिये बिना भूल कर भी हाथ न डालना चाहिए। कोई बात बिना निश्चित प्रमाण के अपने मन से ही न मान लेना चाहिए। इस बात का सदा स्मरण रखना चाहिए कि हम पर विश्वास किया जा रहा है और हम विश्वास घात न कर बैठें। जो कुछ लिखा जाय वह साफ साफ शब्दों में बिना किसी प्रकार की लीपा पोती किये हुए लिखा जाना चाहिए। उप सम्पादक के लिए दीवालिया पनके समाचार देने में, 'मेक अप' ठीक करने में, व्यंग्य उपहास पूर्ण गल्पें देने में, अदालती कार्यवाहियों के शीर्षक देने में, बहुत सावधानी की जरूरत होती है। ये विषय बड़े टेढ़े होते हैं। मान हानि कारक लेखों पर भी विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। व्यर्थ में किसी की मान हानि कदापि न होने पावे। साथ ही साथ यह भी न होना चाहिए कि मान हानि के डर से सत्य का गला घोंटा जाय। बात जो सच हो वह स्पष्ट शब्दों में निर्भीकता पूर्वक कही जानी चाहिए चाहे उस से किसी की मान हानि होती हो चाहे प्रतिष्ठा।

उप सम्पादक के कमरे में खास खास वस्तुओं में मेंज कुरसी कलम दावात सोख्ता आदि के अलावा गोंददानी, कैंची, और पुस्तकालय जिनमें संसार के बड़े बड़े पुरुषों के जीवन चरित्र तथा ऐसी किताबें हों जिनसे किसी बात के अनुसन्धान में सहायता मिले। (Reference books) होने चाहिए ऐसे चित्राधारों की भी आवश्यकता होती है, जिनमें संसारके महा पुरुषों और खास खास स्थानों के चित्र हों। श्री बाबूराव विष्णु पराड़करने प्रथम सम्पादक

सम्मेलन के सभापति की हैसियत से अपने भाषण में कहा था कि हमें गोंददानी और कैंची उतनी मदद नहीं दे सकती। किन्तु बात वास्तव में ऐसी नहीं है। कमसे कम इस समय तो इन चीजों की हमें आवश्यकता रहतीही हैं। हम को दूसरे समाचार पत्रों की सहायता लेनी पड़ती है और लेनी पड़ती हैं नाम मात्र नही बहुत अधिक। ऐसी दशा में यदि कैंची और गोंददानी का साथ छोंड़ देंगे तो मैं नहीं समझता हम कहां तक अपने पत्र को योग्य पत्र बना सकेंगे। जब तक इधर उधर के समाचार पत्रों से समाचार के कटिंग ले लेकर चिपका कर न रखे जांयगे तब तक समाचार पत्रों के लिए उपयुक्त मैटर कैसे तैयार हो जायगा। दैनिक पत्रों के लिए जिन्हें रोज के रोज़ समाचार प्रकाशित कर डालने का अवसर है, चाहे कैंची गोंददानी की उतनी आवश्यकता न भी हो किन्तु साप्ताहिक पत्रों के लिए तो उनकी विशेष आवश्यकता रहती है। सप्ताह भर की घटनाओं का सारांश इधर उधर से एकत्र करने में इन वस्तुओं का सहारा लेना सर्वथा अनिवार्य हो जाता है। पुस्तकालय और चित्राधारों के सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। किसी सम्पादक से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह सब बातों को जानता है। और सब सम्पादकों को आवश्यकतानुसार प्रायः सभी विषयों पर कभी न कभी कुछ न कुछ लिखना ही पड़ता है। ऐसी दशा में यदि उक्त किताबें मौजूद न हों तो यह सम्भव नहीं कि सम्पादक योग्यता पूर्वक टीका टिप्पणी कर सके। रही

चित्राधार की बात सो किसी विशेष अवसर पर यदि किसी विशेष व्यक्ति या स्थान या वस्तु का चित्र देने की आवश्यकता पड़ जाय तो उस अवसर पर उसका उपयोग किया जा सकता है। चित्र समाचार को अधिक रोचक बना देते हैं। किसी व्यक्ति या स्थान या वस्तु का समाचार जानने के साथ साथ मनुष्यों में स्वाभावतः उनके चित्र देखने की इच्छा प्रकट होती हैं। यदि यह इच्छा तृप्त कर दी जाय तो उन्हें अधिक संतोष होता है। इसी लिए चित्राधार की आवश्यकता होती है। उनके चित्रों से ब्लाक बनवा कर पाठकों को मनोकामना पूरी करने का सुविधा पूर्वक अवसर प्राप्त हो सकता है।

——:*:——

सम्पादक



संपादक समाचार पत्रीय रङ्ग मञ्च का सूत्रधार होता है। पत्रकारीय कार्यों में उसका काम तुलनात्मक दृष्टि से सब से अधिक महत्व का है। और इसीलिए अन्य पत्रकारीय कर्मचारियों की अपेक्षा संपादक में साहित्यिक और बौद्धिक योग्यता की भी अधिक अपेक्षा होती है। जहां अन्य कर्मचारियों के लिए थोड़ा सा ज्ञान होना—लिखने पढ़ने भर की साहित्यिक योग्यता होना ही पर्याप्त माना जाता हैं वहां संपादक के लिए कुछ अधिक ज्ञान की आवश्यकता होती हैं। हिन्दी में तो इस विषय में धींगा धींगी है। स्कूल और कालेजों से पढ़ पढ़ाकर निकलते ही और कभी कभी वहां पढ़ते हुए ही, यदि थोड़ी बहुत लिखने पढ़ने की शक्ति हुई तो लोग पत्र का संपादन भार झट सर पर ओढ़ लेते हैं। ऐसी दशा में संपादन जो कुछ हो सकता है वह सभी अनुभव शील विद्वान जान सकते है। यही कारण है कि हिन्दी के अधिकांश पत्र अच्छे नहीं होते। संपादन करना हँसी खेल नहीं है। बरसों के निरंतर निदिध्यास और अनुभव के बाद भी सङ्कोच के साथ स्वीकारे जाने योग्य संपादक के गु·तर पद को हम लड़कपन के खिलवाड़ की भांति अपने कन्धों पर लादने की बाललीला करते हैं! परिणाम यह होता है कि हम उसमें सफल तो हो ही नहीं सकते उलटा सबके सामने अपनी हंसी कराते

और हिन्दी की संपादन कला पर व्यर्थ का कलङ्क मढ़ते हैं। परिपक्वता और अनुभव जन्य प्रभावशालिता एवं विशदता से शून्य अपने अधकचरे विचारों से हम देश की गम्भीर से गम्भीर समस्याओं पर कलम चला देते हैं; न अपनी जिम्मेदारी का कोई ख्याल है, न जनता और देश के हित का ही ठीक ठीक ज्ञान है! यह अवस्था बड़ी भयङ्कर और अनिष्ट होती है और दुर्भाग्य से हमारे यहां इसी का प्राबल्य देख पड़ता है। संपादक सम्मेलन को चाहिए कि इसका उचित नियंत्रण करने की चेष्टा करे। यदि यह भी होता कि किसी विश्वविद्यालय से संपादन कला सम्बन्धी शिक्षा पाकर कालेज से निकल कर लोग संपादक बनते तो भी किसी अंश तक क्षम्य समझा जाता, यद्यपि वह भी सर्वथा अवांञ्छनीय ही है क्योंकि पत्रकारीय कार्यों का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किये बिना संपादक की ऊँची गद्दी पर बैठना किसी हालत में इष्ट नहीं है। किन्तु यहां तो इस प्रकार की पढ़ाई का ही प्रबन्ध नहीं। केवल साहित्य और इसी प्रकार के दो एक अन्य विषयों की शिक्षा प्राप्त कर लेने से कोई संपादन की योग्यता नहीं प्राप्त कर लेता। संपादक के लिए बहुत सी ऐसी बातों की योग्यता प्राप्त करना आवश्यक होता है जो कालेजों में कम से इस समय नहीं पढ़ाई जातीं। इसलिए किसी व्यक्ति को संपादक बनने के पहिले किसी योग्य संपादक के पास रह कर और संपादकीय विभाग के छोटे छोटे कामों से प्रारम्भ करके आवश्यक अनुभव और ज्ञान प्राप्त हो जाने पर संपादक बनने का साहस

करना चाहिए, अन्यथा नहीं।

ऊपर कहा जा चुका है कि संपादक के लिए अन्य कर्मचारियों की अपेक्षा अधिक साहित्यिक और बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है। इन गुणों के अतिरिक्त संपादक की योग्यता प्राप्त करने के लिए और भी कई गुणों की आवश्यकता होती है। संपादक में, रिपोर्टर, संवाददाता, भेंट करने वाले, समालोचक, उप संपादक, लेखक आदि संपादकीय विभाग से सम्बन्ध रखने वाले तमाम कर्मचारियों की साधारण योग्यताएं तो होनी ही चाहिए इनके अलावा उसमें समुन्नत विवेचना शक्ति, निष्पक्षभाव, शांत निर्विकार मस्तिष्क, न्याय प्रियता, सुंदर स्मरणशक्ति, शीघ्र समझने की शक्ति, सावधानी, उत्तरदायित्व की भावना, कार्य शीलता, उत्साह, सहायता, सच्चरित्रता, लगन, स्वाभिमान, इष्ट प्राप्ति के लिए बेचैनी आदि आदि, अनेक गुण भी होने चाहिए। जिन में इन गुणों के अभाव हों उन्हें इस काम में, संपादन कला की प्रतिष्ठा के नामपर, हाथ डालने का दुःसाहस कदापि न करना चाहिए। संपादक के लिए संपादन कला संबंधी विशद ज्ञान और अनुभव होना अनिवार्यतः आवश्यक होता है। उस में साहित्य ज्ञान, भाषा ज्ञान, अपने देश का पूर्ण इतिहास ज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र तथा अंतरराष्ट्रीय शासन विधानों का सूक्ष्म ज्ञान होना भी आवश्यक होता है। हिंदी के संपादक के लिए अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी तथा अन्य एकाध एतद्देशीय भाषा के जानने की भी आवश्यकता होती है।

इन गुणों और इन योग्यताओं की उपयोगिता के संबंध में पिछले अध्यायों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अतः इनका इस प्रकार संक्षिप्त विवरण ही पर्याप्त होगा। कौन गुण संपादकीय कार्यमें किस समय आवश्यक होगा यह आसानी से जाना जा सकता है।

प्रसिद्ध विद्वान मि० कार्लाइल ने पत्र संपादकों के सम्बन्ध में कहा था कि पत्र संपादक सच्चे सम्राट और धर्मोपदेशक होते हैं, द्वितीय संपादक सम्मेलन के सुयोग्य सभापति पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने संपादकीय कार्य को अयाचित या स्वयं स्वीकृत सेवा के नाम से पुकारा था। अपने अपने मतलब में ये दोनों बातें ठीक हैं। फिर भी इसे अयाचित सेवा का नाम देना अधिक युक्ति-संगत मालूम होता है। स्वयं स्वीकृत सेवा अथवा अयाचित सेवा अर्थात् वह सेवा जिसके लिए किसी ने प्रार्थना नहीं की कितनी विशाल, कितनी महान, साथ ही साथ कितनी नाजुक होती है यह बतलाने की आवश्कता नहीं है। संपादक बनकर हम बिना देश के कहे ही अपने आप उसकी सेवा का बीड़ा उठा लेते हैं। इस लिए हमारे ऊपर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। पं० माखनलालजी ने इस जिम्मेदारी की ओर बड़ी मार्मिकता के साथ ध्यान आकर्षित किया है। चतुर्वेदीजी का कथन सर्वथा सत्य है। यह उत्तर दायित्व बहुत भारी होता हैं। इस प्रकार स्वयं स्वीकृत या अयाचित सेवा में हमें बहुत अधिक सतर्क सावधान और सचेत रहने की आवश्यकता होती हैं। किसी की प्रार्थना पर की गयी सेवा में यदि कोई त्रुटि भी आ जाय तो कोई अधिक भय की बात इस

लिए नहीं होती कि यह कहने का मौका रहता है कि एक मनुष्य को मेरी सेवाओं की आवश्यकता थी, मुझसे उसने कहा और जो कुछ बुरा भला बन पड़ा वह मैंने किया। और अगर अधिक आवश्यक हो तो यह भी कहा जा सकता है कि—कुछ मैं अपने आप थोड़ेही उनकी सेवा करने दौड़ा गया था उनको गरज थी उन्होंने मुझसे कहा था और मैंने किया। इस प्रकार की बातें कह कर उत्तरदायित्व टाला जा सकता है किन्तु अयाचित सेवाओं के सम्बन्ध में जबान खोलने की गुंजाइश नहीं रहती। बिना किसी के आवेदन निमन्त्रण के सेवा करने दौड़ें तो फिर उसमें किसी प्रकार कीं त्रुटि भूल कर भी न होनी चाहिए। अन्यथा उसमें सेव्य प्रदार्थ को अधिक हानि पहुंच सकती है। सम्भव है कि आपकी सेवाएँ देखकर वह अपने दूसरे प्रयत्नों को स्थागित कर दे, जो निश्चित रूपसे उसके लाभ के होते। ऐसी दशामें यदि आपकी सेवाएं उसे कुछ लाभ न पहुंचा सकें इतना ही नहीं उलटा हानि पहुंचाने लगें तो उसका कितना नुकसान होगा? यह स्पष्ट हैं। इसलिए अयाचित सेवाओं का उत्तरदायित्व बहुत गम्भीर होता हैं और उसकी गम्भीरता का सदा स्मरण रखते हुए ही इस प्रकार की सेवाएं करनी चाहिए। संपादक के काम में ऐसे ही आदमी को हाथ डालना चाहिए जिसे अपने अवलम्ब के लिए और किसी रोजगार धन्धे के लिए मारा मारा न फिरना पड़े, जिसने मनसा बाचा कर्मणा इसी को एक मात्र अवलम्ब मान लिया हो।

निर्धारित समय पर अपना सब काम करना जितना संपादक के लिए आवश्यक होता है उतना दूसरे किसी कर्मचारी के लिए नहीं। उसके लिए ठीक समय पर दफ्तर में आ उपस्थित होना ठीक समय से उप संपादकों, संवाददाताओं आदि मातहत कर्मचारियों को हिदायत देना आदि अत्यन्त आवश्यक होता है। प्रेस के कम्पोजिटर आदि ठीक समय से आते है। अतः यह आवश्यक होता हैं कि संपादक उस समय के अनुसार छपने के लिए दिया जानेवाला मसाला तैयार रखे। यह तभी हो सकता है जब वह स्वयं और अपने मातहतों द्वारा ठीक समय पर काम करने और कराने का आदी हो। ऐसा न करने से कम्पोजिटर लोग आ कर कम्पोजिंग के लिए कोई मसाला न होनेके कारण बैठे रहेंगे और उनका समय व्यर्थ नष्ट होगा। इस लिए संपादकों को समय पर काम करने की सदा टेंव रखनी चाहिए। संपादकों में उप संपादकों की भांति और उन्हीं कारणों से किञ्चित् निष्ठुरतामय न्याय प्रियता होनी चाहिए। उचितानुचित का विचार तो इतना दृढ़ और प्रत्युत्पन्न होना चाहिए कि कहीं भी भूलने की आशंका न हो। किसी विषय का निर्णय न कर सकने की कमजोरी संपादक के लिए सबसे अधिक घातक होती है क्यों कि उसका प्रधान कार्य निर्णय करना हैं। यदि वही न हुआ तो संपादक की उपयोगिता ही क्या रही? संपादक को योग्य बनने के लिए ऐसा स्वभाव बनाने की, जो अधिकाधिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता रखता हो, बहुत अधिक आवश्यकता होती हैं। इस

बात की आशा किसी से भी नहीं की जा सकती कि वह सब विषयोंको जानता ही है। किन्तु संपादकों को प्रायः सभी विषयों में कुछ न कुछ लिखने की आवश्यकता पड़ा ही करती है। अतः उन्हें इस विषय की कोशिश कि प्रायः सभी विषयों में कुछ न कुछ जान लें सदैव करते रहना चाहिए। यदि सब विषयों की जानकारी न हो तो इतना तो अवश्य होना चाहिए कि जिन की जानकारी न हो उनके बिषय में इतना जान लें कि वे कहां से जाने जा सकते हैं। संपादकों के लिए वाक्पटुता और पैनी तर्क शक्ति बहुत लाभ की बस्तुएं होती हैं। उपस्थित समय और परिस्थिति से आवश्यक लाभ उठाने की प्रवृति एवं समय की सूझ—किस समय क्या करना चाहिए इसका बोध—भी संपादकों के लिए कम आवश्यक नहीं होते। उनमें मनोविज्ञान का इतना बोध होना चाहिए जिससे वे सरलता और शीघ्रता पूर्वक मनुष्यों के स्वभाव को पहचान सकें। इसके अतिरिक्त काम में जुट पड़ने की एक अजीब धुन और उसको योग्यता के साथ शीघ्रता पूर्वक समाप्त करने की कुशलता भी उनमें होनी चाहिए। संपादकों के लिए हाजिर जवाबी का होना भी बड़े लाभ का होता है और हाजिर जवाबी के लिए तीव्र स्मरण शक्ति आवश्यक होती है। समाचार पत्र पढ़ने का तो संपादक को रोग होना चाहिए। जो संपादक जितना अधिक समाचार पत्र पढ़ेगा वह अपना काम उतनी ही अधिक योग्यता और सम्पन्नता के साथ कर सकेगा। दूसरे समाचार पत्रों के अलावा संपादक को अपना पत्र पढ़ने

का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। यह नियम बना लेना चाहिए कि ज्योंही अपना पत्र प्रकाशित हो जाय त्यों ही उसे आद्योपांत ध्यान से पढ़ जायं। इससे उसे अपने पत्र की भलाई बुराइयों का पता लगेगा और वह आगे के लिए उसे सुधारने का प्रयत्न करेगा। पत्र पढ़ने में केवल लेख ही पढ़ कर न रह जाना चाहिए यह भी देखना चाहिए कि उसकी सजावट वगैरह कैसी है और विज्ञापनों में कोई अश्लीलता या ऐसी बात तो नहीं आ गयी जिससे कुरुचि बढ़ती हो। यदि ऐसा हो तो उसके दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने मातहतों के साथ संपादक को विशेष रूप से उदारता और सहृदयता का बरताव करना चाहिए। उन पर पूर्ण विश्वास रखना, उनकी सुविधा का ख्याल रखना, उनके अच्छे कार्यों की प्रशंसा करना, गलतियों पर उन्हें शासन व्यंजक ध्वनि से डांटने डपटने की अपेक्षा वात्सल्य पूर्वक गलती सुधारने का उपदेश देना, आदि संपादक के हित की बातें हैं। अंग्रेजी दैनिक पत्रों में मातहतों के साथ घर का सा बरताव किया जाता है। परिणाम यह होता है कि वहां के मातहत कर्मचारी बदले में पत्र का अत्यधिक ख्याल रखते हैं और अच्छा काम करते हैं।

पिछले अध्यायों में कहा जा चुका है कि समाचार पत्र नाम की सम्पत्ति हमने विदेशों से ली है। अतएव उसके ज्ञान के लिए भी हमें वहीं के साहित्य के मोहताज रहना पड़ता है। संपादकों के लिए यह आवश्यक है कि वे समाचार पत्र संबंधी विदेशी साहि-

त्य से पूर्ण परिचित रहें। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें आँख मूँदकर उनका अनुसरण भी शुरू कर देना चाहिए। वैसा तो हम कर ही नहीं सकते। हमारी और उनकी परिस्थिति में जमीन आसमान का अंतर है। हमारी उनकी समता तो हो ही नहीं सकती। किंतु उनसे हम बहुत सी बातें सीख सकते हैं इस से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। संपादकीय कार्यों में अभी हम उनकी टक्कर लेने के लायक नहीं हुए किंतु उद्योग करते रहने से यह असंभव नहीं है। विदेशों के पत्र हमारे पत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे निकलते हैं। इसके अनेक कारण हैं। संपादकीय कार्यों में वहां प्रायः प्रत्येक विषय के अलग-अलग संपादक होते हैं जो अपने-अपने विषय पर विचार और युक्तिपूर्ण लेख प्रकाशित करते है। अब यह एक स्वयं सिद्ध बात है कि एक ही आदमी के समस्त विषयों पर लिखने की अपेक्षा, जैसा कि हिन्दी में हो रहा है भिन्न-भिन्न विषयों में भिन्न-भिन्न विशेषज्ञों द्वारा लिखे हुए विचार कहीं अधिक मूल्यवान् और महत्व-पूर्ण होंगे।

विदेशों में प्रायः संपादक का नाम गुप्त रखा जाता है। इस का परिणाम यह होता है कि लोग मनुष्य की व्यक्तिगत महत्ता से नहीं पत्र की महत्ता से पत्र का मूल्य आंकते हैं। किन्तु भारत में समाचार पत्रों पर व्यक्तित्व का बड़ा गहरा असर पड़ता है। यहां पर यह सुविधा तो है ही नहीं कि संपादक का नाम दिये बिना कोई समाचार पत्र निकल सके। कानूनों की कृपा से संपा-

दक का नाम अनिवार्य रूप से प्रकाशित करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि यदि संपादक अपनी व्यक्तिगत सेवाओं से पहिले ही से ख्याति प्राप्त नहीं किये होता तो उसके पत्र की भी प्रतिष्ठा नहीं होती। पत्र की प्रतिष्ठा के लिए सम्पादक को जन साधारण में प्रतिष्ठा प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है। यदि वह पहिले ही से लब्ध प्रतिष्ठ हुआ तब तो ठीक नहीं तो संपादकीय कार्य के अतिरिक्त बाहर के ऐसे काम भी संपादक को विवश होकर अपने सर ओढ़ने पड़ते हैं जिससे प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो। इस प्रकार संपादन के काम का बहुत सा बहुमूल्य समय बाहर के कामों में देना पड़ता में। बेचारे संपादक ऐसा करने के लिए मजबूर होते हैं। न करने पर उनके पत्र की प्रतिष्ठा पर आघात पहुंचता है। उधर संपादन का काम इतना अधिक होता है कि उससे बचाकर दूसरे कामों के लिए समय निकालना कठिन हो जाता है। बेचारा संपादक इस प्रकार अधिक परिश्रम की चक्की में पिस कर अपने स्वास्थ्य से हाथ धो बैठता है। यदि प्रेस सम्बन्धी कानूनों से यह बात उड़ा दी जाय कि पत्र के संपादक का नाम देना अनिवार्य है, तो बहुत कुछ सरलता और सुविधा हो जाय। उस दशा में जनता व्यक्तित्व पर से नहीं स्वयं समाचार के संपादन से समाचार पत्रों का मूल्य आंकने लगेगी और फिर संपादकों को अपनी प्रतिष्ठा के लिए बाहर दौड़ धूप करने की आवश्यकता न रह जायगी! वे सब समय और सब शक्तियां समाचार पत्र को सुन्दर और उपयोगी बनाने

में ही लगावेंगे और संपादन-कला की उन्नति होगी। देश के नेताओं और एसेम्बली के सदस्यों को इस आवश्यक प्रश्न पर ध्यान देना चाहिए।

संपादकों का स्थान जितना ऊँचा होता है उन पर उतना ही अधिक कार्य भार और उतना ही अधिक उत्तरदायित्व भी होता है। दैनिक पत्र के संपादकों को तो रातो दिन जुटा रहना पड़ता है। एक-एक पत्र को पढ़ना, उनका जवाब देना प्रत्येक समाचार पत्र को पढ़ना, उन में से आवश्यक और उपयोगी लेख काट-काट कर रख लेना, उनका अपने पत्र में सावधानी और बुद्धि-मानी के साथ उपयोग करना, समाचार पत्र की नीति का नियंत्रण करना, उसकी भाषा उसके भाव आदि पर निरीक्षण रखना, मातहत कर्मचारियों को हिदायतें देना, लेख लिखना टिप्प-णियां तैयार करना, या तैयार कराना, आये हुए खास-खास लेखों का संपादन करना, अपने उप संपादकों द्वारा तैयार किये हुए लेखों आदि का निरीक्षण करना आदि-आदि न जाने कितने काम संपादक को करने पड़ते है। दूसरे देशों में पत्रों का उत्तर देने में संपादक को बहुत सावधानी और नियमबद्धता से काम करने की आवश्यकता होती है। प्रायः आफिस में आकर उन्हें पहिले यही काम करना होता है। हिन्दी के लिए अभी इसको इतनी महत्ता नहीं दी जा सकती। कारण स्पष्ट है। वहां पर पत्रों के रिपोर्टर, संवाददाता, भेंट करने वाले, सैनिक संवाददाता आदि आवश्यक रायें और सलाहें मांगा

करते हैं। उन्हें यदि उचित समय पर हिदायतें न मिलें तो न जाने कितनी हानि हो जाय, इस लिए वहां तो पत्रोत्तर में अत्यन्त तत्परता करनी ही पड़ती हैं, किन्तु हिन्दी में रिपोर्टर, संवाददाता आदि कर्मचारियों की अधिकता नहीं इस लिए यहा यदि पत्रोत्तर का काम पत्रका रोजमर्रा का काम खतम कर लेने के बाद भी किया जाय तो चल सकता है। किन्तु इस प्रकार इस संबंध में उदासीनता करने का बहाना निकाल लेना भी ठीक नहीं हैं। प्रश्न आवश्यक और महत्व पूर्ण हैं। अतः उस पर तत्परता के साथ ध्यान दिया जाना ही चाहिए।

संपादकीय कार्यों में सब से अधिक महत्व के दो कार्य हैं। एक तो समय का रंग व जनता को रुचि का पहचानना, और दूसरा उसके अनुसार समाचारों को मनोरंजक बना कर प्रकाशित करना। इसको संपादन कार्य का गुरु मानना चाहिए। प्रत्येक समाचार, प्रत्येक लेख और प्रत्येक विवरण प्रकाशित करने के पहिले इन बातों पर एक बार अवश्य ध्यान कर लेना चाहिए। जनता के हित की भो बात पत्र में प्रकाशित होने से कभी छूटने न पावे। वह अवश्य प्रकाशित हो और प्रकाशित हो ऐसे रोचक ढंग से जिसे जनता अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक पढ़े। जनता समाचार पत्रों में प्रायः बड़े लेख बहुत कम पढ़ती है। अतः संपादक को यह व्यवस्था करनी चाहिए जिससे लेख अधिक बढ़ने न पावें। जो विवरण बड़े हों उन्हें इस प्रकार छोटे छोटे टुकडों में विभक्त करके मनोरंजक बना देना चाहिए कि सब बातें भो आ जांय और

पढ़ने वालों का मन भी न ऊबे। टिप्पणियों आदि के सम्बन्ध में यह नीति बरतनी चाहिए कि बजाय थोड़े विषयों पर बड़ी बड़ी थोड़ी टिप्पणियां देने के अधिक विषयों पर छोटी छोटी अधिक टिप्पणियां प्रकाशित की जायं। इनमें भी—यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि कौन सी बात पर जनता अधिक आकृष्ट होगी आदि। पत्र को अत्यन्त विद्वता पूर्ण गम्भीर तम पत्र बनाने की अपेक्षा साधारण श्रेणी का पत्र बनाना अधिक हितकर होता हैं। साधारण जनता समाचार पत्रों में गम्भीर लेखों के पढ़ने की इच्छा नहीं करती। वह तो केवल साधारण जानकारी की रोजमर्रा घरने वाली बातें ही पढ़ना चाहती हैं और ऐसा ही मसाला उसे पढ़ने के लिए दिया जाना उचित हैं। ऐसा न करने से हानि भी है। बड़े बड़े गम्भीर लेख प्रकाशित करने से पाठक कम मिलेंगे पत्र की ग्राहक संख्या घटेगी और इस प्रकार वह (पत्र) उतने बड़े जन समुदाय की सेवा करने से बंचित रहेगा जितने की कि वह अन्यथा कर सकता। पत्र में अधिकाधिक विषयों का समावेश करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे विषयों पर जो विवादास्पद हों और जिनके सम्बन्ध में संपादक स्वयं किसी खास निर्णय पर न पहुंचा हों चुप रहना ही उचित होता है। किसी बात को बिना प्रमाण के कभी न मान लेना चाहिए यह आदत बहुत बुरी है कि चाहे समझे चाहे नहीं जो विषय सामने आया दो चार हाथ साफ कर दिये। इस प्रकार अज्ञान मूलक विचारों से लाभ की आशा तो हो ही क्या सकती है उलटा हानि का बहुत बड़ी आशंका

रहती हैं। यह ध्यान रखना प्रत्येक संपादक का परम धर्म है कि जनत उसके विश्वास में है और उसे उस विश्वास पात्रता की प्रणव्ययेऽपि रक्षा करनी है। इस बात के लिए सदा सावधान रहना चाहिए कि विश्वास घात न हो जाय। किसी के द्वेष में आकर या किसी के मुलाहिजे में आकर कोई असत्य या अनिष्ट बात कदापि न प्रकाशित करनी चाहिए। ऐसे अवसरों पर दृढ़तापूर्वक निस्संकोच के साथ, अपने उत्तरदायित्व और कठोर कर्तव्य का स्मरण रखते हुए निवेदक व्यक्ति से स्पष्ट शब्दों में अपनी विवशता सविनय प्रकट कर देनी चाहिए।

संपादक का कार्य एक प्रधान सेनापति कासा कार्य है। जिस प्रकार प्रधान सेनापति अपनी सेना का संचालन करता रहता है उसी प्रकार संपादक को अपने पत्र का संचालन करना पड़ता है। जिस प्रकार एक योग्य सेना के चलने फिरने, खाने पीने, लड़ने भिड़ने आदि पर सेनापति अपनी निगाह रखता है उसी प्रकार सम्पादक—सेनापति भी अपने रिपोर्टर, सम्वाददाता, उपसंपादक आदि सिपाहियों पर अपनी निगाह रखता है। दोनों की जिम्मेदारियां भी करीब-करीब एक सीही होती है। बड़ी सावधानी जागरूकता की आवश्यकता होती है। जरा भी भूले कि गये। अपने मातहतों को खूब समझा बुझाकर हिदायतें देनी चाहिए। समाचारों के लिए कटिंग आदि देकर टिप्पणी आदि के लिए हिदायत देते हुए, स्पष्ट रूपसे बता देना चाहिए कि इस विषय पर अमुक-अमुक बातें लिखी जायंगी, अमुक-अमुक ढंगसे

लिखी जायंगी और अमुक-अमुक स्थान से मसला मिल सकेगा। पूर्व लिखित किसी विषय पर पुनर्वार लिखते समय पहिले वाले लेख से मिला लिया जाना बहुत अच्छा होता है। इससे अपने ही पत्र में मतभेद होने का डर नहीं रहेगा। लिखने में स्पष्टता की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। जो कुछ लिखा जाय वह बिलकुल साफ-साफ शब्दों में इस प्रकार लिखा जाय जो सबकी समझ में आ सके। लेख हों या समाचार प्रायः इस धारणा से लिखना चाहिए मानों उसके पढ़नेवाले बिलकुल नये और अर्ध-शिक्षित है। संपादक के लिए यह अधिक अच्छा होता है कि प्रेस में छपने के लिए देने के पहिले सब 'मटर' वह एक निगाह से देख ले। उन्हें अपने पास विशेषविशेष स्थानों के वस्तुओं और व्क्तियों के सचित्र विवरण, आवश्यक पुस्तकें आदि दीखनी पड़ती है जिनसे आवश्यक अवसरों पर सहायता ली जा सके। लेखों आदि के संपादन में बड़ी बुद्धिमानी और सावधानी की आवश्यकता होती है। इस काम में सीखने की अपेक्षा अभ्यास करने पर ही अधिक सफलता मिलती है। अभ्यस्त सम्पादक एकाध वाक्य या एकाध शब्द के घटाने बढ़ाने से तमाम लेख का स्वरूप बदल देते है। सम्पादकों का, पत्र की ग्राहक संख्या बढ़ाने से भी बड़ा हाथ रहता है। यदि वे थोड़ी सी सावधानी से काम लें तो आसानी के साथ ग्राहक संख्या बढ़ा सकते हैं। सम्पादकों में मानव प्रकृति का बहुत सुन्दर ज्ञान होना चाहिए। मानव प्रकृति के इस ज्ञान के सहारे वे यह जान लेंगे कि जनता किस

प्रकार के लेखों और समाचारों से आकृष्ट होगा और उसके अनु-रूप समाचार देकर वे अपने पत्र की ग्राहक संख्या बड़ी आसानी के साथ बढ़ा सकेंगे।

मान हानिकारक लेखों के सम्बन्ध में सम्पादक की एक ख़ास जिम्मेदारी होती है। उपसम्पादकों की भांति इस प्रकार के लेख व समाचार आदि रोकने की नीति, उन्हीं शर्तों के साथ, सम्पादक के लिए भी हितकर अवश्य हो सकती है किन्तु केवल उसी से काम नहीं चल सकता। संपादक को और विशेष कर हिंदी के वर्तमान सम्पादकों को इस सम्बन्ध में तनिक साहस से काम लेने की आवश्यकता होती है। उनके पास शिकायती अत्याचार का वर्णन करते हुए अनेक पत्र भेजे जाते हैं। और भी अनेक प्रकार के समाचार या लेख प्राप्त होते हैं जो मान हानि-कारक होते हैं। ऐसे समाचारों और पत्रों का सम्पादन करना बड़ा कठिन होता है। इन पत्रों और समाचारों में से अधिकांश पत्र और समाचार ऐसे होते हैं जिनमें कोई प्रमाण नहीं होते। इस प्रकार के पत्र यदि बहुत ही अधिक आक्षेप कारक हों तो उन के प्रमाणों का संग्रह करने के बाद छापना ही उचित होता है। इसके लिए कुछ दिन रुककर स्वयं पत्र प्रेसक सेवा अपने रिपोर्टरों और संवाददताओं द्वारा प्रमाण प्राप्त कर लेना चाहिए। किन्तु जिन लेखों के प्रमाण भी साथ में हों और जिन पर पूरा पूरा विश्वास किया जा सकता हो उनको प्रकाशित कर देना अनुचित न होगा। यह समझना कि कौन सी बात मान हानि कारक है

कौन नहीं, कौन कानून के खिलाफ है कौन नहींआदि बहुत कुछ अधूरा और अनुभव पर निर्भर रहता है। काम करते करते अपने आप वे बातें समझ में आ जाती हैं। इनके लिए सब बातें एकत्र लिखी नहीं जा सकती। कानून का पचड़ा इतना बड़ा है कि सब का पूरा पूरा समावेश स्वयं कानून विधायक तक अपनी पुस्तकों में कठिनता से कर पाते हैं फिर इस दूसरे विषय की किताब में उनका उल्लेख पूर्णता के साथ कैसे किया जा सकता है ? फिर भी जानकारी के लिए कुछ बातों का जिक्र किया जाता है। ऐसे समाचार या लेख जो सीधे या प्रकारान्तर से किसी पर ऐसे आक्षेप करते हों जिनके कारण उस पर फौजदारी कानून के अनुसार मामला चलाया जा सकता हो तो वे सब लेख और-समाचार मान हानि कारक समझने चाहिए, ऐसे लेख जिनसे किसी जाति के प्रति दुर्भाव और घृणा उत्पन्न होती हो। गैर कानूनी माने जाते है। मृत महापुरुषों के प्रति भी इस प्रकार के लेख लिखना किसी धर्म प्रवर्तक पर आक्षेप करना गैर कानूनी और दंडिनीय माना गया है। विचित्र जीवन, रिसाला वर्तमान आदि के मामले इसके ताजे उदाहरण हैं। किसी के दिवालियेपन के समाचार में बड़ी सावधानी की जरूरत है अन्यथा वह जरासी गलती में मान हानि कारक और गैर कानूनी हो जायगा। गढ़ी हुई कहानियां भी कभी कभी मान हानि कारक हो जाती हैं। हम लोगों को प्रायः कुछ ऐसी धारणा होती है कि कहानियों के रूप में नामो और स्थानों का थोड़ा सा परिवर्तन करने पर चाहे सो लिखा जा

सकता है किन्तु बात वास्तव में ऐसो नहीं है। यदि किसी व्यक्ति ने जिस को उद्देश्य करके वह कहानी गढ़ी गयी होतो हैं, उस पर आपत्ति को और यह साबित कर दिया कि उसी को उद्देश्य करके वह लिखी गयी है तो वह कार्य भी दण्डनीय माना जाता है। माधुरी के मोटे राम शास्त्री वाली घटना कुछ ऐसी ही थी। ऐसे अवसरों पर जिम्मेदारी टालने के विचार से सन्देह सूचक 'कहते हैं' 'कहा जाता है'आदि वाक्यांश जोड़ने की तरकीब सोच निकाली गयी है। इससे अधिकांश में रक्षा भी हो जाती है किंतु यह कोई ब्रह्मास्त्र नहीं है जो कभी विफल न होता हो। बड़े बड़े गम्भीर मामलों की गाज इन शब्दों के टोने टोटके से नहीं टलती। इस लिए इसके प्रयोग को ही सब कुछ समझ कर अनाप शनाप न लिखते चला जाना चाहिए। किसी मनुष्य के कार्यों की आलोचना भी मान हानि कारक हो सकती है। किंतु यह उसी हालत में जब संपादक कार्यों की आलोचना करते करते वहक कर उस कामके करने वाले व्यक्तिकी आलोचना करने बैठ जाते हैं। ऐसे अवसरों पर यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी कार्य करने वाले व्यक्ति पर कोई आपेक्षा न होने पावे। जो आलोचना हो वह उसके कार्य की ही हो व्यक्तित्व को नहीं। संपादक का मार्ग बड़ा कण्टकाकीर्ण होता है। उसे बात बातमें सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता होती है। किसी की अनुचित प्रशंसा तो की ही नहीं जा सकती, कभी कभी उचित प्रशंसा तक गैर कानूनी और दण्डनीय हो जाती है। प्रशंसा उस हालत में आपत्ति जनक और

दण्डनीय हो जाती है जब प्रशंसित व्यक्ति यह प्रमाणित करदे कि उस प्रशंसा से उसे हानि पहुंची। पाठक सोच सकते हैं कि कैसे दुर्गम पथ से संपादकों को निकलना पड़ता है। किसी विषय का अशुद्ध वर्णन, अदालती काररवाइयों का वर्णन और उनका शीर्षक आदि देने में भी बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। संपादक को अपनी प्रत्येक बात प्रमाणित करने के लिए तैयार रहना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर उसे सिद्ध कर देना चाहिए कि उसका लेख नेक नियती से जनता की भलाई के लिए पूरी जांच पड़ताल के बाद प्रकाशित किया गया है। जिसके लिए उस के पास प्रमाणों की तैयारी न हो उसके लिए शान्त और चुप रहना ही बुद्धिमानी है। किन्तु दुर्भाग्य तो यह है कि बेचारा संपादक यह भी नहीं कर सकता। बहुत से आवश्यक और उपयोगी समाचार ऐसे होते हैं जो प्रमाणों की बहुत अधिक छान बीन में समय खोये बिना ही संपादक को विश्वास हो जाने पर छाप देने पड़ते हैं। उनके प्रमाण बाद में ढूंढ़े जाया करते है। अदालती काररवाइयों के सम्बन्ध में उन बातों पर कोई टीका टिप्पणी करना दण्डनीय होता है जो विचाराधीन होते हैं। विचाराधीन से केवल यही अभिप्राय नहीं है कि मातहत अदालत में उनका फैसला न हुआ हो। वहां फैसला हो जाने पर भी जब तक ऊंची अदालतों हाईकोर्ट और प्रीवी कौंसिल में फैसला न हो जाय या उन की अपील की मियाद खतम न हो जाय तब तक उनके तथ्यातथ्य पर रायजनी करना गैर कानूनी माना जाता हैं। इन

सब प्रकार के लेखों और समाचारों के सम्बन्ध में खूब सावधानी से काम लेना चाहिए। फिर भी यदि संयोगवश कोई बातें गलत निकल जायं तो इसके लिए खास तौर से जल्दी से जल्दी उसका खण्डन करने और क्षमा मांग लेने में भी संकोच न करना चाहिए। क्षमा मांगने का अभिप्राय यह नहीं होता कि संपादक दण्ड के भय से भयभीत होगया किन्तु उसका अभिप्राय यह होता है कि यदि पत्र में प्रकाशित किसी गलत खबर से किसी को कुछ हानि उठानी पड़ी हो तो वह उसके लिए क्षमा करे और क्षमा प्रकाशन से दूसरे लोग जिनके द्वारा उस व्यक्ति को हानि उठानी पड़ रही है समाचार की गलती जान लें। इस प्रकार खण्डन करना और क्षमा प्रार्थना करना संपादकीय शिष्टाचार का एक आवश्क अंग है।

किन्तु यह शिष्टाचार बड़ा नाजुक है। इसमें बहुत अधिक प्रलोभन है। यदि इसके प्रलोभन और माया जाल में पड़ा तो संपादक पतित भी बहुत हो जाता है। ज्यों ही किसी के विसिद्ध कोई बात प्रकाशित हुई त्यों ही वह मनुष्य दौड़ पड़ता हैं। मिन्नतें करता है, प्रार्थनाएँ करता है, और रुपयों की थैलियां दिखाता है कि इस समाचार का खण्डन भी प्रकाशित कर दिया जाय। यह याद रखना चाहिए कि यह बात उसी समय होती है जब बात वास्तव में सत्य होती हैं नहीं तो कोई मनुष्य इन प्रलोभनों को लेकर पास नहीं आता वह तो आता है अदालती सम्मन या वारंट लेकर। इन प्रलोभनों से बचना संपादक का बहुत कठिन किन्तु बहुत आवश्यक कर्तव्य है। किन्तु दुःख और परिताप के साथ लिखना पड़ता हैं कि इस प्रकार की कर्तव्य परायणता बहुत कम

संपादकों में पायी जाती है। अधिकांश संपादक प्रलोभन में आ जाते हैं। और कर्तव्याकर्तव्य का विचार छोड़ कर पतन को ओर अग्रसर हो जाते हैं। इस प्रकार के दृश्य चुनाव के अवसरों पर बहुत देखने में आते है। उन अवसरों पर संपादकों के विचार, कहने में दुःख होता हैं, कि बड़े बड़े प्रतिष्ठित संपादकों के विचार, धनवानों को लम्बी लम्बी थैलियों के मूल्य पर या प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्तियों के प्रभाव के मूल्य पर बिका करते हैं। रियासतों और रजबाड़ों की आलोचना प्रत्यालोचनाओं के समय भी संपादकों को धन का खूब लालच दिखाया जाता है। नाभा पटियाला काण्ड, टोंक का किस्सा, बस्तर मयूर भञ्ज वैवाहिक सम्बन्ध, अलबर नीमूचाणा काण्ड आदि के अवसरों पर कहा जाता है कि इस प्रकार के अनेक दृश्य देखन में आये। यह सब संपादकीय संसार को पतित कर देने वाली बातें है। उस समय तो परिताप की पाराकाष्टा हो आती है जब हम संपादकों को रूपये ऐंठने के बिचार से इस प्रकार की बातें जान बूझ कर छापते हुए और फिर मतलब सध जाने पर उन्हीं का खण्डन प्रकाशित करते हुए देखते हैं। ईश्वर हमारे ऐसे संपादकों को सद्बुद्धि और ईमानदारी द।

संपादकों का एक और अवसर भी बड़े महत्व का होता है यह वह अवसर है जब वे अपने पत्र द्वारा देश के किसी आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करते हैं। वह अवसर संपादकों की परीक्षा का अवसर होता है। उस समय आवश्यकता होती है कि जिस

आन्दोलन को हाथ में लें उसे दृढ़ता पूर्वक आगे बढ़ाते जायं। विपक्षी दल की कड़ी धमकियां उनके धन सम्पत्ति या सम्मानादि के प्रलोभन, आन्दोलन को चलाने में आयी हु विपत्तियां और कष्ट उन्हें अपने निश्चित मार्ग से तिल भर भी विचलित न कर सकें। ईश्वरका ध्यान किये हुए जनहित की सच्ची कामना और निष्काम सेवा भाव से प्रेरित होकर वे आन्दोलन को सफलता पूर्वक अंत तक पहुंचाने को धुन में ही व्यस्त रहें; उस समय यही उनका मूल मंत्र होना चाहिए।

संपादकों और समाचार पत्रों के लिए जैसा कि श्रीपराड़कर जी ने प्रथम संपादक सम्मेलन के सभापति की हैसियत से अपने भाषण में कहा था, यह निश्चित रूपसे वयः सन्धि काल है। हमारा कोई निश्चित उद्देश्य नहीं, हम उसकी तलाश में इधर उधर छटपटा रहे है। किन्तु अभी तक उसका ठीक ठीक पता नहीं लगा। कुछ लोग जो अधिक परिश्रम शील और अध्यवसायी है उसको पा भी गये हैं किन्तु अधिकांश अभी भटक रहे हैं। यह अवस्था बड़ी नाज़ुक है। इस 'नय वय चढ़तो बार' जग न जाने कितने 'ऐगुन' कर बैठता है। हमारे संपादकों की भी शायद ऐसी ही अवस्था हैं। वे अपने समाचार पत्र को चलाने के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न करते हैं। इस प्रयत्न में वे उचितानुचित के विचार को भी तिलांजलि दे बैठते हैं। इस में नियंत्रण की आवश्यकता है और यह कार्य संपादक सम्मेलन को शीघ्रातिशीघ्र अपने हाथ में लेना चाहिए। समाचार पत्रों की ग्राहक संख्या बढाने के लिए

यह तक देखा गया है कि जनता की कुरुचि बढ़ायी जाती है। मानव प्रकृति कुछ ऐसी होती हैं जो नीचे की ओर अधिक आसानी के साथ मुड़ जाती है। यह दशा वहां पर और भी अधिक होती हो जहां शिक्षा का अभाव है। अब यदि समाचार उसी रुचि को वर्धित करने का प्रयत्न करेंगे तो यह तो अवश्य होगा कि अपनी रुचि के अनुसार समाचार पाकर लोग समाचार पत्र खरीदेंगे किन्तु उससे समाचार पत्र का वास्तविक ध्येय सिद्ध न होगा। समाचार पत्र जनता की कुरुचि बढ़ाने के लिए नहीं उसको सुधारने के उद्देश्य से प्रकाशित किये जाते हैं। अतः उन का यह परम धर्म है कि उनकी एक एक बात इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हो। अश्लील अशिष्टता और दुराचार मूलक समाचारों को रोचक भाषा और आकर्षक शीर्षकों के साथ प्रमुख स्थान पर प्रकाशित करके कुरुचि बढ़ाने का जो पाप किया जाता है उसे रोकना चाहिए। और समाचार पत्रों को समाज का सच्चा चित्र बनाकर उसकी कुरुचि और कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। जिस समय हमारे संपादकगण अपने कर्तव्य का पूरा पूरा अनुभव कर इस प्रकार एक आदर्श समाचार पत्र निकालने का अभ्यास कर लेंगे उस समय हमारे समाज को सुधरते देर न लगेगी।

———:*:———

प्रबन्ध-सम्पादक

——:o:——

प्रबन्धक और सम्पादक दोनों का मिश्रित काम करनेवाल कर्मचारी प्रबन्ध सम्पादक के नाम से पुकारा जाता है। इस कर्मचारी को पत्रकार मानने के सम्बन्ध में विद्वानों में मत भेद है। किसी किसी का कहना है कि इसका काम अधिकांश में प्रबन्धक का काम है और सम्पादकीय कामों में इसका कोई वास्तविक हाथ नहीं होता, न यह लेख लिखता है, न आये हुए पत्रों का सम्पादन करता है,न कहीं से समाचार प्राप्त करता है,न और कोई ऐसा काम करता है जो पत्रकार करते हैं। इसलिए इसका उल्लेख पत्रकार की श्रेणी में न होना चाहिए। जहां तक इस मत की बातों का सम्बन्ध है बात ठीक मालूम होती है। वास्तव में इस कर्मचारी को नितांत शुद्ध पत्रकारीय कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता। किन्तु फिर भी उसका उल्लेख पत्रकारों की श्रेणी में किया जा रहा हैं इसका कारण यह है कि इस ओर पत्रकार की व्याख्या में ही कुछ संशोधन परिवर्तन हुआ है। ऊपर कहीं कहा जा चुका है कि अब पत्रकारों में केवल सम्पादकों, लेखकों, रिपोर्टरों सम्वाददाताओं, भेट करनेवालों, समालोचकों आदि की ही गणना नहीं होती अब तो फोटोग्राफर कारतून मेकर तथा समस्त ऐसे कर्मचारी जिससे पत्र की उन्नति में सहायता मिलती

है, पत्रकारों की श्रेणी में माने जाने लगे हैं। यहां तक कि नितांत प्रबन्ध सम्बन्धी काम करनेवाले, विज्ञापन सम्बन्धी काम करनेवाले कर्मचारी भी पत्रकार माने जाते हैं। यह बात विदेशों की है। हमारे यहां अभी यह भाव नहीं आया। हमारे पत्रकारों की परिभाषा अभी इतनी उदार नहीं हुई। उस के परिरम्भन के बाहु इतने विस्तीर्ण नहीं हुए कि प्रबन्धक को भी लपेट ले। किन्तु साथ ही साथ उसमें इतनी संकीर्णता भी नहीं कि प्रबन्ध सम्पादक जैसे अर्ध सम्पादक को भी वह अलग रखे। प्रबन्ध सम्पादक आधा प्रबन्धक और आधा सम्पादक होता है। जहां तक पत्र की सजावट, आदि में दखल देने का सम्बन्ध है, वहां तक प्रबन्ध सम्पादक सम्पादक होता ही है। और नहीं तो कम-से-कम इसी विचार से वह एक पत्रकार है। अतएव उसका उल्लेख पत्रकारीय कर्यों का उल्लेख करते हुए करना अनुचित नहीं है।

हमारे यहां इस प्रकार के कर्मचारी की अभी तक कोई व्यवस्था न थी। इसका सबसे प्रधान कारण यह था कि हमारे यहां का पत्र प्रकाशन व्यवसाय ही दूसरे प्रकार का व्यापार था। यहां इसकी कम्पनियां न खड़ी होती थीं। अधिकांश में व्यवसाय की दृष्टि से पत्र निकाले ,भी न जाते थे। कुछ लोगों को शौक था और वे निकालते थे। आगे चलकर पत्र प्रकाशन, आवश्यकता पड़ने पर होने लगा। किसी को देश के हित की लगन लगी, उसने जनता तक देश की कथा सुनाना आवश्यक समझा और पत्र को इसका सरल और उत्तम उपाय समझ कर उसका प्रका-

शन किया, किसी ने अपनी दलबन्दी के कारण अपने पक्ष को प्रबल करने के लिए उनकी आवश्यकता समझी और पत्र प्रकाशित हुए। इन सब बातों में प्रायः एक बात प्रधान रहती थी कि जो मनुष्य पत्र प्रकाशित करता था वही अपने विचार जनता पर प्रकट करने को उत्सुक होता था। इस लिए वह स्वयं सम्पादक होता था। उधर चूंकि वही पत्र निकालनेवाला होता था इसलिए उसी को प्रबन्ध सम्बन्धी देख-रेख भी करनी पड़ती थी। फलतः अभी तक एक ही कर्मचारी हिन्दी पत्रोंका सम्पादक और प्रबन्धक दोनों होता था। यह दशा आज भी अधिकांश पत्रोंमें विद्यमान है। किन्तु उस परिपाटी में अब परिवर्तन हो रहा है। कुछ पत्र अब व्यापार की दृष्टि से कमाईके लिए भी प्रकाशित होने लगे हैं। इस प्रवृत्ति की उन्नति हो रही है। व्यापारीगण अखबार निकालने की योजना तैयार करते हैं उसका सब प्रबन्ध करते हैं और सम्पादक तथा अन्य कर्मचारी नौकर रखते हैं। इस प्रकार के सम्पादक पत्र के मालिक नहीं होते। इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें प्रबन्ध सम्बन्धी कामों से कोई सरोकार नहीं होता। वह काम व्यापारी स्वयं करता या अन्य कर्मचारी द्वारा कराता है। इस परिवर्तन के कारण अब यहां भी प्रबन्ध सम्पादक की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है और यत्र तत्र इसका प्रबन्ध भी हो गया है। 'माधुरी' ने स्पष्ट रूपसे अपने प्रबन्ध सम्पादक का नाम भी सम्पादकों के नाम के साथ प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया है। अस्तु।

व्यापार और कमाई की भावना से पत्र निकालने के कारण

ही इस कर्मचारी की आवश्यकता और उत्पत्ति हुई और उसी के कारण इसका प्रभाव भी बढ़ेगा। व्यापारियों को तो आमदनी से मतलब। अधिकांश में वे इस बात की बहुत कम परवा करेंगे कि उनका पत्र आदर्श पत्र हो। जो कुछ चाहेंगे वह यह होगा कि चाहे आदर्श पत्र बन कर और चाहे और किसी प्रकार से जिस प्रकार अधिक आमदनी हो वह काम करना चाहिए। आमदनी देखना और उसका हिसाब लगाना सम्पादकों का काम नहीं है। यह काम प्रबन्ध संपादक के हाथ में होगा। इस लिए स्वभावतः संपादकों की अपेक्षा प्रबन्ध संपादकों का काम पत्र संचालक के लिए अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण होगा। परिणाम यह होगा कि प्रबन्ध सम्पादक की ओर संचालक अधिक झुकेगा और उसका प्रभाव बढ़ेगा। और जहां कहीं ऐसी स्थिति आवेगी जिस में सम्पादक और प्रबन्ध संपादक में आपस में मत भेद होगा वहां संपादक को अपेक्षा प्रबन्ध संपादक की बातों को तरजीह दी जायगी। इन्हीं तमाम बातों को सोचकर प्रथम संपादक सम्मेलन के सभापति पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर ने अपने भाषण में कहा था कि अब यह समय आ रहा है जब एडीटर की अपेक्षा मैनेजिङ्ग एडीटर का प्रभाव अधिक होगा। इधर-उधर से जो समाचार प्राप्त हुए हैं उन से इस बात की पुष्टि भी होती है कि इस का प्रारम्भ हो चला है।

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रबन्ध संपादक आधा संपादक और आधा प्रबन्धक होता है। उसे दोनों काम देखने पड़ते हैं।

इस लिए यह आवश्यक है कि प्रबन्ध संपादक प्रबन्धक और संपादक दोनों कर्मचारियों के कर्तव्यों और कार्यों का पर्याप्त ज्ञान रखे। उचितानुचित का निर्णय करने में उसे प्रवीण होना चाहिए, किसी प्रकार का द्वेष, त्वेष पक्षपात या दुर्भाव न होना चाहिए। किसी बात का केवल इस लिए विरोध न कर बैठना चाहिए कि वह अमुक व्यक्ति द्वारा लिखी गयी है जिस से हम घृणा करते हैं या अमुक व्यक्ति के लिए लिखी गयी है जिस से हम घृणा करते हैं। उसके गुणावगुण का विचार करके ही किसी लेख या समाचार आदि का समर्थन या विरोध करना चाहिए। प्रबन्ध सम्पादक के लिए समय पर आना समय पर काम देखना आदि उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार सम्पादकों और व्यवस्थापकों के लिए। उन्हें साधारण कानूनों का ज्ञान होना भी आवश्यक होता है। प्रेस एक्ट या समाचार पत्र सम्बन्धी अन्य कानूनों की काफी जानकारी तो होनी ही चाहिए। इसके अतिरिक्त चित्रकला, सौन्दर्य तत्व आदि के जानने की भी आवश्यकता है। इससे उसे पत्र की सजावट में बड़ी सहायता मिलेगी। उसे जानना चाहिए कि कौन सा चित्र या कौन सा मैटर किस प्रकार किस स्थान पर देने से अधिक सुन्दर मालूम होगा, कौनसा मैटर किस टाइप में और किस प्रकार देने से सुन्दर लगेगा आदि। उसे सम्पादकों की भांति ही जनता के मनोविज्ञान के बोध की भी आवश्यकता होती है। यदि मनोविज्ञान का बोध न होगा तो यह निर्णय कर सकना उसके लिए

कठिन होगा कि अमुक वस्तु अमुक लेख या अमुक प्रकार की सजावट जनता की रुचि के अनुरूप होगी और अमुक नहीं।

प्रबन्ध सम्पादक का काम दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है। एक सम्पादकीय या अर्ध सम्पादकीय और दूसरा प्रबन्ध संबन्धी। सम्पादकीय कार्यों में उसका इस बात में कोई दखल नहीं होता कि पत्र में प्रकाशित होने के लिए कौन-कौन सा 'मेटर' दिया जाय। सम्पादक जो उचित समझता है वह दे देता है। उसे प्रबन्ध सम्पादक से पूछने या राय लेने की जरूरत नहीं पड़ती। किन्तु मेटर के दिये जाने के बाद प्रबन्ध सम्पादक का काम शुरू होता है। उस समय वह देखता है कि जो 'मैटर' दिया गया है उस से प्रेस को या पत्र संचालक कोई हानि तो नहीं आती। सम्पादक का दृष्टि कोण जनता का हिताहित देखना होता है और प्रबन्ध सम्पादक अपना हिताहित देखता हैं। दोनों के दृष्टि कोणों में यह अन्तर होता है। यदि प्रबन्ध सम्पादक इस प्रकार के निरीक्षण में कोई ऐसी बात पाता है जिस से उसकी दृष्टि में पत्र को या पत्र संचालक को धक्का लगने की आशंका होती है तो वह फौरन सम्पादक से उस के निकालने की सिफारिश करता है। सम्पादक भी यदि उसे उचित समझता है तो वह मैटर निकाल दिया जाता है। अभी यहां पर सम्पादकों को इतना अधिकार प्राप्त है कि विना उनकी मर्जी कोई मैटर निकाला नहीं जा सकता किन्तु इस बात की आशंका सोलहो आना बनी हुई है कि आगे चलकर ऐसा समय आये

जब सम्पादक की स्वतन्त्रता और उनके अधिकार कम हों और प्रबन्ध सम्पादक जब जिस मैटर को चाहे विना सम्पादक की राय के भी निकाल बाहर करे। इस प्रकार की बातें पश्चिम में होने भी लगी हैं। मि० ली वारेन ने अपनी पुस्तक "जर्नलिज़्म" में एक स्थान पर इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि यूरोपीय महासमर के अवसर पर कुछ समाचार पत्रों ने ऐसी खबरें छापनी शुरू कीं जिन से हानि की आशंका थी, कम से कम जो ब्रिटिश सरकार की नीति के विरुद्ध थीं। इस पर सरकारी प्रहार शुरू हुआ। दो अखबार बिलकुल कुचल दिये गये। यह देख कर अन्य समाचार पत्र वालों के कान खड़े हो गये। उन्हों ने अपने यहां सरकारी नीति के विरुद्ध लेख छापना बन्द कर दिया। किन्तु इतने पर भी एक सम्पादक ने उसी प्रकार का लेख देने की धृष्टता की। प्रबन्धक महोदय की उस पर आंख पड़ी और उन्होंने सम्पादक महोदय की राय लिए बिना उसे निकाल दिया। इस प्रकार की बात भारत वर्ष में और हिन्दी में भी शुरू हो गयी हैं। यत्र तत्र इसके प्रमाण भी मिलते हैं।

प्रबन्ध सपादक का, जहां यह कर्तव्य है कि वह अपने हिताहित का बिचार रखे वहीं उसे यह भी आवश्यक होता है कि वह इस बात का प्रयत्न करे कि उस के पत्र के पाठकों को अधिक से अधिक सुविधा प्राप्त हो। 'मैटर' के सम्बन्ध की सुविधा में तो उसका हाथ नहीं होता किन्तु वह छपाई सफाई आदि बातों में इसका पूरा ख्याल रख सकता है। अधिकांश में हमारे यहां यह होता

है कि पत्र का मैटर देकर सम्पादक लोग अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। पत्र की सजावट आदि पर बहुत कम ख्याल किया जाता है। यह काम प्रबन्ध सम्पादक अच्छी तरह कर सकता है। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह देखे कि मेटर का जो 'टाइप' इस्तेमाल किया जाता है वह ठीक साफ और सुन्दर है या नहीं चित्र आदि अच्छे उठे हैं या नहीं, कागज अच्छा लगा है या नहीं। पत्र का 'फोल्डिंग' वगैरह अच्छा हुआ है या नहीं इत्यादि इत्यादि और इन बातों में जहां कोई घटाने बढ़ाने तथा संशोधन परिवर्तन की आवश्यकता हो वहां उचित संशोधन कराने का प्रयत्न करे।

दो बातों की ओर और भी प्रबन्ध सम्पादक का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित होना चाहिए। पहिली बात है पत्र के प्रकाशन की और दूसरी विज्ञापन की। पत्र के प्रकाशन में उसे इस बात का बहुत अधिक ख्याल रखना चाहिए कि पत्र के प्रकाशन का जो समय हो उस समय पर वह अवश्यमेंव प्रकाशित हो जाय। इस सम्बन्ध में बहुत अधिक सावधानी की आवश्यकता है। इस को इतना आवश्यक समझना चाहिए कि इसके लिए चाहे जितना परिश्रम पड़ जाय किन्तु इसका पालन अवश्य किया जाय। हिन्दी में यह बड़ा दोष है कि उसकी पत्र पत्रिकाएं (अधिकांश में मसिक पत्रिकाएं) ठीक समय पर प्रकाशित नहीं होती। इस से पाठकों को एक अनावश्यक इन्तजारी और चिन्ता करनी पड़ती है जिस से उन के हृदय में पत्र के प्रति भाव खराब हो जाता है। इस लिए ठीक समय पर प्रकाशित करने का प्रबंध अवश्य करना

चाहिए। विज्ञापन के सम्बंध में प्रबंध सम्पादक का काम यह नहीं होगा कि वह यह देखे कि कितने विज्ञापन प्राप्त हुए और कहां से प्राप्त हुए। यह काम व्यवस्थापक का होगा। प्रबंध सम्पादक केवल यह देखेगा कि जो विज्ञापन प्राप्त हुए हैं वे अश्लील और कानून विरुद्ध तो नहीं है। हिन्दी में अश्लील विज्ञापन अकसर निकला करते हैं जिनसे जनता की रुचि बिगड़ती और सामूहिक रूप से समाज को हानि पहुंचती है। इस बात की शिकायत इतनी अधिक हो गयी कि यंग इण्डिया में महात्मा गांधी तक को इस विषय में, इस के प्रचार को रोकने के लिए कलम उठानी पड़ी थी। जुआ, चोरी आदि गैर कानूनी बातों को उत्तेजित करने वाले तथा अश्लील आदि अनेक विज्ञापन गैर कानूनी होते हैं और उन पर मुकदमें तक चल जाते है। अभी हालही में पटनासे प्रकाशित होने वाले 'महाबीर' नामक साप्ताहिक पत्रपर अश्लील विज्ञापनोंको प्रकाशित करने के कारण दो मामले चल चुके हैं जिनमें उसे सजा भी मिल चुकी हैं। प्रबंध सम्पादक को चाहिए कि इस प्रकारके विज्ञापन बन्द कर दे। यद्यपि यह ठीक है कि इससे पत्रों की आमदनी को कुछ धक्का लगेगा किंतु पत्रोंके पवित्र उद्देश्य के सामने इस प्रकार के धक्कों की परवा न करनी चाहिए। हर्ष का विषय है कि 'प्रताप' जैसे कुछ समाचार पत्र इस विषय में काफी सावधानी रखते हैं और अश्लील और कुरुचिवर्धक विज्ञापन लेने से स्पष्ट इन्कार कर देते हैं। दूसरे पत्रों को भी इस सम्बंधमें इनका अनुकरण करना चाहिए।

विज्ञापनों की एक दिशा और भी है। ऊपर जो कुछ कहा गया वह दूसरे विज्ञापनों के अपने यहां छापने की बात है। दूसरी बात है अपने अपने विज्ञापनों को दूसरे के यहां या अपने आप छपवाना या छापना। जहां प्रबंध सम्पादकको यह देखना चाहिए दूसरे के विज्ञापन अपने यहां किस प्रकार छप रहे हैं वहां उसे यह भी देखना चाहिए कि अपने पत्र के विज्ञापन का क्या प्रबन्ध है। अपने पत्र के विज्ञापन को दूसरे पत्रों में प्रकाशित करने का जो प्रबन्ध हो वह तो हो ही अपने आप अपना विज्ञापन करने की परिपाटी भी डालनी चाहिए। पाश्चात्य देशों में और भारतके भी अंग्रेजी पत्रोंमें यह नियम है कि अपनी खास खबरों को सूचना मात्र के लिए बड़े बड़े पोस्टरों पर छापकर यत्र तत्र चिपका देते हैं उन पोस्टरों में प्रायः इस प्रकार का मजमून होता है :—'देश बन्धुदास का देहांत हो गया ' खड्गपुर में गोली चल गयी', सीमा प्रांत के हिंदू निकाले जा रहे हैं' आदि। पोस्टरों में छपवाने के अलावा इसी प्रकार की बातें 'हाकरों' को भी बता दी जाती हैं जो इन्हीं को पुकारते हुए अखबार बेचा करते हैं। हिंदी पत्रों के प्रबन्ध सम्पादकों को इस प्रथा का भी अनुसरण करना चाहिए।

सबसे अधिक महत्व पूर्ण कार्य यह है कि प्रबन्ध सम्पादकको अपने पत्र को एक सुसंगठित छोटी सी संस्था बनाने का प्रयत्न करना चाहिए जिस में उसके कर्मचारी तन मन धन से एक सन्स्था की भांति उस की रक्षा और सेवा में जुटे हुए हों। इस में ऐसा प्रबन्ध हो कि कर्मचारि मण्डल की सुविधा के लिए संस्था

के अपने वकील, अपने डाक्टर अपने डाकघर, अपने तार घर और अपने ही मनोरञ्जन और खेल कूद के सामान आदि हों। येबातें बड़ी दूर की हैं अभी पाश्चात्य देशोंतक में जहां सम्पादन कला की काफ़ी उन्नति हो चुकी है, इन बातों की व्यवस्था नहीं हुई,हां, वे उस की ओर अग्रसर अवश्य हो रहे हैं; किंतु फिर भो हमारा उद्देश्य ऊंचा होना चाहिए। हमें अपने दिमाग में इन स्कीमों को रखना चाहिए और इस की ओर अग्रसर होने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। क्या आश्चर्य है कि हमारा प्रयत्न पाश्चात्य देशों से पहिले सफल हो जाय। तथास्तु।

——:०:——

समाचारपत्र पठन

———:०:———

अब कूप मण्डूकता और संसार को उपेक्षा भाव से देखने के दार्शनिक विचारों का जमाना गया। वर्तमान समय हमसे तकाजा करता है कि हम संसार से संबन्ध रखनेवाली बातें अधिक-से-अधिक परिमाण में जानें। एक जमाना था जब हम दूसरे देशों से, वहां की राजनीतिक, साहित्यिक, सभ्यता संबन्धी आदि किसी परिस्थिति से संबन्ध न रखते थे। हमारा देश प्राकृतिक सीमा बन्धन से इस प्रकार अलग कर दिया गया है कि जब तक विशेष साधन जुटाए न जायं तब तक हम किसी से किसी प्रकार संबन्ध स्थापित ही नहीं कर सकते। पूर्वकाल में हमारे पास वैसे साधन न थे कि हम संसार के अन्य देशों के सम्पर्क में आते, न संसार के दूसरे देशों के पास ही ऐसे कोई विशेष साधन थे कि वे हमसे मिलने की कोशिश करते। इस लिए हम दूसरे देशों के सम्पर्क में आते ही न थे। संभव है इसी लिए हममें संसार के प्रति एक प्रकार की उपेक्षा भावना रही हो, किन्तु अब वह बात नहीं रही। दुर्भाग्य से या सौभाग्य से हम संसार के तमाम देशों के सम्पर्क में आ गये है और दिन दिन यह सम्पर्क बढ़ता जा रहा है। अब अवस्था यह हो गयी है कि हमारे लिए यह संभव नहीं है कि इस सम्पर्क की उपेक्षा कर सकें। यदि हम उनसे न मिलें तो वे हमसे मिलेंगे। उन्हें रोकने का न हमें कोई अधिकार है न

साधन। ऐसी अवस्था में यह मेल-मिलाप बन्द नहीं हो सकता। अब जब कि यह मेल-मिलाप निश्चय ही है तब इस बात की आवश्यकता आ पड़ी है कि हम योग्यता पूर्वक इस सम्पर्क का निर्बाह करें। यदि सावधानी और सतर्कता में जरा भी चूके तो हम चाहे कुछ भी न करें किंतु दूसरे हमें मटियामेट कर देंगे। इस लिए आवश्यकता है कि हम इस योग्यता को अधिकाधिक प्रयत्न करके प्राप्त करें। इसके लिए हमें दूसरे देशों में होनेवाली घटनाओं और वहां की सरकारों की मनोबृत्तियों का पता रखना आवश्यक है। इसका सबसे अच्छा साधन समाचार पत्र पठन है। इस लिए समाचार पढ़ना इस समय के लिए नितांत आवश्यक हो गया है।

समाचार पत्र पठन की आवश्यकता केवल विदेशों के सम्बंध की बात जानने के ही लिए नहीं है उसकी आवश्यकता अपने देश की बातों के लिए भी उतनी ही प्रत्युत उस से किसी अंश में अधिक होती है। हमारे लिए यह जानना भी कम आवश्यक नहीं होता कि हमारे देश में कहां क्या हो रहा है और कौन नेता या कौन समाज सेवक हमारे लिए क्या काम कर रहा है, उसके कामों का देश में क्या प्रभाव पड़ रहा है या पड़ेगा, उन में कहां कहां त्रुटियां हैं और उन त्रुटियोंका किस प्रकार परिशोधन किया जा सकता है, सरकार क्या कर रही है, कौन से नये कानून बन रहे रहे हैं, उन से देश की दशा पर क्या प्रभाव पड़ेगा, देश को साहित्यिक अवस्था कैसी है, कौन कौन सी पुस्तक कैसी निकली है,

किस विषय पर किस बड़े आदमी के क्या विचार है धार्मिक अवस्था में क्या परिवर्तन हो रहा है, क्या होना चाहिए, नाटक थियेटरों सिनेमा आदि जिनका प्रचार बढ़ रहा है, क्या प्रभाव डाल रहे हैं, हमारी उन्नति में उनका कहां तक हाथ है, कौन सा नाटक या कौन सी फिल्म हमारे लिए अच्छी है, कौन सी बुरी, आदि। उन तमाम बातों के जानने की आवश्यकता समाचार पत्रों के पठन से ही पूरी की जा सकती है। देश के नेता गण रातो दिन हमारी सेवा किया करते है। यदि समाचार पत्र पठन की प्रथा न हो तो हम उनको इन सेवाओं से परिचय हो न प्राप्त कर सकें और इस प्रकार उनकी सेवाओं के लिए आवश्यक और उचित कृतज्ञता प्रकाश करने का मानवीय कर्तव्य भी पूरा न कर सकें। इन तमाम बातों में समाचार पत्र पठन की उपयोगिता और आवयश्कता है।

किन्तु समाचार पत्रों का पढ़ना भी एक खास किस्म का पढ़ना होता है। उपन्यासों और पाठ्य पुस्तकों की भांति समाचार पत्र नहीं पढ़े जाते। नानाविध समाचारों और भांति भांति के विचारों से भरे हुए समाचार पत्र में अपने मतलब की बात छांट लेने के लिए समाचार पत्र के पढ़ने वालों में योग्यता होनी चाहिए। यह योग्यता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता पड़ती है। इसी लिए अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में पत्रकार कला के विद्यार्थियों को जहां अन्य समग्र बातों की शिक्षा दी जाती है वहां समाचार पत्र पठन सम्बन्धी शिक्षा भी

विशेष प्रकार से दी जाती है। समाचार पत्र मानव जीवन और मानव समाजको उन्नत करने और एक निश्चित मार्ग दिखाने वाले होते हैं। किन्तु ये बातें उसी समय हो सकती हैं जब हम उचित रीति से समाचार पत्र पढ़ें। पत्र सम्पादक जनता की सहूलित के ख्याल से समाचारों को उन के महत्व के अनुसार पहिले ही सजा कर रखते हैं ताकि जनता क्रमानुसार उन्हें पढ़े और लाभ उठाये। फिर यह जनता काम होता है कि उस व्यवस्थित सम्पादकीय कार्य का उचित उपयोग करे। जहां सम्पादक का यह काम है कि वह समाचारों को व्यवस्था पूर्वक रखे वहां जनता का यह कर्तव्य है कि वह उस व्यवस्था की उचित दाद दे।

समाचारपत्र पठन के इतिहास में जनता की मनोवृत्ति के उत्थान पतन का बड़ा सुन्दर दृश्य देखने को मिलता है। समाचारपत्रों में समाचार और विचार दो भिन्न-भिन्न बातें स्पष्ट रूप से रहती हैं। किंतु समाचार पत्रों के इतिहास को देखने से पता चलता है कि प्रारम्भ में उनमें विचारों को स्थान नहीं मिलता था। इस लिए पढ़नेवाली जनता भी प्रारंभ में समाचार ही पढ़ती थी। धीरे-धीरे पत्रों में सम्पादकीय विचार प्रकाशित होना भी शुरू हुआ। सम्पादकीय विचार प्रकाशित करने का ढंग बड़ा आकर्षक रखा गया। उनके प्रकाशित होने पर, चाहे उनके आकर्षक बनाने के ढंग से और चाहे विचार जानने की उत्सुकता के कारण लोग उन्हें पढ़ने लगे। इस प्रवृत्ति ने उन्नति की। अब लोगों में संपादकीय विचार जानने की उत्सुकता और भी बढ़ने लगी। जब

समाचार पत्र के सम्पादकों और सञ्चालकों ने यह देखा तब वे समाचार पत्रों को अपने विशेष मत का प्रचार करने का साधन बनाने लगे। इससे समाचार पत्रों में सम्पादकीय विचार प्रकट करने की प्रथा बढ़ी। और इस प्रथा ने रूढ़ि डाल दी कि समाचार पत्रों में विचार प्रकट होएं ही। तदनुसार प्रत्येक समाचार पत्र में समाचार के साथ-साथ विचार भी अनिवार्यतः रहने लगे। यह रूढ़ि अब तक चली आ रही है। किंतु अब फिर यह प्रथा पलट रही है। अब मानव स्वभाव में एक विशेष परिवर्तन हुआ है। मानव जीवन के प्रत्येक अंग में स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन की भावना जाग्रत हो उठी हैं। इस जागृति ने यह भाव भी पैदा कर दिया है कि हम अपने स्वतंत्र विचार क्यों न रखें? क्या जरूरत है कि हम किसी दूसरे के—चाहे वे किसी सम्पादक के हों चाहे किसी अन्य व्यक्ति के—विचारों को पढ़ कर किसी विषय पर अपना मत निश्चित करें? विना उनके पढ़े ही क्यों न सोचें विचारें और अपना मार्ग निश्चित करें? इस प्रकार का भाव उठते ही वे सम्पादकीय विचार पढ़ने की ओर कम ध्यान देने लगे। विचार पढ़ने की ओर से ध्यान हटा लेने का एक कारण यह भी है कि लोगों में यह विचार पैदा हुआ कि जब हम समाचार जानकर अपने विचार के अनुसार कार्य प्रणाली निश्चित कर ही सकते हैं तब सम्पादकीय विचारों को पढ़ने में कोई समय क्यों नष्ट करें? इसके अतिरिक्त सम्पादकीय लेखों द्वारा सच्चाई, औचित्य, न्यायादि का विचार छोड़कर, गलत या सही अपने

विशेष मत के समर्थन करने की समाचार पत्रीय प्रवृत्ति ने भी सम्पादकीय लेखों के प्रति इस उपेक्षा भाव को पैदा करने में सहायता दी। इन तमाम बातों का परिणाम यह हुआ कि एक बार फिर जनता का ध्यान सम्पादकीय विचार छोड़कर समाचारों की ओर खिंचा। अब यह प्रवृत्ति इतनी अधिक फैल गयी है कि जब किसी सम्पादक को अपने लेख पढ़वाने होते है तब वे पत्र के ऊपर बड़े-बड़े टाइप में लिख देते हैं कि "बिना सम्पादकीय लेख पढ़े पत्र नीचे न रखियेगा।" यह दशा अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में है। यहां अभी यह इस रूप में सामने नहीं आयी किन्तु प्रारम्भ यहां भी हो चला है और लोग सम्पादकीय विचार जानने की अपेक्षा समाचार पढ़ने को ही अधिक आवश्यक और अधिक उचित समझने लगे हैं।

जनता की यह प्रवृत्ति कहां तक अनुमोदनीय हैं इस विषय पर विचार करना अनुचित न होगा। यह ठीक है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वतन्त्र विचार रखने का हक है। और प्रत्येक व्यक्ति समाचारों को पढ़कर अपने विचार निश्चित कर सकता है किंतु सम्पादकीय विचार पढ़ लेने के बाद भी किसी की इस स्वतन्त्रता पर कोई आघात नहीं हो सकता। कहा जा सकता है कि यह तो ठीक है किंतु इससे समय तो व्यर्थ नष्ट होगा। किंतु जहां इसमें कुछ समय खर्च होगा वहां यह लाभ भी हैं कि जनता को अपना निश्चय करने में सहायता भी प्राप्त होगी। जिन लोगों ने जमाना देखा है और जिन्हें जिस विषय पर अपने विचार

निश्चय करने है उस विषय का काफी ज्ञान है उनके लिए चाहे उतने अंश में सम्पादकीय विचार पढ़ने की आवश्यकता न भी मानी जाय किन्तु जन साधारण के लिए, सम्पादकीय विचारों का पढ़ना बहुत आवश्यक है। सम्पादक उनके सामने अपने विचार तर्क और युक्ति पूर्वक रखता है। उसके विचारों में अपेक्षा कृत अधिक अनुभव और ज्ञान की आशा होती है। इस लिए उसके विचार अधिक प्रौढ़ और अधिक योग्य होते हैं। जन साधारण अपने अनुभव और ज्ञान की कमी के कारण उतना सर्वतोमुखी निर्णय करने में असफल हो सकता है। इस लिए संपादकीय विचारों का पढ़ना आवश्यक है। एक बात और, और वह यह कि भिन्न-भिन्न संपादक भिन्न-भिन्न रूपमें अपने विचार जनता के सामने पेश करते हैं। कोई आंदोलन विशेष का समर्थन करता है कोई विरोध। दोनों ओर की बातें जनता के सामने आती हैं। यदि जनता इन बातों की उपेक्षा करके टाल दे तो वह दोनों ओर की इतनी अधिक बातें जान सकने में शायद ही समर्थ होगी और बिना दोनों ओर की विस्तृत बातें जाने हुए ही कोई निर्णय—अच्छा निर्णय नहीं हो सकता। इसके विपरीत यदि जनता उन विचारों को पढ़ेगी तो दोनों ओर की बातें सोच कर वह अपना विचार अपने आप निश्चयकर सकेगी। विभिन्न विचारों के सामने आने से एक लाभ और होता है। वह यह कि जनता को तर्क वितर्क करने का अधिक अवकाश मिलता है और इस ऊहापोह में उसकी तर्क शक्ति उन्नत होती है। यदि वह समा-

चार पत्र के संपादकीय विचार न पढ़े तो इस शक्ति के विकास को भी उतना अवकाश न मिल सकेगा। इस प्रकार जहां तक मालूम होता है, संपादकीय विचारों का पढ़ना आवश्यक हैं।

समाचार पत्र के मुख्यतया तीन अंग होते हैं—समाचार, विचार और विज्ञापन। जिस रूप से इनका यहां पर उल्लेख किया गया हैं उसी क्रम से वे एक दूसरे की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण भी होते हैं। समाचार पत्र के पढ़ने में इस महत्ता को ध्यान से न हटाना चाहिए। समाचार समाचार पत्र का सब से अधिक महत्वपूर्ण और प्रधान अंग है। इस अंग के पढ़ने की कुशलता भी सबसे अधिक कठिन है। कौन सा समाचार हमारे लिए कितना अधिक लाभ-दायक होगा, कौन हमारे काम का है और कौन नहीं, किस समाचार के पढ़ने में समय और शक्ति का सदुपयोग और किसके पढ़ने से दुरुपयोग होगा आदि आदि बातें समाचार पत्र के पाठक को जाननी चाहिए। भिन्न-भिन्न विषयों के नानाविध समाचारों में से अपने मतलब और अपने काम के समाचार पढ़ सकना ही पाठक का सर्व श्रेष्ठ गुण है। उसमें इतनी साहित्यिक योग्यता भी होनी चाहिए जिससे वह समाचारों की भाषा सरलता-पूर्वक पढ़ और समझ सके।

समाचार पढ़नेवाले को एक बात और भी जाननी जरूरी होती हैं। घटना सम्बन्धी—-आग लगने, बाढ़ आने, रेल के लड़ जाने, दंगा फसाद हो जाने आदि के समाचारों में तो कोई खास बात नहीं होती परन्तु सभा समितियों सम्बन्धी समाचार पढ़ने

में इस बात की आवश्यकता होती है कि पाठक सभा समितियों के साधारण नियमों को जाने। सभापति, मन्त्री, आदि कौन है, इनके क्या अधिकार होते हैं, विषय निर्धारिणी और वास्तविक अधिवेशन क्या है, प्रस्ताव किसको कहते हैं, संशोधन क्या है, प्रस्ताव या संशोधन का वापस ले लेना क्या है, कार्यवाही स्थगित करने के प्रस्ताव का क्या अर्थ होता है, आदि अनेक बातें पाठक को जान लेना चाहिए। बिना इनके जाने हुए वह किसी सभा सोसाइटी कौंसिल कांग्रेस आदि की कार्यवाही को उचित रीति से नहीं पढ़ सकेगा और न उससे समुचित लाभ उठा सकेगा। समाचारों में सभा समितियों के समाचार बहुत अधिक महत्व रखते हैं। इस लिए इनके पढ़ने और समझने की योग्यता प्राप्त करना बहुत आवश्यक होता है।

विचारों को पढ़ने के लिए पाठकों में किञ्चित् अधिकमात्रा में साहित्यिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। गहन और गूढ़ विषयों पर विचार प्रकट करते हुए भाषा के जटिल हो जाने की सम्भावना रहती है। इस लिए यदि पाठक में काफी साहित्यिक ज्ञान न हुआ तो यह आशंका हो सकती है कि वह संपादकीय स्तम्भों में प्रकट किये गये विचारों से आवश्यक लाभ न उठा सके। विचारों के पाठक में साहित्यिक ज्ञान के अतिरिक्त सावधानी भी अन्य अंगों के पाठकों की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए। उसकी दृष्टि अधिक पैनी होनी चाहिए ताकि वह देख सके कि संपादकीय विचार लिखने में सच्चाई और ईमानदारी से काम

लिया गया है या सम्पादक ने किसी स्वार्थ की बेदी पर अपने स्वतन्त्र विचारों की बलि चढ़ा दी है। एक अंग्रेजी लेखक के शब्दों में He should read between the lines विचार पढ़नेवाले को अभिधा की अपेक्षा व्यञ्जना शक्ति से अधिक काम लेना चाहिए। उसमें तर्क शक्ति भी पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए ताकि वह इस बात का निर्णय कर सके कि संपादकीय विचार कहां तक समर्थनीय है।

विज्ञापनों के पढ़ने के लिए किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं है। विज्ञापन तो लिखे ही ऐसी भाषा में और ऐसे ढंग से जाते है कि अत्यन्त अल्प योग्यता वाले व्यक्ति भी उनको समझ और पढ़ सकें। हां, एक गुण जरूर होनी चाहिए। वह यह कि वे हर एक की बातो में एकाएक विश्वास न कर बैठते हों। विज्ञापक लोग अपनी अपनी वस्तुओं की अनावश्यक और झूठी तारीफ प्रकाशित करवाते हैं। यदि पाठक में उक्त शक्ति न हुई तो वह विचारा इन झूठी बातों का मुफ्त में शिकार होकर अपनी हानि कर बैठता हैं। इसके सिवा विज्ञापन पढ़ने के लिए किसी विशेष गुण की आवश्यकता नहीं होती।

ऊपर कहा जा चुका है कि समाचार पत्र का पढ़ना उपन्यासों और पाठ्य पुस्तकों के पढ़ने से भिन्न और कठिन होता है, पुस्तकों में जिस विषय का वर्णन शुरू हुआ वह जब तक समाप्त नहीं होता तब तक बराबर चला जाता है। किंतु समाचार पत्रों में इस नियम का पालन नहीं हो पाता। समाचार पत्र की बनावट

सजावट स्थान परिमितता आदि के कारण उसमें इस नियम का पालन हो ही नहीं सकता। इस लिए होता यह हैं कि विषय प्रारंभ करके जहां तक सुविधा हुई वहां तक ले जाया जाता है और जहां से असुविधा शुरू हुई वहां से रोक कर दूसरे सुविधा जनक स्थान पर उठाकर लेजाया जाता है। यदि पाठक इस बात को न जानते हुए कि ऐसा नियम है तो यह डर होता है कि वे अधूरा विषय ही छोंड़ दें। सुविधा के लिए यह नियम है कि ऐसे अवसरों पर जहां से लेख उठाया जाता है और और जहां लेजाया जाता है-दोनों स्थानों पर इस बातका उल्लेख कर दिया जाता हैं। किन्तु कभी कभी ऐसा नहीं भी होता। प्रायः जब लेख एक कालम से उठा कर दूसरे पास वाले कालम के नीचे दिया जाता है तब इस नियम की उपेक्षा कर दी जाती है। इस लिए यह नियम जानना पाठकों के लिए आवश्यक होता है। एक बात और भी होती है। वह यह कि एक पुस्तक के एक ही विषय की भांति एक समाचार पत्र में एक ही विषय का समावेश होकर नहीं रह जाता। उसमें अनेकानेक विषयोंका समावेश रहता है और प्रत्येक पत्र उस विषयके समाचार विचार और विज्ञापन को अधिक महत्व का स्थान देता है जिस विषयसे उसका अधिक सम्बन्ध होता है। दूसरे विषय के समाचार आदि को उतना महत्व पूर्ण स्थान नहीं देता। इस लिए पाठकों में इस गुण की भी आवश्यकता होती हैं कि वे केवल महत्व पूर्ण स्थानों के बड़े बड़े हेडिङ्ग वाले समाचार ही पढ़ कर यह न मान बैठें कि पत्र में उनके मतलब

की कोई बात ही नहीं हैं प्रत्युत साधारण स्थान के समाचारों पर भी दृष्टिपात अवश्य कर लें।

यह दुख और दुर्भाग्य को बात है कि हमारे यहां समाचार पत्र पढ़ने की प्रवृति बहुत कम है। जब पाश्चात्य देशों के छोटे से छोटे मेहतर से लेकर बड़े से बड़े लक्षाधीश तक समाचार पत्र पढ़ते हैं, जो नहीं पढ़ सकते वे दूसरों से सुनते हैं और जो स्वयं सुनने के लिए उपस्थित नहीं हो सकते उन्हें पत्र पढ़ने वाले सुनाने जाते हैं, तब हमारे यहां अनेक पढ़े लिखे अच्छे अच्छे विद्वान तक समाचार पत्र पढ़ने की ओर ध्यान नहीं देते, छोटे और अशक्त व्यक्तियों की तो बात ही क्या। इसके कई कारण हैं। पहिले तो हम में अभी शिक्षा ही नहीं। हम में से बहुत कम लोग इतनी योग्यता रखते हैं जो समाचार पत्र पढ़ और समझ सकें। दूसरे यदि कुछ ऐसी योग्यता वाले व्यक्ति हैं भी तो उनको अपना पेट भरने के लिए इतनी कठिन मेहनत करनी पड़ती है कि रातो दिन पशुओं की भांति जुटे रहते है तब कहीं पेट भर पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इस कठिन परिश्रम के बाद उनमें इतनी शक्ति ही शेष नहीं रहती और न इतना समय ही रहता है कि समाचार पत्र पढ़ें हमारी दरिद्रता भी इन कारणों में से एक खास कारण है। जब पेट भरने को हमारे पास पैसे नही होते तब समाचार पत्र कौन खरीदे और कौन पढ़े। ईश्वर ने जिन्हें कुछ सामर्थ्य दिया है जो पैसे खर्च कर समाचार पत्र मँगा सकते हैं उनमें अधिकांश में शिक्षा नहीं और जिनमें शिक्षा और

धन दोनों है वे, यदि व्यापारी हुए तो कहते है कि समाचार पत्र पढ़ने में जो समय व्यय होता है उससे व्यापार में हानि होती है और यदि व्यापारी न हुए तो उनमें यह धारणा होती है कि समाचार पत्र पढ़ने में जितना समय लगेगा उतने में यदि अन्य पुस्तक आदि पढ़ लेंगे तो अधिक लाभ होगा। इस प्रकार की धारणाओं के कारण देश की अधिकांश जनता समाचार पत्र के आवश्यक लाभ से वञ्चित रहती है। ईश्वर शीघ्र वह दिन लाये जब इन भ्रामक धारणाओं का अंत हो और लोग समाचार पत्र पढ़ने की महत्ता को स्वीकार करते हुए उन से अधिकाधिक लाभ उठायें और उन्हें फलने फूलने का सुअवसर दें।

——:०:——

गत्यवरोध के कारण

——:०:——

किसी गुलाम देश में उन्नति के साधनों का जिस प्रकार गला घोंटा जाता है, उसी प्रकार का व्यवहार भारतवर्ष के साथ भी हो रहा है। यह भी एक गुलाम देश है। और गुलामी का पाप मेघमाला की भाँति उन्नति के आतप को सदा ढके रहता है। विदेशी शासक स्वभावतः यह चाहते हैं कि शासित जाति सदा कमजोर बनी रहे, ताकि उसको चूसने का अवसर कभी हाथ से न छूट जाय। इसके लिए सब से प्रधान उपाय शासित देश की संस्कृति और शिक्षा को कुचल देना है। इसी लिए ज्योंही कोई राष्ट्र किसी देश पर अधिकार जमाता है, त्योंही वह उसकी शिक्षा और उसकी संस्कृति को बदल देने का प्रयत्न करने लगता है। इन दोनों बातों को—शिक्षा और संस्कृति को—उन्नत करने के जितने उपाय होते हैं, विदेशी शासन का प्रहार पहले उन्हीं पर होता है। समाचारपत्र शिक्षा-संस्थाएँ आदि इनको उन्नति के प्रधान साधन हैं; इस लिए, विदेशी शासकों का ध्यान पहले इन्हीं संस्थाओं पर पड़ता है। हमारे समाचार पत्रों के गत्यवरोध का सबसे प्रमुख कारण यही है। पण्डित माखनलालजी के शब्दों में "भारत के समाचारपत्रों का उत्थान तथा विकास विदेशी सरकार के क़ानून के अस्त्रों द्वारा बार-बार रेता गया है।" रेतने

की यह क्रूरक्रिया आज तक जारी है। ज्यों-ज्यों पत्रों के स्वर में उन्नति देखी जाती है, त्यों-त्यों उनको दबाने के नये-नये उपाय सोच निकाले जाते हैं। समाचारपत्रों का स्वर तनिक ऊँचा होते ही झट प्रेस ऐक्ट का अनुसन्धान किया गया। यह भयानक दैत्य न जाने कितने नवजात और उन्नति-शील समाचारपत्र निगल गया। ज़रा-ज़रा-सी बात में ज़मानतों की तलबी, उनकी ज़ब्ती, स्वयं प्रेस तक की ज़ब्ती आदि से अनेक समाचरपत्र-विशेष कर वे जिनके पास धन की या धन के साधनों की कमी थी—अकाल में ही काल-कवलित हो गये। अनेक समाचारपत्र इस राक्षस के भयसे निकलेही नहीं। जो पत्र निकलते रहे और प्रहारपर प्रहार तथा अपदाओं पर आपदाएँ झेलते हुए भी चलते रहे, वे अपनी गति में आवश्यक और अपेक्षित उन्नति न कर सके। अब यद्यपि जनता की जागृति के कारण प्रेसऐक्ट की वह भयंकरता दूर हो गई है, तथापि अभी ताजीरात हिन्द, जाब्ता फौजदारी आदि में अनेक ऐसी धाराएँ मौजूद हैं, जिनके कारण हमारे मुंह और कलम पर सदा ताला पड़ा रहता है। कहीं १०७ धारा दिखाई जाती है कहीं १२४ अ का प्रदर्शन होता है, कहीं १५३ अ का प्रयोग किया जाता है, कहीं क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट ऐक्ट सामने आता है और कहीं पुलिसऐक्ट की लाल-लाल आँखें घूमती दिखलायी पड़ती हैं। शासकोंकी क्रूर-वृत्ति इतनेपर भी सन्तोष नहीं करती। इन शस्त्रास्त्रों के होते हुए भी यह प्रयत्न बना ही रहता है कि

लिखने और बोलने की आजादी छीनने के लिए नये-नये कानून सोचे और गढ़े जायं। इसी उद्देश्य से धर्म संरक्षण के नाम पर एक कानून अभी हाल ही में और बनाया गया है। पब्लिकसेफ्टी (सार्वजनिक शांति रक्षा) कानून का निर्माण भी हो रहा है। अब बताइए जहाँ शासक स्वयं नंगी तलवार लिए सदा सिर पर खड़ा रहता हो, वहाँ पत्रों की उन्नति हो तो कहाँ से ? हमें बात बात में फूंक-फूंक कर कदम रखना पड़ता है। एक ओर राष्ट्र की उन्नतिके अर्थ हम अपने पत्रोंको अधिकसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए छटपटाया करते हैं, और दूसरी ओर यह देखना पड़ता है कि कहीं कानून के फौलादी पंजे में न आ जायं। इस खींचा तानी के कारण हमारे समाचार पत्रों का मार्ग बहुत संकीर्ण और कंटकाकीर्ण हो गया है। पण्डित माखनलालजी ने समाचार पत्रों के गत्यवरोध के कारणों की ओर इशारा करते हुए, सम्पादक सम्मेलनके सभापति की हैसियत से, कहा था—"हमारे समाचार पत्रों को तीन बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं—एक तो यह कि कहीं कानून न धर दबाये, दूसरे यह कि राष्ट्र की उन्नति कैसे हो, और तीसरे यह कि व्यावसायिक दृष्टि से समाचार पत्र कैसे जारी रक्खे जायं।" हमारे समाचार पत्रों को इस प्रकार एक साथ तीन तीन बातों की ओर ध्यान रखना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने निश्चित उद्देश्य की ओर निर्द्वन्द्व और निश्चिन्त होकर बढ़ ही नहीं पाते। और इसी लिए अपेक्षित उन्नति में व्याघात होता है। ये दोष और अवरोधक

कारण विदेशी शासन के पाप के कडुए फल हैं।

शासक-गण हमें अन्य प्रकार की असुविधओमें भी डालते हैं। पोस्टआफिस, तार, रेलवे आदि में भी हमारे लिए इतने कड़े नियम और इतने अधिक महसूल रक्खे गये है कि उनको पूरा करने में हमें बहुत बड़ी क्षति उठानी पड़ती हैं। ये महसूल दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। इन बातों के अलावा सरकार की ओर से हमें सरकारी रिपोर्टें, कानूनी मसविदे तथा अन्य सरकारी कागजात भी प्राप्त नहीं होते। इससे सरकारी हलचलों के सामयिक सम्पर्क में रहने में हमें बहुत अड़चन का सामना करना पड़ता है। अधिकांश में हमें उन हलचलों का पता बहुत दिन बाद ही मिलता है; या फिर शक्ति से अधिक व्यय-भार उठा कर कागजात प्राप्त करनेकी चेष्टामें असीम कष्ट उठाना पड़ता है।

यह तो हुई शासकों के कारण समाचार पत्रों के गत्यवरोध की बात। अब समाचार पत्रों के संचालको, संपादकों और पाठकों के कारण पैदा होने वाले अवरोध की बात सुनिए। श्री श्रीप्रकाशजी ने 'साहित्य-समालोचक' के एक विशेषांक में लिखा था—"हमारे यहाँ योग्य व्यक्ति पहिले सरकारी नौकर होना चाहते हैं।...इसे न पाकर वे वकील होने की चेष्टा करते हैं। जब इसमें असफल हुए और व्यापार-व्यवसाय के लिए अपने को अनुपयुक्त समझा, तब वे शिक्षक बन जाते हैं।...जब किसी विद्यालय आदि में बड़ी तनख्वाह पर शिक्षक न हो सके तो... किसी पत्र के संपादन, लेखक आदि विभागों में जाने का यत्न

करते हैं। ...पत्रों की जो दुर्दशा अपने देश में है उसका कारण यह है कि हम लेखक लोग ही अपने काम से प्रसन्न नहीं हैं। हमने अपने पेशे को खुद ही बिगाड़ रक्खा है।" यह बात लेखकों और सम्पादकों के सम्बन्ध में न कही जाकर यदि संचालकों के लिए कही जाय तो अधिक उपयुक्त होगी। संचालकगण (जहाँ संपादक स्वयं संचालक होता है वहाँ की बात नहीं) इस काम को अधम समझते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि अन्य व्यापारों की अपेक्षा इस में व्यापार की दृष्टि से आमदनी कम है—कम-से-कम इस समय कम है। इसी लिए संचालक—खास कर ऐसे संचालक जो देश-सेवा, साहित्य-सेवा, समाज-सेवा, धर्म-सेवा आदि सात्विक भावनाओं से प्रेरित होकर समाचारपत्रों का संचालन नहीं करते वरन् धनोपार्जन की दृष्टि से करते हैं—इस पेशे को अधिक आदर की दृष्टि से नहीं देखते। इसका परिणाम यह होता है कि वे इस काम को पूरे उत्साह से नहीं, कुछ दबे हुए मनसे, करते हैं, और यह उत्साह-हीनता पत्रोन्नति के मार्ग में बाधक होती है। एक बात और भी होती है। वह यह कि उन्हें इस काम से अधिक आमदनी की आशा तो होती ही नहीं, इसलिए वे इसमें अधिक धन लगाने की भी इच्छा नहीं करते। सस्ते-से-सस्ते काग़ज़, सस्ती-से-सस्ती स्याही, सस्ते-से-सस्ते अन्य सामान तथा सस्ते-से-सस्ते ही कर्मचारी रखने की कोशिश करते हैं। कर्मचारियों की नियुक्ति के अवसर पर वे इस बात का विचार नहीं करते कि

अमुक मनुष्य योग्य है वरन् उनका ध्यान यह होता है कि अमुक मनुष्य सस्ता मिल रहा है इसलिए उसे रख लेना चाहिए। सस्तेके साथ ही साथ वे कर्मचारियों की कमी पर भी बहुत ध्यान रखते हैं। उनका ध्यान सदा यह रहता है कि दो आदमियों का काम एक ही आदमी से लिया जाय। सम्पादकीय विभाग में तो उन का यह दृष्टिकोण और भी अधिक प्रखर होता है। उस विभाग के लिए वे एक ही कर्मचारी को पर्याप्त समझते है। बेचारे संपादक को ही सम्पादक से लेकर रिपोर्टर, संवाद-दाता, आलोचक, प्रूफ़रीडर के सब काम करने पड़ते है। इन तमाम बातों का समाचारपत्रों की उन्नति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु सन्तोष की बात है कि हालत सुधर रही है और व्यापारिक दृष्टि से भी समाचारपत्रों का महत्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

सम्पादक और लेखक गण अपने काम को गिरा हुआ नहीं समझते। यह ठीक है कि इस से उतनी आमदनी नहीं होती, जितनी अन्य व्यापार-व्यवसाय से हो सकती है; किंतु इससे सम्पादक या लेखक काम को ही बुरा मानते हों, या 'अधम' कहते हों सो बात नहीं। बात इस के बिल्कुल प्रतिकूल है। वे लोग इस कार्य को उलटा अधिक सम्मान और आदर की चीज समझते हैं। अधिकांश में तो यह कार्य इतना आकर्षक हो गया है कि लोग विद्यालयों के बाहर निकलते ही और कभी कभी विद्यालयों के अन्दर से ही-विद्यार्थी-अवस्था में ही यदि लिखने का थोड़ा बहुत अभ्यास हुआ तो, सम्पादक या लेखक बनने की चेष्टा करने

लगते हैं। उनका सम्पादक या लेखक बनने का भाव यहां तक जोर मारता है कि जल्दी-से जल्दी उस पद पर पहुंच जाने के लोभ में वे इस बात की भी परवा नहीं करते कि उन में उन पदों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त योग्यता है भी या नहीं। अपनी अर्ध-शिक्षित और अनुभव शून्य अवस्था में विद्यालय से निकलते ही वे सम्पादक के गुरुतर पद पर आसीन होने के लिए झटपटाने लगते हैं। इस प्रकार की भावना बहुत बढ़ रही है। इसी लिए कुछ दिन हुए म० गांधी को, इस बढ़ती हुई भावना को किंचित् संयत करने के लिए, 'नवजीवन' में कुछ पंक्तियाँ लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई थी। बात यह है कि लोग सम्पादकीय कार्य के सम्मान से आकर्षित हो जाते हैं, किन्तु उसकी जिम्मेदारी का उन्हें ज्ञान नहीं होता। वे विद्यालय से निकलते ही, साहित्य में किंचित् अच्छा ज्ञान हुआ तो, अपने को सम्पादकीय कार्य के सर्वथा योग्य समझ लेते हैं। सम्पादन-कला सम्बन्धी ज्ञान का उन में बड़ी न्यूनता रहती है और तत्सम्बन्धी अनुभव का तो नितांत अभाव। हमारे यहां दुर्भाग्य से सम्पादनकला-सम्बन्धी शिक्षा का कोई साधन भी नहीं है। इस लिए विद्यालयों में तो इस विषय में इनकी शिक्षा होती ही नहीं और बाहर निकल कर भी हमारे उत्साही और महत्वाकांक्षी विद्यार्थीगण इस कला का ज्ञान प्राप्त करने की धीरता नहीं दिखाते, वे तुरंत ही सम्पादकीय पद पर आसीन हो जाना चाहते हैं; इस लिए समाचार पत्रों की उन्नति में आघात होता है। सम्पादकके जैसे गुरुतरऔर उत्तरदायित्व पूर्ण पद

पर आसीन होने के लिए तत्सम्बन्धी उपयुक्त शिक्षा और अनुभव पहले प्राप्त कर लेना अनिवार्यतः आवश्यक होता है। इसके लिए पहले से ही सम्पादक बनने की आकांक्षा न करके पहले पत्र कार्यालय का रिपोर्टर आदि निम्न श्रेणी का कर्मचारी बनकर अनुभव और ज्ञान बढ़ाते हुए ऊँचे पद को ग्रहण करने की कोशिश करनी चाहिए।

सम्पादकों के सम्पादनकला-संवन्धी ज्ञान, सम्पादकीय कर्तव्य और तत्संबन्धी अनुभव से शून्य होने के ही कारण समाचार पत्र आदर्श समाचारपत्र नहीं बन पाते। वे अधिकांश में उन समाचार-समितियों द्वारा भेजे हुए समाचारों से ही भरे होते हैं, जो नौकरशाही के हाथ की कठपुतली होती है। ये समितियाँ अधिकांश में लड़ाई-झगड़े और बाहरी आंदोलनों के संबन्ध के समाचार भेजती हैं, वे भी नौकरशाही के रंग में रंगे हुए। हम उन्हीं समाचारों को छाप कर इतिकर्तव्यता मान बैठते हैं। प्रथम संपादक-सम्मेलन के सभापति श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर के शब्दों में "हम और गहरे जाने का प्रयत्न नहीं करते। हमारे पाठक किन-किन श्रेणियों के हैं, उनका रहन-सहन कैसा है, उनकी जीविका के साधन क्या हैं, उनको जीवन-संग्राम में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनका आमोद प्रमोद क्या है, उनकी रुचि कैसी है; वे क्या सोचते हैं, और क्या चाहते हैं, इन बातों का सम्पादकों को पता तक नहीं होता।"

संपादकों की ओर से पैदा होनेवाला गत्यवरोध का एक कारण और भी है। इसके लिए अधिकांश में वे विवश होते हैं। वह यह कि संपादक को पत्र सम्पादन के विस्तृत कार्य के अतिरिक्त सार्वजनिक कार्यों में काफी भाग लेने की आवश्यकता पड़ती है। यह तो सर्वमान्य बात है कि प्रतिष्ठा का प्रभाव अवश्य पडता है। अतः अपने पत्र का प्रभाव बढ़ाने के विचार से संपादक को इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि वह सार्व जनिक कार्यों में, प्रचलित आंदोलनों में, भाग लेकर प्रतिष्ठा प्राप्त करे। प्रतिष्ठा-प्राप्ति के इस प्रयत्न में उसको शारीरिक, मानसिक और आर्थिक तीनों प्रकार की शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। परिणाम यह होता है कि उनका उत्साह और उनकी कार्यशीलता तथा अन्य शक्तियाँ, जो अन्यथा केवल सम्पादकीय कार्य में ही लगतीं, दो तरफ—दो ही तरफ क्यों, अनेक ओर—बँट बिखर जाती हैं और सम्पादकीय कार्य को यह विशदता, जो शक्ति-संचय से आ सकती, नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है।

अब रही पाठकों के कारण उत्पन्न होनेवाले गत्वरोध की बात। इस सम्बन्ध में सबसे प्रधान कारण जनता में साक्षरता का अभाव है। हमारे:पाठकों का बहुत बड़ा समुदाय अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित हैं। जो पढ़े लिखे हैं—शिक्षित हैं—वे हिन्दी पत्रों को हाथ से उठाना भी शान के खिलाफ समझते हैं, वे तो अंग्रेजी के ही अनुचर होते हैं। और जो अशिक्षित या अर्धशिक्षित हैं—उन्हीं की संख्या अधिक है—वे समाचारपत्र पढ़ने की कमी

इच्छा नहीं करते। कहीं-कहीं यदि इच्छा होती है तो शक्ति नहीं होती और कहीं पर शक्ति होती है तो इच्छा नहीं होती। ऐसी दशा में समाचारपत्रों की कदर हो तो कैसे और कदर हुए बिना कोई समाचारपत्र उन्नति करें तो कैसे ? जनता में एक दोष और भी पाया जाता है। हमारे यहाँ प्रायः यह संस्कार-सा चला आ रहा है कि हम सांसारिक घटना-क्रमों को एक माया-जाल समझकर उससे उदासीनता दिखाते हैं। समाचारपत्रों में, संसार में आये दिन घटनेवाली घटनाओं का उल्लेख होता है। उन घटनाओं को हमारे पाठक मायाजाल और असार कह कर टालते है। यह उपेक्षा-भाव भी समाचारपत्रों की उन्नति का अवरोध करता है। हमारे अनेक पाठक यह समझते हैं कि समाचारपत्रों का पढ़ना अनावश्यक और केवल विलासिता है। इसलिए स्वतः पढ़ने की बात तो दूर रही वे दूसरों को भी समाचार पत्र पढ़ने के लिए उत्साहित नहीं करते। इतना ही नहीं प्रत्युत कहीं-कहीं तो पढ़ने की रुचि रखनेवाले लोग निरुत्साहित तक किये जाते हैं। यह बात हमारे व्यापारी भाइयों के यहां अधिक पायी जाती है। उनमें कुछ का मत है कि अपने काम से काम रखना चाहिए, दुनिया में कहां क्या हो रहा है, इससे हमें क्या पड़ी है ? दूसरे लोग यह कहते है कि इनके पढ़ने में समय नष्ट होता हैं, उतने समय में कोई काम किया जा सकता है। कुछ व्यापारी ऐसे हैं, जो इसीलिए समाचारपत्र नहीं मँगाते कि दूकान में आने से दूकान के कर्मचारी उन्हें पढ़ने में लग जायंगे और इस प्रकार

काम को हानि पहुंचेगी। जहाँ इतना बारीक काता जाता हो वहां समाचारपत्रों की उन्नति में यदि बाधा पड़े तो आश्चर्य ही क्या ?

जनता की दरिद्रता भी समाचारपत्रों की उन्नति को बहुत बड़ा आघात पहुंचाती है। जिन्हें शौक हैं, जो समझते हैं, और समाचारपत्रों से लाभ उठाना चांहते हैं, वे बेचारे इतने गरीब हैं कि पेट भरने के लाले पड़ रहे हैं, समाचारपत्र कौन खरीदे ? जिन्हें थोड़ा-बहुत अवकाश है वे भी भिन्न-भिन्न विषयों के अलग-अलग समाचारपत्र नहीं मँगा सकते। इस लिए वे चाहते यह हैं कि कोई ऐसा समाचारपत्र मिले, जिसमें एकत्र ही अनेक विषय पढ़ने को मिल जायं। इस रुचि के कारण समाचारपत्र अधिकाधिक विषयों का समावेश करने की कोशिश करते हैं, किन्तु संचालकों के धनाभाव के कारण भिन्न-भिन्न विषयों के विभिन्न सम्पादक नहीं रखे जाते, एक ही सम्पादक से सब विषयों का सम्पादन कराया जाता है। परिणामतः अनेक विषय बिना योग्यतापूर्ण सम्पादन के ही प्रकाशित होते हैं। एक मनुष्य को सब विषयों का ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए इस प्रकार की त्रुटि रह जाना स्वाभाविक है। यह त्रुटि समष्टि रूपसे हमारे समाचारपत्रों की उन्नति के मार्ग में बाधक सिद्ध होती है।

गत्यवरोध के कुछ कारण और भी हैं। एक तो कागज स्याही आदि ऊपरी सामान हमें जितना चाहिए उतनी सस्ती दर से नहीं मिलता। दूसरे मुद्रण के सम्बन्ध में भी कुछ असुविधायें होती हैं।

हमारी वर्णमालाके दोषपूर्ण [छापे के सम्बन्ध में] होने के कारण टाइप बनाने और अक्षर जोड़ने आदि में बड़ी असुविधायें होती हैं। श्री रामानन्द चटर्जीने गत्यवरोध का एक और कारण बताया है। कुछ दिन हुए आपने 'माडर्न रिव्यू'में एक लेख लिखा था जिस में हिन्दीके समाचार पत्रों पर भी प्रकाश डाला था। उसमें आपने लिखा था कि हिन्दी भाषी जनता देश में दूर दूर प्रान्तों में बसी है। इस प्रकार दूर दूर बसे होने के कारण एक स्थान से निकल कर हिन्दी के समाचार पत्र सबके पास सहूलियत से नहीं पहुंच सकते। इस लिए उनकी ग्राहक संख्या कम होती है। यह बात अधिक महत्व पूर्ण न होने पर भी, तथ्यशून्य नहीं है। इन सब बातों के अलावा हमारे व्यवसायी समुदाय की ओर से एक बहुत बड़ा अवरोधक कारण पेश होता है। पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता के कारण यह तो स्पष्ट हो है कि समाचार पत्रोंके संचालकगण अपने पत्रों का अधिक मूल्य नहीं रख सकते, इसलिए उनकी आमदनी विज्ञापन पर ही अवलम्बित रहती है। किन्तु हमारा व्यवसायिवर्ग विज्ञापन के महत्व से अपरचित सा है इसलिए पत्रों को काफी विज्ञापन नहीं मिलते और इसीलिए श्री श्री प्रकाशजी के शब्दों में "हमारे समाचार पत्र पनपने नहीं पाते।"

इस प्रकार हमारे समाचार पत्रों गत्यवरोध के नानाविध कारण है। समाचार पत्रों को उन्नति चाहने वालों को इनके निराकरण का प्रयत्न करना चाहिए।

——:※:——

उन्नति के उपाय

—:o:—

किसी समाचार पत्र की उन्नति किस प्रकारकी जा सकती है, इसका निर्णय बहुत कुछ समाचार पत्र सम्बन्धी परिस्थितियों पर ही निर्भर रहता है और यह काम उन स्थितियों का ज्ञाता पत्र विशेष का सम्पादक या सञ्चालक सबसे अच्छी तरह कर सकता है। फिर भी साधारण-तया जिन उपायों से एक समाचार पत्र की उन्नति हो सकती है उनका उल्लेख इस स्थान पर किया जायगा।

समाचार पत्र के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह सब से अधिक जनता के हिताहित का विचार करे। उसको पढ़ने के लिए मनोरञ्जक, आकर्षक और शिक्षाप्रद मसाला दे और उसे अधिक से अधिक सुविधा देने का प्रयत्न करे। इस काम में जो पत्र जितनी अधिक सफलता प्राप्त करेगा वह उतनी ही अधिक उन्नति कर सकेगा। समाचार पत्र के सम्बन्ध में जो कुछ किया जाय सब में यह जरूर सोच लिया जाय कि इससे बहु संख्यक जनता को सन्तोष होगा या नहीं। उसे जनता के साथ दूध पानी की भांति मिल जाना चाहिए। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जनता समाचार पत्र में अपने भावों का बिलकुल प्रतिबिम्ब देखे। पत्र जनता भावमय हो जाय। यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि मानव स्वभाव उस वस्तु से अधिक प्रेम करता है जो उसे अपनी

या अपनी-सी मालूम होती है। अपने भावों का प्रतिबिम्ब पाकर पत्रों पर जनता का ममत्व आरोपित हो जाता है और वह उन्हें अधिकाधिक प्यार करने लगती हैं। किन्तु यह कार्य सरल नहीं। जनता में एक ही रुचि नहीं होती। भिन्न भिन्न मनुष्यों की रुचियां भी भिन्न भिन्न होती हैं। एक एक प्रकार की रुचि का एक एक समुदाय होता है और आवश्यकता यह होती है कि इस प्रकार के अधिक से अधिक समुदाय सन्तुष्ट किये जायं। जिस अनुपात में यह काम किया जाएगा जनता को दृष्टिमें उसी अनुपातमें समाचार पत्र रुचिकर और प्रिय होंगे और उसी अनुपात में उनकी उन्नति होगी। इस काम के लिए सञ्चालक या सम्पादकको जन साधारण सम्बन्धी मनोविज्ञान का बड़ा सुन्दर बोध होना चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ भी न लगा लिया जाना चाहिए कि जनता की रुचि यदि गन्दी और अश्लील हो तो पत्र को तदनुरूप बनना चाहिए। यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि पत्र जनता का उपदेशक है और एक उपदेशक की भांति ही जनता से मिल जुल कर उसका सुधार करना उसका (पत्र का) प्रधान कर्तव्य है।

समाचार की उन्नति उसकी ईमानदारी और सच्चाई पर भी बहुत कुछ निर्भर रहती है। समाचार पत्र एक बहुत जिम्मेदार और महत्व पूर्ण संस्था है। जनता का आम तौर से उस पर पूर्ण विश्वास होता है। समाचार पत्र का कर्तव्य है—सबसे बड़ा कर्तव्य है कि अपने इस विश्वास को जो बड़े सौभाग्य से किसी को प्राप्त होता हैं—सदा कायम रक्खे। भूलकर भी कभी विश्वा-

सघात न करे। जो बात सच्ची हो, साधु हो उसके कहने में तनिक भी आगा पीछा न करे। धनियों की बड़ी बड़ी थैलियों, अधिकारारूढ़ व्यक्तियों को भयंकर धमकियों और दूराचारी आततायियों की नृशंसताओं से रत्ती भर भी विचलित न हो। बस एक ही लगन-सच्चाई और ईमानदारीके साथ जनता की सेवा का सात्विक भाव लिए हुए समाचार पत्र को निर्विकार, निर्भय और निश्चित गति से अपने कर्तव्य मार्ग पर डटे रहना चाहिए। यदि आवश्यकता पड़ जाय तो बड़े से बड़े व्यक्ति की कड़ी से कड़ी आलोचना या प्रशंसा करने में पीछे न हटें। इससे जनता का अधिकाधिक विश्वास उस पर बढ़ता जायगा। और पत्र उत्तरोत्तर उन्नति करता जायगा। किन्तु आलोचना करने में एक बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि आलोचना अधिकांश में व्यक्ति की नहीं होती व्यक्ति विशेष द्वारा किये गये सार्वजनिक कार्य की होती है। यदि किसी ने कोई काम अच्छा या खराब किया तो उसमें यह समझ कर कि वह मनुष्य ही अच्छा या खराब है उस की प्रशंसा या निन्दा न करना चाहिए; हां, यदि कोई निरन्तर एक ही प्रकार के काम करता जाय और इस बात के काफी प्रमाण हों कि उसके वे काम जान बूझ कर बुरे या अच्छे भाव से प्रेरित हो कर हुए हैं तो अवश्य व्यक्ति की आलोचना या प्रशंसा की जा सकती है। उस समय व्यक्ति की आलोचना करने से पीछे भी न हटना चाहिए। इस प्रकार की आलोचना प्रत्यालोचना करने में तथा अन्य समाचार या सम्पादकीय लेख आदि प्रकाशित करने में

भी इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि जो कुछ लिखा जाय वह ऐसी सरल भाषा में हो जो सबकी समझ में आ जाय, इतना स्पष्ट हो कि किसी को उन भावों को समझने में दिक्कत न हो, एवं जो भाव व्यक्त किये गये हों उनके अतिरिक्त पाठक और कुछ न समझ जायं और वह अक्षरशः सत्य हो। काम करनेमें स । इतनी सतर्कता और सावधानी रखनी चाहिए कि कोई अशुद्ध या भ्रमात्मक बात प्रकाशित न हो जाय किन्तु यदि दुर्योग से कभी इस प्रकार की गलत बात प्रकाशित हो ही जाय तो जब वह गलती मालूम हो तब शीघ्रातिशीघ्र उसका संशोधन या प्रतिवाद प्रकाशित कर दिया जाना चाहिए।

जनता को अधिकाधिक सुविधा देना समाचार पत्रों की सफलता की खास कुंजी है। यह एक कसौटी है जिस पर कस कर समाचार पत्रों की सफलता असफलता का निर्णय किया जा सकता है। अतएव समाचार पत्रों के लिए यह आवश्यक होता है कि वे प्रत्येक बात को पहले इस कसौटी पर कस लिया करें तब प्रकाशित किया करें। इस के लिए अन्य बातों के साथ साथ एक ही पत्र में अधिक से अधिक विषयों का समावेश करना ताकि उस पत्र को पाकर फिर जनता को इधर उधर भटकने की जरूरत न रह जाय, विषयों को इतना समझा कर लिखना जिससे बिलकुल अनजान भी उन्हें समझ सकें, सम्पादकीय कालमों में भी अनेक विषयों पर छोटे छोटे लेख या टिप्पणियां लिखना प्रूफ-रीडिंग में इतनी सावधानी रखना कि एक भी गलती न रह जाय, जब एक

कालम का मजमून दूसरे कालम में या एक पृष्ठ का मजमून दूसरे पृष्ठ में ले जाना पड़े तब दोनों स्थानों पर–जहां से बचाकर लेजाया जाय और जहां ले जाया जाय-स्पष्ट शब्दों में उसका उल्लेख कर देना, कागज, छपाई, फोल्डिंग आदि की सफ़ाई का ध्यान रखना आदि बातें आवश्यक होता है यद्यपि यह केवल छोटी छोटी सी बातें हैं तथापि इनसे जनता को बड़ा सुविधा प्राप्त होती है और इसका काफी असर पड़ता हैं। हिन्दी के अधिकांश पत्र फार्म के फार्म मुड़े हुए भेज कर बेगार सा टाल देते हैं इससे पाठकों को असुविधा होती हैं। उन्हें पढ़ने के लिए अपने हाथों से पृष्ठ फाड़ने पड़ते हैं। यदि पास में चाकू आदि कोई ऐसी चीज न हुई जिस से पृष्ठ फाड़े जा सकें तो यह तकलीफ और भी बढ़ जाती है। इससे पाठकों में कभी-कभी एक चिढ़-सी पैदा हो जाती है। जिसका असर ग्राहक-संख्या पर पड़ता है। इसलिए फार्म ऐसे ढङ्ग से छपवाने चाहिए जिस में फोल्डिंग करते समय [मोड़ते समय] प्रत्येक पृष्ठ अलग-अलग रहा करे। इस के अतिरिक्त पत्र को ठीक समय पर प्रकाशित करने की ओर भी अधिक ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक ग्राहक पत्र निकलने के समय पर बराबर इन्तजार किया करता है। इसलिए यह बहुत जरूरी होता है कि पत्र ठीक समय पर प्रकाशित हुआ करे। अन्यथा इन्तजारी से-नाकामयाब इन्तजारी से पाठक ऊब जाता है और इससे भी चिढ़ उठता है। और यदि यह सब बार-बार हुआ तो नौबत यहाँ तक आती है कि नये साल वह ग्राहक तक नहीं बनता। इसलिए

पत्र ठीक समय पर प्रकाशित करना नितांत आवश्यक है।

पत्रों की उन्नति के लिए जनता के मनोरञ्जन का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है। ऐसे लेख या समाचार जिनसे जनता को अधिक रुचि होती हो, खास स्थान पर अच्छे ढङ्ग से और किंचित् विस्तार के साथ दिये जाने चाहिए। यात्रा आदि के वर्णन, कत्ल के किस्से, दंगों के समाचार या ऐसे ही मनोरञ्जक वर्णन अपेक्षा-कृत अधिक विस्तृत होने से जनता को अधिक पसन्द आते है। जनता का मनोरञ्जन एक और प्रकार से भी किया जाता है। वह खास-खास अवसरों पर यह जानने को उत्सुक रहती है कि अमुक स्थान पर अमुक अवसर, अमुक त्यौहार किस प्रकार बीता, अमुक उत्सव कैसे मनाया गया, कोई दंगा-फसाद तो नहीं हुआ। ऐसे अवसरों पर समाचारपत्र को त्यौहार या वह उत्सव समाप्त होते ही तत्सम्बन्धी विस्तृत समाचार शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित करना चाहिए। इससे जनता की उत्सुकता तृप्त होगी और उसका यथेष्ट मनोरंजन होगा। जहाँ पर लेख या समाचार मनोरञ्जक न हो वहाँ यह प्रयत्न करना चाहिए कि प्राप्त समाचार ही जहां तक सम्भव हो भाषा या वर्णन-शैली-द्वारा मनोरंजक बनाये जायं। पाठकों के मनोरञ्जन और ज्ञान-वर्द्धन के लिए समाचार पत्रों में छोटी-छोटी कहानियाँ खास-खास आदमियों के जीवन-चरित्र आदि भी प्रकाशित करना चाहिए। निश्चित समय पर कभी-कभी विशेषांक प्रकाशित करना चित्र देना आदि भी अच्छा प्रभाव डालते हैं। लेखों या समाचारों

के शीर्षक भी ऐसे रखने चाहिएँ जो विषय की अधिक-से-अधिक सूचना देने के साथ-साथ जनता के लिए अधिक-से-अधिक आकर्षक और मनोरञ्जक सिद्ध हों। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि शीर्षक का सम्बन्ध विषय से अधिक हो। इस सम्बंध में विषय का ध्यान प्रधान और दूसरी बातों का गौण होना चाहिए।

हिन्दी की वर्तमान सम्पादन-प्रणाली में अनेक त्रुटियां हैं। इनमें से कुछ तो ऐसी हैं जिनके लिए मजबूरी है और कुछ ऐसी हैं जो किंचित् असावधानी के कारण होती हैं। इन त्रुटियों को यथा-साध्य दूर करने का प्रयत्न उन्नति के उपायों का बड़ा प्रभावशाली अंश सिद्ध होगा। सबसे बड़ी त्रुटि कर्मचारि-मंडल की कमी है। हिन्दी के अनेक समाचार-पत्र ऐसे हैं जिनमें प्रूफ-रीडिंग से लेकर रिपोर्टिङ्ग, साहित्यालोचन, सम्पादन तक केवल एक ही व्यक्ति को करना पड़ता है। कार्य के इस असह्य बोझ से बेचारा सम्पादक इस प्रकार दब जाता है कि उसको पत्र की उन्नति के सम्बन्ध में कुछ सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता। इसलिए समाचार-पत्रों के कार्यालयों में कर्मचारियों की काफी संख्या रहनी चाहिए। एक प्रधान सम्पादक, दो-तीन उप-संपादक, सम्वाद-दाता, प्रूफ-रीडर आदि का रहना तो अनिवार्यतः आवश्यक होता है। समाचारों के देने में भी एक त्रुटि देखी जाती है। यद्यपि अब यह होने लगा है, कि अधिकांश समाचारपत्र खासकर दैनिक पत्र वाणिज्य व्यवसाय आदि के समाचार प्रका-

शित करते हैं परन्तु खेल-कूद और विनोद आदि के समाचारों की ओर ध्यान नहीं गया। पाठकों को यह भी बताया जाना चाहिए कि फुटबाल, क्रिकेट या हाकी मैच में क्या हुआ, अमुक नाटक कैसा खेला गया, तैराकी की दौड़ में कौन आगे आया, साइकिल की दौड़ का क्या परिणाम हुआ आदि। इससे खेल-कूद से प्रेम रखनेवाले पाठकों के समुदाय का बड़ा मनोरञ्जन होगा।

हमारे वर्तमान समाचार पत्रों के सम्बन्ध में एक त्रुटि यह भी है कि वे देशी राज्यों या अन्तर्देशीय समाचारों का यथेष्ट समावेश नहीं करते। इसमें पाठकों का ज्ञान जो संकुचित बना रहता है यह तो रहता ही है, उनकी अन्तर राष्ट्रीय समस्याओं के जानने की उत्सुकता भी तृप्त नहीं होती। अब हमारा देश पुराने तपस्वियों का देश नहीं रहा, जहाँ एकान्तवास को ही सब श्रेय दे दिया जाता था। अब हमारा सम्बन्ध देश-देशान्तरों से स्थापित हो गया है। इतना ही नहीं, वह दिनों-दिन घनिष्ट होता जाता है। अब यह बात नहीं है कि दूर देश में घटनेवाली किसी घटना-विशेष का हमारे देश पर कोई प्रभाव न पड़े। हमारे अन्तर्देशीय सम्बन्ध में इतनी घनिष्टता आ गयी है कि अब प्रत्येक देश की घटनायें हमारे ऊपर प्रभाव डाले बिना नहीं रहतीं। ऐसी अवस्था में यह नितान्त स्वाभाविक है कि लोग दूसरे देशों की या अपने ही देश के देशी राज्यों की घटनाओं से परिचित होने की उत्सुकता रक्खें। उनकी इस उत्सुकता की तृप्ति करना समा-

चार पत्रों का प्रधान कर्तव्य है। खेद का विषय है कि इन महत्व-पूर्ण विषयों पर भी समाचारपत्रों का यथेष्ट ध्यान नहीं जाता। बहुत थोड़े पत्र ऐसे हैं जो इन विषयों पर प्रकाश डालते हैं और जो हैं वे भी प्रायः नियमित नहीं रहते। इन विषयों पर नियमित रूप से कुछ-न-कुछ लिखते रहने की जरूरत है।

कुछ समाचार पत्रों को छोड़ कर अधिकांश में हिन्दी समाचार पत्रों के सम्पादन में सब से बड़ा दोष यह पाया जाता है कि वे आवश्यकता से अधिक दूसरे पत्रों की जूठन समेटा करते हैं। अंग्रेजी अखबारों की जूठन समेटने में तो वे बड़ी ही मुस्तैदी दिखाते हैं। यह प्रथा खराब है यह मैं नहीं कहता अच्छी चीज़ जहाँ से मिले ली ही जानी चाहिए। किन्तु किसी विषय की अति कभी अच्छी नहीं होती। हमें सरासर नकलबाजी से ही काम न लेना चाहिए। अपने पत्र में अपना निजी मैटर ही अधिक शोभा देता है। जूठन समेटने की धुन में हम यहाँ तक बह जाते हैं कि मजमून तो दूसरे पत्रों का लेते ही हैं, ढङ्ग तक उन्हीं पत्रों का अखत्यार कर लेते हैं। यह कहीं तो असावधानी के कारण हो जाता है किन्तु कहीं-कहीं सम्पादक की अयोग्यता भी इसका कारण होती है। सम्पादन-कला का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किये बिना ही इस प्रकार के गुरुतर कार्यों में हाथ डाल बैठने से इस प्रकार की बातें हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस लिए प्रत्येक सम्पादक को सम्पादक जैसे गुरुतर पद को स्वीकार करने के पहले अपने कर्तव्य कर्म का अधिक नहीं तो काम चलाने

भर का ज्ञान तो अवश्य ही प्राप्त कर लेना चाहिए जिसमें इस प्रकार के दोष पत्र में न आवें और अपने ढङ्ग पर पत्र को उन्नत करने के उपाय सूझ सकें।

प्रभावशालिता, उपयोगिता और प्रचार बढ़ाने के लिए यह आवश्यक होता है कि समाचार पत्र जिस आन्दोलन को हाथ में लें उसे अन्त तक निभाता जाय। उस सम्बन्ध में समाचारपत्र को एक योग्य नेता की भांति अपना 'पार्ट' पूरा करना चाहिए। समाचार पत्रों को इस ताक में भी रहना चाहिए कि कौन सा आंदोलन जनता के लिए अधिक उपयोगी होगा और ज्यों ही कोई ऐसा आंदोलन मिल जाय तुरन्त उसको हाथ में ले लेना चाहिए। ऐसे आंदोलनों को हाथ में लेने का उपाय यह है कि उस सम्बन्ध के समाचार, उन पर अपनी तथा उस सम्बन्ध के विशेषज्ञों की रायें जिन में जनता को कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश दिया गया हो बरावर प्रकाशित की जायँ। प्रायः प्रत्येक अंक में उस आंदोलन सम्बन्धी कुछ-न-कुछ चर्चा होती ही रहे। उस सम्बन्ध में कहां क्या हो रहा है? कौन क्या कहता है? कितना कार्य हो चुका है? कितना बाकी है? यह किस प्रकार पूरा किया जा सकता है, आदि बातों की चर्चा करके, आलोचकों की प्रत्यालोचना करके, सहायकों की प्रशंसा करके, उसके प्रति जनता का मनोभाव आकर्षित किया जा सकता है और आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में 'प्रताप' ने अच्छे उदाहरण उपस्थित किये हैं—रायबरेली, शिकोहाबाद

नीमूचाणा, पटुआखाली, आदि अनेक आंदोलनों का सफल नेता बनने का सौभाग्य उसे प्राप्त हो चुका है। 'तरुण राजस्थान' भी देशी राज्यों के:सम्बन्ध में काफी ध्यान देता आया है। अन्य समाचार-पत्रों को भी इस सम्बन्ध में यही कार्य-प्रणाली अपनानी चाहिए। किन्तु यह काम आसान नहीं है। अनेक जिम्मेदारियाँ हैं और अनेक विपत्तियाँ भी। यदि प्रमाद या असावधानी के कारण जनता को गलत रास्ते पर ले गये तो देश का सत्यानाश किया और यदि ईमानदारी के साथ आगे बढ़े तो आतताई अत्याचारियों के शिकार बने। आन्दोलनों का नेतृत्व ग्रहण करना इसी दोधारी तलवार की धार पर चलना है। इसके लिए बड़ी जिम्मेदारी बड़ी ईमानदारी, बड़ी निर्भीकता, बड़े साहस और बड़े भारी धैर्य की जरूरत पड़ती है जो आचरण की दृढ़ता और पवित्रता-द्वारा ही प्राप्त हो सकते है।

पत्रों को निकाल कर सफलता पूर्वक चला ले जाने का एक सुन्दर उपाय श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर ने अपने भाषण में, जो उन्होंने प्रथक सम्पादक सम्मेलन के अवसर पर दिया था, बताया हैं। वह ज्यों का त्यों यहां दे दिया जाता है। "यदि कुछ उत्साही लेखक और कार्यकर्ता मिलकर पहिले एक ही जिलेका अच्छी तरह अध्ययन करें, प्रत्येक तहसील और बड़े बड़े गावों में शिक्षित और चतुर सम्बाददाता नियुक्त करें, और ग्राम ग्राम में पत्र पहुंचाने के साधनों का प्रबन्ध करके एक साप्ताहिक पत्र निकालें, वह पत्र प्रधानतः अपनेही जिले के समाचारों को छापा करे, अपने पाठकों

के सामाजिक जीवन का चित्र खींचा करे, उनके सुख दुख की प्रतिध्वनि किया करे, साथही साथ उन्हें थोड़े में अखिल भारतीय और जगत व्यापी प्रश्नों का भी परिचय देता रहे तो निस्सन्देह उसका प्रचार एक ही जिले में इतना अधिक होगा जितना आज कल के अच्छे अच्छे हिन्दी पत्रों को सारे भारत वर्ष में नहीं है। एक अनुभवी सम्पादक तीन चार सुशिक्षित और तरुण सहायक और अनेक सूक्ष्मदर्शी सम्वाददाता मिलकर यह काम बड़ी अच्छी तरह चला सकते हैं।" इस रीति से काम करने से समाचार पत्र की अर्थ और आदर्श दोनों दृष्टियोंसे काफी उन्नति हो सकती हैं।

इस सम्बन्ध में कुछ बातें और भी हैं। जैसे पुस्तकों की समालोचनायें प्रकाशित करना, अच्छे अच्छे लेख प्राप्त करना, विभिन्न विषयों पर सहयोगियों की सम्मतियों का उद्धाण देना, किसी बात के काफी प्रमाण बिना उसे ठीक मानकर छाप न देना आदि। इन सब बातों की ओर भी हिन्दी समाचार पत्रों का ध्यान जाना चाहिए मेरे इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि इस ओर उनका ध्यान नहीं हैं। वे ध्यान अवश्य रखते हैं, इस के लिए प्रयत्न भी करते हैं, किन्तु इस दिशा में अभी और उन्नति की आवश्यकता है। समालोचनाओं के लिए हमें यही धारणा बना कर न बैठ रहना चाहिए कि जो पुस्तकें हमारे पास नहीं आईं उनकी समालोचना हमें करनी ही न चाहिए। जहां तक सम्भव हो साहित्य संसार की सभी अच्छी अच्छी पुस्तकों की

समालोचना पत्र में प्रकाशित करने का प्रयत्न करना चाहिए। चाहे वे पुस्तकें प्रकाशकों द्वारा स्वयं समालोचनार्थ भेजी गयी हों चाहे हमें खरीदनी पड़ें। अच्छे लेखों का प्रबन्ध करने के लिए लब्ध प्रतिष्ठ लेखकों से न अनुरोध करके या पुरष्कार आदि का प्रलोभन देकर जो लेख लिखाये जायं वे तो लिखाये ही जायं, नवयुवकों और उत्साही नवीन लेखकों को भी इस सम्बन्ध में उत्साह दिलाया जाना चाहिए। नये लेखकों की कृतियां कभी कभी पुराने लेखकों की रचनाओं से अधिक अच्छी होती हैं। क्योंकि वे प्रायः अधिक परिश्रम से मसाला जुटाते और लिखते हैं। केवल उन्हें प्रोत्साहन करनेकी आवश्यकता होती है। प्रोत्साहन के लिए कुछ अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं होती। केवल किञ्चित आग्रह पूर्वक लेख मांगना और जो मिल जाय उसे, उचित संशोधन करके प्रकाशित कर देना मात्र उनको प्रोत्साहित करने के लिए पर्याप्त होता है। इस से पत्र के अच्छे बनने के साथ साथ नवयुवकों को लेखन कला के सम्बन्ध में उन्नति करने का मौका भी मिलेगा जो समष्टि रूप से साहित्य क्षेत्र के लिए एक लाभकारी वस्तु होगी।

अब रही विभिन्न विषयों पर सहयोगियों की सम्मतियों के उद्धृत करने की बात। इसके लिए जोर देने का यह कारण है कि इससे अपने पाठकों को यह मालूम होता रहेगा कि किसी विशेष विषय पर भिन्न भिन्न लोगों की क्या रायें हैं। इस स्तम्भ

में पत्रों की रायों के अलावा भिन्न भिन्न नेताओं की सम्मतियां तथा उनके वक्तव्य भी दिये जा सकते हैं। विभिन्न साम्प्रदायिक पत्रों और नेताओं की रायें देना विशेष रूप से रोचक होगा। लोग जानेंगे कि अमुक विषय पर हिन्दूओं की क्या राय है, उस पर मुसलमान क्या कहते है, और ईसाई, पारसो, सिक्ख आदिकों का क्या मत है।

यह विज्ञापनबाजी का जमाना है। इस समय किसी समाचार के प्रचार के लिए काफी विज्ञापनबाजी की भी जरूरत है। पत्रों की उन्नति के लिए विज्ञापनबाजी भी आवश्यक हो गई है। इस लिए अपने पत्र के विज्ञापन का उचित प्रबन्ध करना आवश्यक है। विज्ञापन अन्य समाचार-पत्रों में देने के अलावा पोस्टरों और एजण्टों-द्वारा भी करना चाहिए। पोस्टरों-द्वारा दो प्रकार से विज्ञापन किया जा सकता है। एक तो साधारण रीति से पत्र की विशेषतायें दिखाकर विज्ञापन देना और दूसरे रोज-रोज के खास समाचारों के सूचनात्मक पोस्टर बड़े-बड़े अक्षरों में छपवा कर बाँटना। इस समय कुछ समाचार पत्रों ने एक और तरीका भी निकाला है। वह यह कि अपने पत्र के मुख पृष्ठ पर बड़े बड़े टाइप में किसी विशेष महत्वपूर्ण समाचार का शोर्षक छाप देते हैं। यह समाचार के हेडिंग के अलावा विज्ञापन का काम भी देता है। लोग उस शोर्षक को देखकर पत्र पढ़ने की ओर आकृष्ट होते हैं। खर्च की बचत के विचार से पोस्टरों के बदले यह तरीका निकाला गया मालूम होता है।

किन्तु यह पोस्टरों के समान प्रभावशाली नहीं। फिर भी काम चलाया जा सकता है। एजण्टों-द्वारा विज्ञापन करने का यह तरीका है कि एजन्ट लोग समाचार पत्र के कुछ नमूने और विज्ञापन-सम्बन्धी पोस्टर देकर भेजे जायँ। वे जनता से मिलकर समाचार पत्रसम्बन्धी बातें जबानी बताकर उसका प्रचार करते रहें और पोस्टर आदि बाँटते तथा पत्र का नमूना दिखाते जायँ।

विज्ञापन के और तरीके भी विदेशी समाचारपत्रों ने निकाले हैं। वहां के पत्र-संचालक गरीबों और पीड़ितों को आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायतायें देकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त खेल-कूद करनेवाले तैरनेवाले, कुश्ती लड़नेवाले, तथा अन्य ऐसे ही लोगों का दंगल कराकर वहां के पत्र-संचालक जीतनेवालों को इनाम देते है। अपने ग्राहकों के खतरे के बीमे वहाँ के पत्र अकसर किया करते हैं। इस प्रकार के बीमों की घोषणा तो अभी हाल में ही बम्बई के 'बम्बई-क्रानिकल' और 'बम्बई-समाचार'पत्र ने भी की है। इन कामों से पत्र का काफी विज्ञापन होता है। और पत्र प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। हिन्दी में इस प्रकार की व्यवस्थाएं नहीं हैं और न अभी सम्भव ही मालूम होती हैं। परन्तु यह असम्भव नहीं है और भविष्य में जब कुछ पत्र फलने-फूलने लगेंगे तब इन उपायों से काम लिया जा सकता है।

समाचार-पत्रों को गति का सूक्ष्म-निरीक्षण करने से निकट-भविष्य में ऐसी स्थिति आ जाने की संभावना प्रतीत होती हैं,

जब अपेक्षा-कृत अधिक समाचार पत्र प्रकाशित होंगे। बहुत सम्भव है शीघ्र ही देश में समाचार-पत्रों की भरमार हो जाय। ऐसी दशा में समाचार पत्रों के लिए देश भर के बराबर समाचार देने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा होगा कि वे अपना एक क्षेत्र बनालें और उसके समाचारों की ओर अधिक ध्यान रक्खें क्योंकि प्रत्येक नया पत्र, सुविधा होने के कारण, अपने प्रान्त या आस-पास के स्थान में अधिक प्रचार करने की कोशिश करेगा। यह काम तत्स्थानीय समाचार देने पर अधिक अवलंबित रहेगा क्योंकि साधारणतः लोग उसी समय किसी पत्र से अधिक प्रेम करते हैं जब वे यह देखते हैं कि उन के सम्बन्ध में समाचार या लेख आदि उस पत्र में छपते हैं। इस प्रकार जब किसी स्थान का जन-समुदाय तत्स्थानीय किसी पत्रमें संलग्न हो जायगा तब दूसरे पत्र का प्रवेश वहां न हो सकेगा। इस दृष्टि से मालूम होता है कि समाचार-पत्रों का प्रचार-क्षेत्र दिन-दिन संकुचित होता जायगा। इसलिए अभी से सब समाचार-पत्रों को सतर्क रहना चाहिए और सार्व-देशीय स्वामित्व की रक्षा के साथ-साथ एकप्रान्तीय स्वामित्व की विशेष रूपसे रक्षा करते रहना चाहिए।

संक्षेप में यही बातें हैं, जो एक समाचार-पत्र को उन्नत करने में सहायक हो सकती हैं। वैसे तो जैसा ऊपर कहा जा चुका हैं किसी समाचार-पत्र की विशेष परिस्थिति से ही इस बात का ठीक-ठीक पता लग सकता है कि उस समाचार-पत्र की उन्नति के सम्बन्ध में किस उपाय से काम लिया जाय।

——:o:——

पारिश्रमिक

—:o:—

पारिश्रमिक का प्रश्न जीवन की प्रत्येक दिशामें बहुत आवश्यक और महत्व पूर्ण स्थान रखता है। जो परिश्रम करता है वह अपने परिश्रम के प्रतिफल स्वरूप पारिश्रमिक की इच्छा करता ही है। मजदूर अपनी मज़दूरी का उचित पारिश्रमिक चाहते हैं, किसान अपनी किसानी का पारिश्रमिक चाहते हैं, और पत्रकार अपने काम का उचित पारिश्रमिक चाहते हैं। सारांश यह कि सभी क्षेत्रों में कार्यकर्ता इस प्रश्न की आवश्यकता और महत्ता अपनी अपनी परिस्थिति के अनुसार अनुभव करते हैं। यहां पर पारिश्रमिक के एक व्यापक रूप का विवेचन करना इष्ट नहीं है, अतएव केवल हिन्दी के पत्रकारों के पारिश्रमिक के प्रश्न पर ही बिचार किया जायगा।

हिन्दी के पत्रकारों, लेखकों, कवियों आदि की आर्थिक अवस्था कितनी शोचनीय है यह साहित्य संसार से परिचय रखने वाले किसी व्यक्ति से छिपी नहीं है। उन भाग्यवान पत्रकारों की बात तो मैं नहीं कहता जिन्हे महाराणी लक्ष्मी के वरद पाणि की छाया का आश्रय प्राप्त है, किन्तु अधिकांश पत्रकारों की यह हालत है, कि जन्म भर बेचारे दाने दाने को दर दर मारे मारे फिरते है और अन्त समय भी अपने बाल बच्चों और कुटुम्बियों

तथा आश्रितों को दरिद्रता की सूनी और भयंकर गोद में छोड़ कर तड़प तड़प कर परम धाम का मार्ग लेते हैं। स्वर्ग में भी उन्हें सुख मिलता होगा या नहीं कौन जानता है। त्याग, तपस्या, सेवा और बलिदान आदि के भावुक अग्निकुण्ड में अपने सुन्दर और उच्च जीवनकी पूर्णाहुति देनेपर भी वे सुख और शान्ति नहीं पाते। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पं० रुद्रदत्तजी पं० भगवानदीन पाठक आदि इसके मूर्तिमान उदाहरण पेश कर गये हैं। आज भी अनेक पत्रकार टुकड़े टुकड़े को तरसते हुए मिलेंगे। कुछ ही दिन हुए एक भुक्तभोगी महाशय ने श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार में लेखकों की आर्थिक अवस्था का वर्णन करते हुए जो लेख लिखा था उसमें इस प्रकार के बड़े कई कारुणिक उदाहरण थे।

यह अवस्था सिर्फ लेखकों की हो हो, सो बात नहीं है। किसान इसी चक्की में पिस रहे हैं, मजदूर इसी शिकार के निशाने हो रहे हैं, और न जाने कौन कौन इस यंत्रणा का दुख भोग रहे हैं। किन्तु उनकी अवस्था और पत्रकारों की अवस्था में अन्तर है। उनकी ओर देश के नेताओं का ध्यान आकृष्ट हुआ है, उसके सुधारने की व्यवस्था भी जोरों के साथ शुरू हो गयी है। मगर इनकी अवस्था की ओर अभी ध्यान ही नहीं दिया गया। ताज्जुब की बात तो यह है कि स्वयं पत्रकार जो दुनियां भर के आन्दोलनों का बीड़ा उठाये रहते हैं इस मामले में चुप हैं। समाचार सम्मेलन, सम्पादक सम्मेलन सब खुल गये हैं मगर किसी ने इस ओर थोड़ा भी ध्यान देने का कष्ट नहीं उठाया। यह उपेक्षा भाव

अवांछनीय है। इसमें सन्देह नहीं कि त्याग और तपस्या आदि धनको अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान बस्तुएं हैं और प्रत्येक आदर्श पत्रकार में इन्हीं गुणों का समावेश होना आवश्यक है। किन्तु सबसे आदर्श मनुष्य होने को आशा नहीं की जा सकती। इस लिए साधारण बिचार वाले मनुष्यों में जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उन्हें उपस्थित करने का उद्योग भी होना चाहिए और कुछ नहीं तो भला इतना तो होजाय कि बेचारे पत्रकार और लेखक दो दाने अन्न पा सकें!

इस सम्बन्ध में उप सम्पादकों को तथा मध्यम श्रेणी के उन सम्पादकों की भी जो स्वयं पत्र के स्वामी नहीं हैं अवस्था और भी अधिक सोचनीय है। दिन दिन पर खुटने पर भी उन बेचारों को जो पारिश्रमिक मिलता है वह इतना थोड़ा है कि वे बेचारे अपना पेट भी मुश्किल से भर पाते हैं। उनके आश्रितों की जो दशा होती है उस की तो बात ही व्यर्थ है। इतना होते हुए भी उसके 'मालिकों' की शनि दृष्टि उन पर पड़ी ही रहती है। काम तो वे उन से अधिक से अधिक लेना चाहते हैं परन्तु प्रति फल में निश्चित वेतन को भी कम कर करने की सोचा करते हैं। उपरोक्त सम्पादक और उपसम्पादक तन मन से काम पर जुटे रहते हैं, अपने स्वाथ्य तक का ख्याल नहीं करते, साधारण बीमारीमें तीवे नियमानुसार बराबर कामपर आते हैं। वे इस बात का भी विचार नहीं करते कि उन के काम करने की अवधि ६,घंटे या ८ घंटे है इस लिए इस अवधिके बाद काम न करें। काम पड़

जाने पर वे १०-१०, १२-१२ घंटे मेज कुरसी से लगे रहते हैं। परन्तु इन सब सेवाओं के फल में उन्हें मिलता क्या है? उपेक्षा उलहना, भर्त्सना, दूसरे कर्मचारी यदि अपनी कार्य अवधि सेअधिक काम करते हैं तो ओवर टाइम वेतन के अधिकारी होते हैं, इन के भाग्य में वह भी नहीं बदा। समाचार पत्र की सेवा करते करते यदि कोई दुर्घटना हो जाय जिस से शरीरिक या आर्थिक क्षति पहुंचे तो इन की इन क्षतियों की पूर्ति का भी 'मालिक' लोग प्रबन्ध करने के लिए तैयार नहीं। इतना ही नहीं यदि पत्र के किसी लेख के कारण बेचारों को जेल आदि जाना पड़े तो उस जेल यातना के बदले में कुछ अधिक पुरस्कार देने की बात तो बहुत ही दूर की बात है उलटा उन का साधारण वेतन भी यह कह कर काट लिया जाता है कि वे उतनी अवधि तक कार्यालय का काम थोड़े ही करते रहे है। लगातार बहुत दिनों तक अन्य सम्पादकों की अनुपस्थिति या अवान्तर कारणों से अपनी शक्तियों से अधिक काम करने के कारण यदि ये बीमार पड़ गये और कार्यालय न जा सके तो बीमारी का जो खर्च सर पड़ा वह तो पड़ा ही उतने दिन की उनकी तनखाह खाते में काट ली जाती है। जहां पर व्यवस्था है वहां अन्यान्य कर्मचारी सालाना बोनस आदि भी पाते है परन्तु इनको वह भी नहीं मिलता। मालूम नहीं त्याग तपस्या सेवा बलिदान आदि का सब ठेका इन्हीं के नाम लिख दिया गया है या क्या?

छुट्टियोंकी अवस्था भी कुछ कम नहीं है। आकस्मिक छुट्टियां

तो कार्यालयों को सुविधा होगी तब मिलेगी यदि ऐसा न हुआ तो इन बेचारे सम्पादकों और उपसम्पादकों को चाहे जितनी आवश्यकता होवे इस छुट्टी के हकदार न माने जायेंगे। यह और चाल है कि वे आवश्यकता से विवश होकर अपने हक से छुट्टी ले लें। और सालाना नियमित छुट्टी भी बारह महीने काम कर चुकने के बाद तेरहवें महीने आती है, साल के ११ महीने काम करने के बाद नहीं! कैसी भीषण अवस्था है इस प्रकार के सम्पदकों की! ग्रेच्युइटी बीमा, बोनस, पोविडेण्ट फण्ड आदि के अभाव की दाद तो है ही ऊपर से इस प्रकार के व्यवहार की खाज और बनी रहती है। इस अवस्था को सुधारने की बड़ी आवश्यकता है।

अपने पत्रकारों और विदेशीय पत्रकारों की तुलना करने पर तो दांतों तले ऊँगली दबानी पड़ती है। हमारे यहां अच्छे से अच्छे सम्पादकों की तनखाह डेढ़-दो सौ रुपये से अधिक नहीं होता किन्तु विदेशी समाचार पत्रों के सम्पादक हजारों रुपये मासिक वेतन पाते हैं। जापान के प्रसिद्ध पत्र के सम्पादक तीस तीस हजार येन [जापानी सिक्का] वार्षिक वेतन पाते है। जिस की कीमत यहां के हिसाब से चालीस हजार के बराबर होती है। लन्दन के 'टाइम्स' पत्र के प्रधान सम्पादक का वेतन ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान सचिव के वेतन के बराबर है। उप-सम्पादकों, सम्वाददाताओं ओर स्वतन्त्र लेखकों आदि की दशा भी काफी अच्छी है परन्तु हमारे यहां तो इन लोगों की अवस्था

और भी खराब है। हमारे यहां के पत्र-सञ्चालक तीस-तीस चालीस-चालीस रुपये में हा उपसम्पादक रख लेना चाहते हैं, और सम्वाददाताओं को तो वेतन देने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। बहुत इनायतको गयी तो एक पत्र उनके नाम भेज दिया गया और बस। लेखकों के संबंधमें भी यही बात है। उनका लेख छाप देना ही पुरस्कार समझ लिया जाता है। दूसरे देशों में इन सब कामों के लिये काफी पारिश्रमिक दिया जाता है। मुफ्त तो वहां कोई काम होता ही नहीं। पुरस्कार की प्रथा इतनी बढ़ी हुई हैकि, पत्रकार कला के संबन्ध की जितनी पुस्तकें देखिए प्रायः सब में एक ही स्थान पर नहीं बल्कि अनेक स्थानों पर पुरस्कार-पुरस्कार की पुकार सुनाई पड़ेगी। प्रभावशाली विलायती समाचार पत्रों के प्रधान सम्वाददाताओं को २५० पौंड से लेकर ४०० पौंड तक सालाना वेतन मिलता है। इसके अर्थ यह है, कि जिस काम के लिए हमारे यहां पत्र की एक कापी मात्र दी जाती है उसके लिये वहां पांच साढ़े पांच हजार रुपये मिलते है। स्वतंत्र लेखकों के संबन्ध में विलायत में यह हाल हैं कि टाइम्स पत्र साधारण लेखकों को ५०-६० रु० फी कालम के हिसाब से लिखाई देता है। विख्यात लेखकों की लिखाई सुनकर तो ताज्जुब होता है। वे लोग पांच-पांच और छः छः हजार रूपये प्रति कालम की लिखाई लेते हैं। प्रति शब्द एक एक शिलिङ्ग लेनेवाले तो कई लेखक हैं। बड़े आदमी बिना कसकर लिखाई लिये नहीं लिखते। मि० लायडजार्ज ने अभी हाल ही में कहा था कि जितना मैंने

प्राइम मिनिस्टरी (अंग्रेजी साम्राज्य का प्रधान मंत्रित्व) से कमाया, उसका चौगुना इस तरफ चार वर्षों की लिखाई से कमाया हैं। यह अन्तर है हमारे पत्रकारों की आमदनी और विदेशोय पत्रकारों की आमदनी में! इस प्रकार के आर्थिक अन्तर के बाद भी वहां के पत्र कारों को अपने 'मालिकों' की ओर से जो व्यवहार मिलता है वह हमारे यहां स्वप्न में भी नसीब नहीं। हमारे यहां बहुत कम ऐसे कार्यालय हैं जिन में पत्रकारों के साथ मित्रता या समानता का व्यवहार किया जाता हो। परन्तु विदेशों में पत्रकारों के प्रति किये जानेवाले व्यवहार के सम्बन्ध में यह आम बात है कि उनके साथ कुटुम्बियों का-सा बर्ताव किया जाता है। संचालकगण उनकी रक्षा करते हैं, उन्हें उत्साह दिलाते हैं, और यहां तक ख्याल रखते हैं कि जब वे काम के अयोग्य हो जाते हैं तब भी उन्हें उनको पूर्वकाल की सेवाओं के उपलक्ष में वे वेतन देते हैं। इसका परिणाभ यह होता है कि कर्मचारि-मंडल भी उनकी सेवा में अपना तन-मन अर्पण किये रहता है।

अब सवाल यह है कि यह अन्तर क्यों है? इसका प्रधान कारण हमारी दरिद्रता है। इस परिस्थित में इस अन्तरको मिटा सकना सम्भव ही नहीं हैं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि देशमें समाचार पत्रोंके पढ़नेका शौक नहीं है। इसके न होनेसे समाचार पत्रों के सचालकों को काफी आमदनी नहीं होती और बदले में वे अपने पत्रकार मण्डल को काफी पुरस्कार नहीं दे सकते। अभी

हमारे यहां पत्रकार-कला की यह प्रारम्भिक अवस्था है। एक तो उपर्युक्त कारणों से हम वैसे भी विदेशीय पत्रों की समता नहीं कर सकते—खासकर पुरस्कार आदान-प्रदान के सम्बन्ध में—दूसरे यदि उपर्युक्त बातें नहीं हों तो भी प्रारम्भ से हो इतनी उन्नति कर सकना सम्भव न होता। विदेशों में भो पहिले आज की सी हालत नहीं थी। ज्यों ज्यों पत्रकार- कला की उन्नति होती गयी त्यों-त्यों इस सम्बन्ध में भी उन्नति हुई है। किंतु यहाँ की स्थिति भी सुधारी अवश्य जा सकती है। इस के लिए प्रयत्नशील होना पत्रकार-कला से सहानुभूति रखनेवाले महानुभावों का कर्तव्य है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जो परिश्रमिक देने में जितनी अधिक उदारता से काम लेता है; उसे उतने ही अधिक योग्य और कार्यशील कर्मचारी प्राप्त होते हैं। जितनी शक्कर डाली जाती है शरबत उतना हो मीठा होता है। किंतु इस बात की ओर ध्यान न देकर पत्र-संचालक-समूह कोशिश यह करता है कि कम से कम वेतन पर आदमी मिलें। बम्बई जर्नलिस्ट कान्फरेंस के सभापति की हैसियत से मि० नटराजन ने बहुत ठीक कहा था कि कम वेतन देने की ओर पत्र-संञ्चालकों का इतना ध्यान होता है कि स्थान खालो होने पर जब किसी आदमी को वे रखना चाहते हैं तब यह नहीं सोचते कि कौन आदमो योग्य है और कौन अयोग्य; बलिक देखते यह हैं कि कौन सस्ता मिल रहा है और कौन नहीं। यह तो हुई वेतनभोगी कर्मचारी रखने की बात। स्वतन्त्र लेखकों के सम्बन्ध में भी उनका व्यवहार इससे किसी प्रकार कम

कंजूस का नहीं होता। पत्रों में बेमतलब के और अधिकांश में बेहूदा चित्र निकालने में पत्र सञ्चालक सैकड़ों रुपये फूंक देंगे, मगर लेखकों को पारिश्रमिक देने में कौड़ियों का भी उदारता दिखाने को तैयार न होंगे। जिनके लेखों की बदौलत पत्र वास्तव में पत्र कहा जाने योग्य बनता है; उन बेचारे लेखकों को तो कानी कौड़ी भी नसीब नहीं होती किन्तु देश विदेश की बेतुकी वेश्याओं आदि के चित्र के लिए सैकड़ों रुपये स्वाहा किये जाते हैं! यह प्रगति बड़ी शोचनीय और भयावह है। इसके सुधारने का शीघ्रातिशीघ्र उपाय होना आवश्यक है। कम से कम उन समाचार पत्रों को तो जिनको काफी आमदनी होती है स्वतन्त्र लेखकों को पुरस्कार देनेकी व्यवस्था तुरन्त कर देनी चाहिए। यदि वे अपनी विज्ञापनी आयका थोड़ा सा भाग इस काम के लिए निश्चित रूप से दिया करें तो भी बड़ा काम हो सकता है।

यह सुधार आसानी से हो भी सकता है। समय इसके लिए बिलकुल अनुकूल आ गया है। स्वभावतः इस ओर कुछ उन्नति हो चली है। जरा सा धक्का लगा देने भर की जरूरत है। माधुरी के प्रकाशन के बाद से लेखकों को पुरस्कार आदि देने की दिशा में उन्नति होने लगी है। अन्य अन्य समाचार पत्रों ने भी पुरस्कार देने की योजना से काम लेना आरम्भ कर दिया है। पत्रों में इस प्रकार के विज्ञापन भी निकलने लगे हैं। सैनिक अपने संवाद-दाताओं के लिए भी पुरस्कार देने का विज्ञापन प्रकाशित करता है। इस प्रकार स्थिति नितांत अनुकूल सिद्ध हो रही है। अवस्था

प्रारम्भिक है। प्रारम्भ में लेखकों को कुछ कम पुरस्कार भी ले लेना चाहिए और वे इस समय उस पर राजी भी हो जायंगे। इस प्रकार यदि प्रयत्न किया जाय तो थोड़ी थोड़ी करके काफी उन्नति की जा सकती है।

किन्तु यह करे कौन? साहित्य सम्मेलन को फुरसत नहीं और सम्पादक सम्मेलन शायद इसकी आवश्यकता ही नहीं अनुभव करता। यह बड़े दुःख की बात है कि सम्पादक सम्मेलन के अधिवेशनों में इस आवश्यक और महत्व पूर्ण विषय की आश्चर्य जनक उपेक्षा की गयी है। न सभापतियों के भाषणों में इन पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गयी और न अधिवेशन के प्रस्तावों में ही इसका कहीं उल्लेख करने की परवाह की गयी। इसे सम्मेलन की कर्तव्योपेक्षा के सिवा और कुछ नहीं कहा जासकता। गुजराती पत्रकार परिषद् ने अपने थोड़े ही दिनों के कार्य में इस विषय की ओर काफी ध्यान दिया है। पहिले अधिवेशन की कार्यवाही तो प्राप्त नहीं हो सकी किंतु द्वितीय अधिवेशन में इस विषय की काफी चर्चा की गयी थी। सम्मेलन के मन्त्री श्री हीरालाल त्रिभुवनदास पारेखने अपने वक्तव्यमें इस विषय का उल्लेख करते हुए कहा—"पत्रकार के जीवन पर विचार कीजिये, किन परिस्थितियों में उसे काम करना पड़ता हैं, इसकी ओर दृष्टिपात कीजिये, और इस बात की कल्पना कीजिए कि काम के पीछे अधिक से अधिक दिमाग-पच्ची

करने के बाद भी उसे कितना कम पारिश्रमिक मिलता है और अन्त में प्रोविडेन्ट फण्ड, ग्रेट्युइटी पेन्शन और बोनस आदि का प्रबन्ध न होने के कारण जीवन के अन्तिम दिनों में उसे किस विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। आदि।" परिषद की कार्यवाही में भी इस विषय को काफी महत्व दिया गया। यहां तक कि सब से पहले, अधिवेशन में इसी विषय का और इसी आशय का एक प्रस्ताव किया गया :—

"पत्रकार-कला की स्थिरता तथा विकास के लिए, इस काम में लगे हुए सब भाइयों को उन के काम तथा नौकरी के अनुरूप प्रोविडेण्ट फण्ड, बोनस, बीमा, ग्रेट्युइटी आदि मिलने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस लिए यह पत्रकार परिषद पत्र-सञ्चालकों से आग्रह करता है कि वे इस सम्बन्ध की उचित योजना करें।"

क्या हमारे संपादक सम्मेलन के कर्णधार भी इस प्रश्न की महत्ताका अनुभव करके इस सम्बंध में कुछ काम करने की चेष्टा करेंगे? पत्रकार-कला की उन्नति के लिये पारिश्रमिक का प्रश्न हल करने की बहुत सख्त जरूरत है। आशा है इस ओर उचित ध्यान दिया जायगा।

——:※:——

शिक्षा-व्यवस्था

—— :०: ——

समाचार-पत्र और पत्रकारों की संख्या दिन-दिन बढ़ रही है, किंतु बहुत कम ऐसे पत्रकार देखने में आते हैं, जिन्हें अपने विषय का वास्तविक ज्ञान हो। हालत यहां तक बद्तर है कि बहुत से ऐसे पत्रकार भी जिनकी गणना काफी अच्छे सम्पादकों में की जाती है; इस विषय से अनभिज्ञ रहते हैं। इसका सबसे प्रधान कारण तो यह है कि वे इस कला को पढ़ने की ओर ध्यान ही नहीं देते। वे समझते हैं कि इसके लिए जो योग्यता आवश्यक है, वह यही है कि मनुष्य में इतना साहित्यिक ज्ञान हो कि वह अपने भाव शुद्ध भाषा में प्रकट कर सके। बस। अन्यथा यदि उन्हें इस विषय में ज्ञान का अभाव मालूम हो, तो वे इसकी पूर्ति का उद्योग करें, और उस उद्योग के करने में वे अपने आप पुस्तकों, लेखों, अनुभवी पत्रकारों से बातचीत आदि के द्वारा शिक्षा प्राप्त कर ही लें। विषय की अनभिज्ञता का दूसरा कारण यह भी है कि उनकी शिक्षा की संस्थाएँ नहीं के बराबर हैं। नहीं के बराबर क्या, वास्तव में वे हैं ही नहीं। शिक्षणालय न होने के कारण जो लोग पत्रकार का काम करना चाहते हैं, उन्हें उस कला के सीखने का अवसर नहीं मिलता। एक ओर तो वे इस काम की ओर अधिक आकृष्ट होते हैं और दूसरी ओर इसके

पढ़ानेवाली संस्थाओं का अभाव है, इस लिए उन्हें विषय की जानकारी प्राप्त किये बिना ही इस ओर पैर बढ़ाना पड़ जाता है, और पत्र-संचालकगण ऐसे पत्रकारों को काम में लगा भी लेते हैं, क्योंकि स्थिति ऐसी है कि इन से अधिक योग्य व्यक्तियों के मिलने की आशा ही नहीं की जा सकती।

किन्तु अब समय बहुत पलट गया है। समाचार पत्रीय प्रगति बहुत कुछ बढ़ गई है। पत्रकार-कला ने समाज में अपना काफी स्थान बना लिया है। इस लिए अब यह भी आवश्यक हो गया है कि जो लोग इस कला की ओर आकृष्ट हों, वे अधिक योग्य और अपने विषय के अच्छे पंडित हों। इसके लिए अब शिक्षा-शालाओं की आवश्यकता हो गयी है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कर्णधारों ने इस आवश्यकता को बहुत पहले ही महसूस किया था। उन्होंने संवत् १६७७ वाले अधिवेशन में हो, जो कलकत्ते में बाबू भगवानदास की अध्यक्षता में हुआ था, यह प्रस्ताव पास कराया था—"यह सम्मेलन अपनी स्थायी समिति को आदेश देता है कि अपनी हिंदी-विद्यापीठ में संपादन-कला की शिक्षा देने के लिए प्रबन्ध करे, साथ ही अन्य राष्ट्रीय विद्यालयों के सञ्चालकों से अनुरोध करता है कि यथासंभव वे भी संपादन कला को एक पाठ्य विषय बनावें।" इस तरह की बात केवल हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के ही दिमाग में आयी हो, सो बात नहीं। अन्य व्यक्तियों और संस्थाओं ने भी शिक्षालयों और विद्यापीठों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। इस

प्रकार लगातार ध्यान आकृष्ट कराने पर भी कुछ नहीं हो सका। हिन्दी-संपादक-सम्मेलन; गुजराती पत्रकार-परिषद् आदि सबने अपने-अपने अधिवेशनों में इस विषय को चर्चा को, किंतु अरण्य-रोदन की भांति उनकी सब बातें व्यर्थ ही सी गयीं। न तो सरकारी विश्वविद्यालय और शिक्षणालय इस ओर ध्यान देते हैं और न राष्ट्रीय संस्थाएँ ही। हाँ, कुछ दिन से मद्रास विश्वविद्यालय में इस विषय को स्थान अवश्य मिल गया है, किंतु अभी कोई फल सामने नहीं आया और न यही मालूम पड़ा कि शिक्षा को व्यवस्था समुचित है या नहीं। हिन्दी-विद्यापीठ में भी इसकी शिक्षा का प्रबन्ध है। मगर शिक्षा-व्यवस्था के सम्बंध में जो कुछ मालूम हुआ, वह इतना निराशाजनक है कि उसका उल्लेख करते हुए भी संकोच होता है। हिन्दी-विद्यापीठ एक ऐसी संस्था है, जिसका हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और सम्पादक-सम्मेलन से काफी घना संबन्ध है। इस संस्था में भी पत्रकार-कला की शिक्षा की इतनी अपर्याप्त व्यवस्था है कि देखकर आश्चर्य और दुःख होता है। इस विषय की पूछताछ करने पर जो मालूम हो सका, उसका वर्णन सूचना देने वाले सज्जन के ही शब्दों में नीचे दिया जाता है:—"सम्पादन-कला के अन्तर्गत अर्थशास्त्र आवश्यक विषय हैं। इसके अतिरिक्त राजनीति, अथवा धर्मशास्त्र में से कोई एक, अङ्गरेजी, संस्कृत, बंगाली, गुजराती, मराठी और त्वरा-लेखन में से एक विषय तथा विज्ञान, समालोचना और दर्शन इन विषयों में से एक विषय

लेना पड़ता है। ……हिन्दी-विद्यापीठ में सम्पादन कला की पढ़ाई का कोई विशेष और समुचित प्रबन्ध नहीं है। एक ही अध्यापक हैं जो गणित के आचार्य उपन्यासों के आलोचक……हैं—श्रीयुत पं० अवध उपाध्याय। वे सम्पादन कला के उपर्युक्त विषयों की शिक्षा देने का अवकाश ही नहीं पाते। हैं बड़े अध्ययनशील, चाहें तो शिक्षा दे भी सकते हैं…… ”इस पत्र को उद्धृत कर चुकने के बाद वहां की पढ़ाई आदि के सम्बन्ध में किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं रह जाती। साहित्य सम्मेलन की ओर से सम्पादन कला की जो परीक्षा होती है वह तो और भी तमाशा है। परीक्षा विषय में केवल वे ही विषय रखे गये हैं जिनका ऊपरवाले पत्र में उल्लेख हो चुका है। बड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार की परीक्षा पास करने पर सम्पादन कला की विज्ञता की प्रमाण पत्र कैसे दे दिया जाता है? 'मारूं घुटना फूटे आँख' वाली दशा है। परीक्षा ली जाय—अर्थशास्त्र, राजनीति, भाषा विशेष और विज्ञान आदि विषयों की और प्रमाण पत्र दिया जाय सम्पादन कला का-!क्या मजाक है! मानो सम्पादन कला कोई स्वतन्त्र विषय ही नहीं है, और जो लोग उक्त विषय जानते हैं मानो सम्पादक की पूरी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं! यह मान लेने में कोई संकोच नहीं कि उक्त विषय सम्पादन कला से अधिक निकट सम्बन्ध रखते हैं—सम्पादन कला तो एक ऐसा विषय है जिससे प्रायः प्रत्येक विषय का कुछ न कुछ सम्बन्ध होता है—किन्तु ये विषय ही

सम्पादन कला हैं यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता। साहित्य सम्मेलनमें जिससे लोग आशा करते है कि इन साधारण विषयों के अन्तर को जानता हो इस प्रकार की असावधानी हो यह केवल खेद की ही नहीं लज्जा की भी बात है। इस ओर कुछ सुधार हुआ है। मगर वह भी अभी निराशा-प्रद है। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि हिंदी विद्यापीठ में सम्पादन कला की शिक्षा का कोई भी ऐसा प्रबन्ध नहीं है जिस पर सन्तोष किया जा सके। वहां न तो रिपोर्ट लेने की बातें बताई जाती है, न संपादन करने की बातें बताई जाती है, न लेख और टिप्पणी आदि लिखने को बातें बताई जाती है, न प्रूफ संशोधन की बातें बताई जाती है, न कोई प्रेस है, न अखबार का कोई काम है, न उस विषय का ज्ञाता कोई अध्यापक है, और न कोई अन्य आवश्यक सामान। ऐसी दशा में विद्यार्थी क्या शिक्षा पा सकते है, यह साधारण बुद्धि रखने वाले सभी व्यक्ति जान सकते हैं।

इस प्रकार की शिक्षण-शालाओं और ऐसी शिक्षाव्यवस्थाओं से हमारा उद्देश्य नहीं सिद्ध हो सकता। हमें तो पं० माखनलाल जी के शब्दों में 'ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिससे पत्रकार-कला की जड़ जम जाय।' इसके लिए योग्य शिक्षणालय, योग्य शिक्षकों और योग्य सामग्रियों की आवश्यकता है। दूसरे-दूसरे देशों में इस कला की शिक्षा के लिए अनेकानेक व्यवस्थाएँ हैं। लन्दन में लार्ड नार्थक्लिफ द्वारा स्थापित पत्रकार-शिक्षाशाला काफी ख्याति पा रही है। अमेरिका में तो कोई सवा सौ संस्थाएँ

इस विषय की शिक्षा देने के लिए हैं। जिनमें से बहुतसी सरकार द्वारा सञ्चालित होती हैं और शेष स्थानोय बोर्डों आदि के द्वारा। अब वहां एक नई स्कीम के अनुसार इस विषय की शिक्षा का प्रयोग (Experiment) किया जा रहा है। प्रायः प्रत्येक बड़े-बड़े स्कूल के साथ एक छोटा सा छापाखाना रखा जाता है। वहां पर उसी प्रेस में कम्पोज़ करना सिखाया जाता है, तथा विद्यार्थियों से स्कूल की खबरें या तत्स्थानीय अन्य खबरें लिखा कर उन पर टीका-टिप्पणी लिखने का अभ्यास कराया जाता है। आपस में ही विद्यार्थियों से रिपोर्टर का काम, प्रूफ-रीडर का काम, सम्पादक का काम तथा ऐसे ही अन्य काम कराये जाते हैं। उन्हीं से सब लिखाया जाता है, विद्यार्थी ही उसके सम्पादक होते हैं, और यह उन्हीं का पत्र होता है। इस प्रकार विद्यार्थियों द्वारा निकाला हुआ पत्र बड़ा नहीं होता। एक-दो फारम में पत्र निकाला जाता है। इन तमाम कामों में शिक्षक उन विद्यार्थियों को बराबर योग देता रहता है और सलाह दिया करता है। इस प्रकार पत्रकार-कला के विद्यार्थियों को व्यावहारिक शिक्षा मिलती रहती है। यह काम हमारे यहां भी किया जा सकता है, पर हमारी सरकार तो हमारी है ही नहीं, फिर मदद कौन करे? इसी लिए सब आयोजन और विचार ज्यों के त्यों पड़े रहते हैं। अभी कुछ दिन हुए, गुजराती पत्रकार-परिषद् ने बम्बई-विश्वविद्यालय से अनुरोध किया था कि वह पत्रकार-कला की शिक्षा की व्यवस्था करे। उस समय के वाइस चांसलर

सर चिमनलाल सीतलवाद ने समावर्तन-संस्कार के अवसर पर दिये गये अपने भाषण में इस बात का उल्लेख करते हुए आशा भी दिलायी कि इस पर विचार किया जायगा, किंतु वह प्रस्ताव अभी ज्यों-का-त्यों पड़ा है, और कुछ भी नहीं हुआ! सरकारी स्कूल और सरकारी शिक्षा-संस्थाएँ तो भला वैसी हैं ही; जो संस्थाएँ राष्ट्रीय होने का दम भरती हैं, जो सरकार से सीधा सम्बन्ध भी नहीं रखतीं, वे भी कुछ नहीं कर रही हैं। सम्पादक-सम्मेलन के सभापतियों और पत्रकार-कला से सहानुभूति रखने वाले गण्यमान्य सज्जनों के बराबर चिल्लाते रहने पर भी इस प्रकार की उदासीनता वास्तव में पश्चात्ताप की बात है।

इस प्रकार की शिक्षा-शालाएँ खुल जाने पर उनके समस्त विद्यार्थी अच्छे पत्रकार हो जायंगे, यह मैं नहीं मानता। पत्रकार जन्मजात होते हैं, किन्तु शालाओं से इतना अवश्य होगा कि जो इस प्रकार के जन्मजात गुण सम्पन्न सम्पादक हैं, वे अपनी योग्यता और बढ़ा सकेंगे और जो ऐसे नहीं हैं, वे भी सतत अध्यवसाय और परिश्रम से बहुत कुछ हो जायेंगे। इस लिए इस प्रकार की शिक्षा-शालाओं की आवश्यकता है।

गुजराती पत्र के सम्पादक और गुजराती पत्रकार-परिषद् के भूतपूर्व सभापति श्री मणिलाल इच्छाराम देसाई ने अपने भाषण में इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि इस विषय की वास्तविक शिक्षा तो किसी समाचार पत्र के सम्पादकीय कार्यालय में ही मिल सकती है। इस बात से किसी को

भी एतराज नहीं हो सकता, किंतु समाचार पत्र के सम्पादकीय कार्यालय शिक्षणालय नहीं बन सकते। इसलिए स्वतंत्र शिक्षणालयों की स्थापना की आवश्यकता तो है ही। पं० माखनलालजी चतुर्वेदी ने द्वितीय सम्पादक-सम्मेलन के सभापति की हैसियत से भाषण देते हुए इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाला था। आपने उपर्युक्त अमेरिकन प्रथा का अनुकरण करने का अनुरोध करते हुए कहा था—"एक सम्पादन-कला के विद्यापीठ की आवश्यकता है। ऐसा विद्यापीठ किसी योग्य स्थान पर, बुद्धिमान्, परिश्रमी और अनुभवी सम्पादक शिक्षकों द्वारा संचालित होना चाहिए। उक्त पीठ में अन्यान्य विषयों का एक प्रकाण्ड ग्रन्थ संग्रहालय होना चाहिए। वहां सरकारी गैर सरकारी रिपोर्टें, प्रस्ताव आदि की व्यवस्थाबद्ध फाइलें होनी चाहिए। पीठ की तालीम में इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीति और साहित्य के परम्परावलम्बी ज्ञान के रूप में पत्र-सञ्चालन के विविध अङ्गों का समावेश होना चाहिए। वहां यह बताया जाना चाहिए कि प्रत्येक विषय का अभ्यास कैसे किया जाता है, विषय में प्रवेश कैसे किया जाय, साधन सामग्री कैसे जुटाई जाय और उस का किस प्रकार उपयोग किया जाय। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद किन-किन पद्धतियों से किया जाय। घटनाओं को काव्य, कहानी, कुतूहल, गंभीरता, विरोध, समर्थन और उपेक्षा का रूप कैसे दिया जाय, संसारकी घटनाएँ चुनी कैसे जायँ और उन का विविध तेजस्वी रूपों में पृथक्करण

कैसे हो। बड़ी बड़ी बातों को छोटा स्वरूप कैसे दिया जाय, और कोई भी बात समझ लेने के बाद समाचार-पत्र में किस प्रकार दी जाय, आलोचानाएँ कैसे की जायँ, आलोचनाओं के जवाब कैसे लिखे जायँ, किन आलोचनाओं में विषय की मीमांसा करते समय व्यक्ति की उपेक्षा की जाय और किन में नहीं, आदि बातोंकी शुद्ध और सप्रयोग शिक्षा देनेकी व्यवस्था होनी चाहिए। इसी संस्था द्वारा, प्रयोग के लिए, एक साप्ताहिक पत्र और एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया जाय। इस संस्था से उत्तीर्ण होने के पश्चात् विद्यार्थियों को देश के कुछ और उत्तम समाचार-पत्रों के कार्यालयों में कुछ मनस्वी सम्पादकों के पास प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए रखा जाय। इस प्रकार अंग्रेजी पढ़ने-लिखने और समझने का निश्चित ज्ञान पा चुकनेवाले तरुण चार-पांच वर्षों में संपादकों के काम की चीज हो सकेंगे। रिपोर्ट, प्रूफ, भेंट तथा अन्य भिन्न-भिन्न संपादकीय कार्यों से गुजर कर उन में से कुछ व्यक्ति, यदि उन में स्वाभाव सिद्ध लगन हुई, तो देश के अच्छे पत्रकार हो सकेंगे।" चतुर्वेदीजी की यह व्यवस्था बहुत सुन्दर मालूम पड़ती है। कुछ केन्द्रिय शिक्षा-शालाएँ इस प्रकार की होनी चाहिए, किन्तु इस प्रकार की एकाध संस्था खोल कर ही सन्तोष न कर बैठना चाहिए। प्रत्येक प्रान्त में इस प्रकार की एक संस्था तो होनी ही चाहिए, किन्तु इस के अतिरिक्त उपरोक्त अमेरिकन प्रथा के अनुरूप अन्य छोटी छोटी संस्थाओं की व्यवस्था भी आवश्यक है। ये संस्थाएँ यदि सरकार खोलने के लिए तैयार न हो, तो

डिस्ट्रिक्टबोर्ड और म्यूनिसिपल बोर्ड आदि इस काम को बड़ी आसानी से उठा सकते हैं। अमेरिका में ये संस्थाएँ इस काम को उठाये हुए भी हैं। आवश्यकता थोड़े से परिश्रम और लगन की है। पत्र कार-कला से, दिलचस्पी रखने वाले नेताओं और अधिकारियों को इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए।

——:०:——

पत्रकार-परिषद्

——:o:——

"परोपदेशे पाण्डित्यम्" की कहावत, संगठनके सम्बंध में जैसी पत्रकारों के लिए चरितार्थ होती है वैसी शायद ही और किसी के लिए होती हो। पत्रकार दूसरों को तो लम्बे-लम्बे लेख लिख कर बड़े-बड़े शब्दों में उपदेश देते रहते हैं—संगठन करो, सब मिल कर अपनी मांगें पेश करो, सब मिल कर ही अपनी कार्य-पद्धति तैयार करो और सब उसी कार्य-पद्धति के अनुसार काम करो इत्यादि—मगर जब अपने लिए इन सब प्रस्ताओं पर अमल करने की बात कही जाती है,तब खामोश! सब जोश-खरोश खतम हो जाता है। यह 'परोपदेशे पाण्डित्यम्'की कहावत को चरितार्थ करना नहीं, तो क्या है? कहने का तात्पर्य यह नहीं कि इस प्रकार का कोई संगठन है ही नहीं। संगठन है; एक सम्मेलन भी स्थापित है, उस के अधिवेशन भी होते हैं, प्रस्ताव पास होते हैं, सब कुछ होता है, मगर काम कोई सामने नहीं दिखलायी पड़ता! इसका सब से प्रधान कारण यह है कि पत्रकार-वर्ग एक दूसरे की बात मानने और उसके अनुसार काम करने के लिए तैयार नहीं। शायद वे इस में अपने गौरव को हानि समझते हैं। जो हो, कम से कम इतना जरूर है कि सम्पादक-सम्मेलन के प्रति पत्रकारों की बहुत ही कम सहानुभूति है। न अंग्रेजों के समाचार-

पत्रों का ही कोई संगठन है, न अन्य एतद्देशीय भाषाओं के पत्रकारों का और न हिन्दी का ही। हिन्दी की दशा तो और भी अधिक शोचनीय है।

हमारे यहां ऐसी महत्व पूर्ण संस्था का अभाव बहुत दिनों से चला आ रहा है। उस अभाव को हिन्दी के पत्रकारों ने बहुत पहिले, शायद हिन्दुस्तान में सब से पहिले, अनुभव किया था। जब, देश में किसी भाषा के पत्रकारों का कोई संगठन स्थापित नहीं हुआ था, तब सन् १८८५ ई० में ही हिन्दी के पत्रकारों ने इस की आवश्यकता अनुभव की। और उसी सन् में भारत-जीवन के तात्कालिक सम्पादक स्वर्गीय बा० रामकृष्ण वर्मा के सभापतित्व में एक सम्पादक-समिति स्थापित हुई। उस समिति के मन्त्री थे स्वर्गीय श्री राधाचरण गोस्वामी; किन्तु दुर्भाग्यवश यह समिति अधिक दिनों तक न चल सकी। एक ही वर्ष के बाद इस का अन्त हो गया। इस के बाद सन् १९०७ ईस्वी में फिर इस विषय की चर्चा सुन पड़ी। उस साल फिर प्रयाग में ही सम्पादक-समिति की स्थापना हुई। इस बार उस सूत्रके सञ्चालक श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन हुए। टण्डन जी के निरीक्षण और उन की कार्य-कुशलता के कारण यह संस्था किसी-न-किसी रूप में सन् १९१३ ईस्वी तक स्थापित रही। सन् १९१० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना के बाद से इस के सालाना अधिवेशन साहित्य सम्मेलन के साथ-साथ होते रहे। किन्तु सन् १९१३ के बाद से यह संगठन टूट गया। सन् १९१३ ईस्वी में ही जब लखनऊमें साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, तभी एक

पत्रकार के शब्दों में 'गंगा जी का बेड़ा गोमती में आ कर डूब गया।' फिर कुछ दिन तक ऐसे ही काम चलता रहा। सन् १९२९ ईस्वी में जब साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन वृन्दावन में हुआ तब वहाँ के उत्साही कार्यकर्ताओं ने सम्पादक-सम्मेलन का फिर आयोजन किया और 'आज' के सुयोग्य सम्पादक पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर की अध्यक्षता में सम्पादक सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन भी कराया। इस बार का संगठन शायद पहले से कुछ अच्छा था। इस के कई कारणों में से सब से प्रधान कारण तो यह है कि अब समाचार पत्रों का विस्तार काफी हो चुका है। और दिन-दिन बढ़ रहा है। सम्पादकगण इस उन्नति को सर्वतोमुखी बनाने की इच्छा भी करने लगे हैं और पत्रकारों के नानाविध संकटों, बाधाओं, असुविधाओं आदि को देख कर सब को उनकी उन्नति, रक्षा और व्यवस्था की आवश्यकता भी प्रतीत होने लगी है। इस लिए आशा की जाती है कि अब की बार के इस संगठन में अधिक स्थिरता रहेगी।

यह नव संगठित संमेलन भी साहित्य-सम्मेलन के साथ-साथ होता है।

इस सम्मेलन के उद्देश्य ये हैं :—

[१] हिन्दी-समाचार-पत्रों के संपादकों, लेखकों और सञ्चालकों में परस्पर सहयोग स्थापित करना।

[२] देश के लाभकारी आन्दोलनों में हिन्दी पत्रों की सम्मिलित शक्ति का प्रयोग करना।

[३] विपद्ग्रस्त संपादकों की सहायता करना।

[४] हिंदी-पत्र-संपादन-कला की उन्नति के लिए प्रयत्न करना।

[क] व्याख्यानों द्वारा।

[ख] पुस्तक प्रकाशन द्वारा।

[ग] उपयुक्त सूचनाओं द्वारा।

[घ] परीक्षाओं द्वारा।

[॰] हिन्दी पत्रों के लिए एक 'न्यूज-एजेंसी' स्थापित करना और भिन्न-भिन्न विषयों पर हिंदी पत्रों की संमतियों को अन्य भाषाओं के पत्रों को भेजना।

उस उद्देश्यों के विरुद्ध कुछ कहने की गुंजाइश नहीं। जहां तक उद्देश्यों का सम्बन्ध है, वहां तक वे बहुत अच्छे हैं। किन्तु सवाल इन उद्देश्यों की सिद्धि के लिए तदनुरूप काम करने का है। यह काम नहीं हो रहा है यही दुःख की बात है। श्रीयुत प० माखनलालजी चतुर्वेदी ने सम्पादक सम्मेलन वाले अपने भाषण में इस बात पर खेद प्रकट करते हुए इसके कारणों पर भी विचार किया था। संगठन में पत्रकारों के भाग न लेने के कारणों में उन्होंने इन बातों को गिनाया था—"एक तो सम्पादकगण या संचालकगण स्वयं अपने अपने पत्रों के जीवन विधाता हैं। फिर भला वे किसीके अनुशासन में कैसे रहें? दूसरे जिन पूंजी पतियों के हाथ में देश के कुछ प्रभावशील समाचार पत्र हैं, वे शायद इस बात का भय मानते हैं, कि यदि साहसी गरीब 'उपकरण'

पत्रकार संघ में बलवान हो गया, तो निरंकुशता को एक गहरी ठोकर लगेगी और उस के ठोकर लगते ही पूंजीवाद की इमारत की नींव हिलाने लगेगी। इस का तीसरा कारण भी शायद है। संगठन का काम बिना धन के नहीं चल सकता और धन धन-पतियों की जेब में है। फिर गरीब पत्रकार संगठन करें तो किस बिरते पर?" चतुर्वेदीजी के बताये हुए कारण ठीक है, पर धनाभाव का कारण कारण होते हुए भी एक वहाना सा देख पड़ता है। यदि योग्य और प्रभावशाली पत्रकारों की रुचि इस विषय के प्रति हो जाय, वे इसमें भाग लेने लगें, तो धनाभाव बड़ी सरलता के साथ दूर हो सकता है। आखिर दूसरी संस्थाएँ भी तो चलती ही है। उनमें भी तो धन की आवश्यकता पड़ती है और वह पूरी ही की जाती है। फिर इसमें वह क्यों न पूरी होगी ? मेरी समझ से धनाभाव का कारण यह है कि लोगों को इस से दिलचस्पी नहीं है। इसमें दिलचस्पी न लेनेका कारण उनका निरंकुशता पूर्ण अनुचित स्वाभिमान या घमंड है जो पत्रकारों को एक दूसरे की बात के मानने के लिए तय्यार नहीं होने देता। एक बात और भी है, वह यह कि अभी इस संस्था की आवश्यकता कायथोचित अनुभव नहीं किया गया। जो हो, किसी कारण से भी सही जब इसकी स्थापना हो ही चुकी हैं और इस की आवश्यकता भी है ही, तब यह हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि हम लोग जुटकर इसकी सफलता के लिए पूर्ण प्रयत्न करें।

पत्रकारों की इस प्रकार की संस्था के कार्यों का संक्षिप्त

उल्लेख तो ऊपर उद्धृत किये गये सम्पादक सम्मेलन के उद्देश्यों में आ चुका है, किन्तु इस स्थान पर यदि कुछ बातें बिस्तार के साथ भी कह दी जांय तो अनावश्यक न होगा। दो तीन बातें खास तौर से विचार करने की हैं। एक तो, और शायद सबसे प्रधान, बात यह है कि अधिकांश सम्पादकगण अपने धंधे को बहुत पतित बनाने को ओर झुक पड़े हैं। अपने तुच्छ स्वार्थ के मिथ्या प्रलोभन में पड़कर वे आदर्शच्युत हो जाते हैं और अपने पवित्र धंधे के मत्थे पर कलंक की गन्दी कालिमा पोतकर कभी अश्लीलसे अश्लील लेख, विज्ञापन आदि छापते हैं, कभी आत्माका हनन कर रुपये के लोभ में इच्छाके विरुद्ध व्यक्ति विशेष की झूठी प्रशंसा या द्वेषमूलक निन्दा करते हैं और कभी आदर्श और कर्तव्य को तिलांजलि देकर ऐसे ऐसे समाचार और ऐसे ऐसे मजमून छापते हैं, जो उनके पाठकों को रुचि बिगाड़ कर उन्हें गहरे गढ़े में ढकेल देते हैं! इस भयंकर और घातक प्रवृत्ति को रोकनेकी बहुत बड़ी जरूरत है। सम्पादक सम्मेलन को समाचार पत्रों को नीति सम्बन्धी ऐसे सार्वभौम नियम बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, जिनके अनुसार काम करने के लिए समाचार पत्रों को आदेश दिया जा सके। पं० बाबूराव पड़ारकर ने इस कार्य को 'पत्रकारों का आदर्श ठहराना' कहकर याद किया है और श्री रामानन्द चटर्जी ने इसे 'नीति और शिष्टाचार (Ethics and Etiquette) स्थापित करना कहा है। यह दोनों बातें एक ही है और इसका प्रबन्ध करना चाहिए। यह ठीक है कि इस प्रकार

निर्दिष्ट आदेश और नियम अनेक समाचार पत्रों के संपादकों को मान्य न होंगे, वे स्वेच्छाचार पूर्वक इनकी पूर्ण अवहेलना भी करेंगे, मगर सम्मेलन परचों और पत्रों के द्वारा ऐसे समाचारपत्रों की कड़ी आलोचना करके उन्हें अपनी बात मानने के लिए मजबूर कर सकेगा।

दूसरी बात जिसकी तरफ सम्पादक सम्मेलन को खास तौर से ध्यान देना चाहिए वह है समाचार समिति के विषय की। समाचार समितियों (News Agencies) का वर्तमान प्रबन्ध बहुत त्रुटिपूर्ण है। एसोसियेटेड प्रेस, रूटर, फ्री प्रेस, ये ही तीन समाचार समितियां हैं, जिनसे हमें समाचार प्राप्त होते हैं। इनमें से पहली दो समितियों को तो पूर्ण सरकारी समझना चाहिए। इनके द्वारा जो समाचार प्राप्त होते हैं उनमें सरकारी आवरण चढ़ा रहता है। हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए इनके समाचार अधिक लाभ के नहीं होते। तीसरी समिति अवश्य कुछ निष्पक्ष-भाव से राय देती है किन्तु इससे भी सन्तोष प्रद समाचार संग्रह नहीं होते। समाचार पत्रों में हमें अपने समाज और अपने राष्ट्र का प्रतिबिम्ब जैसा का तैसा देखने को बहुत कम प्राप्त होता है। इसके लिए आवश्यकता है एक ऐसी समाचार समिति की, जो इस प्रकार के समाचार हमारे पास पहुंचा सके। ऐसी समाचार समितियों को अपना काम पक्षपात शून्य नितांत राष्ट्रीय भाव से करना चाहिए। केवल आश्चर्य, क्रोध, घृणा, विद्वेष और शत्रुता पैदा करने वाली घटनाओं के ही नहीं वरन् ऐसी घटनाओं के भी

समाचार भेजना चाहिए जो दया, श्रद्धा, त्याग, तपस्या, आदि उच्च भावों को जाग्रत करने में सहायक हों। श्री रामानन्द चटर्जी ने अपने एक लेख में इसी विषय की चर्चा करते हुए लिखा था--"हम इस बात की रिपोर्ट तो बहुत जल्दी दे देते है कि अमुक अभियुक्त अमुक मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया मगर इस बात को रिपोर्ट नहीं देते कि अमुक दयावान मनुष्य ने एक अन्धे को गाड़ी मोटर आदि के भयानक जमघट से सहारा देकर पार लगाया। क्रूरता और बर्बरता के उदाहरण तो हम जनता के सम्मुख रख देते हैं, किन्तु दया और शिष्टता के उदाहरण नहीं रखते।" वास्तव में यह बात विचारणीय हैं। हमें मानव जीवनकी इन उच्चतम भावनाओं को जाग्रत करने वाले समाचारों की ओर ध्यान देना ही चाहिए। यह काम समाचार समिति स्थापित करने से सरलता पूर्वक किया जा सकता है।

तीसरी बात जिसकी ओर खास तौर से ध्यान दिलाना हैं, वह है पत्रकारों की रक्षा, उनके स्वत्वों की रक्षा, उनके प्राणों की रक्षा और उनके आश्रितों की रक्षा। पत्रकारों की आर्थिक अवस्था बड़ी खराब है और यही अवस्था जीवन की सबसे प्रधान समस्या है। इसलिए पत्रकारों की इस अवस्था का सुधार करने के लिए बहुत शीघ्र प्रयत्न होना चाहिए। गुजराती पत्रकार परिषद ने भी इस ओर ध्यान दिया हैं। अभी पिछले ही अधिवेशन में उसने एक प्रस्ताव पास किया है जिसमें पत्र संचालकों से कहा गया है कि वे अपने यहां के पत्रकारों के लिए पेन्शन, बोनस,

ग्रेच्युइटी, प्रोविडेण्ट फण्ड आदि की व्यवस्था करें। इस आशय के प्रस्ताव हिन्दी सम्पादक सम्मेलन द्वारा भी स्वीकृत किये जाने चाहिए और उसको अमल में लाने के लिए पूर्ण प्रयत्न भी होना चाहिए। आर्थिक अवस्था के सम्बन्ध में श्री रामानन्द चटर्जी ने एक योजना पेश की है। उनका कहना है कि एक अखिल भारतवर्षीय पत्रकार परिषद् हो जिसकी शाखाएँ प्रत्येक प्रान्त में हों। उसके अधीन पत्रकार सहायक कोष नाम से एक कोष स्थापित किया जाय। इस कोष के द्वारा उन पत्रकारों की सहायताकी जाय, जिन पर राजद्रोह या ऐसे ही किसी अन्य अभियोग पर मामला चला हो और इसी कोष से विपद्ग्रस्त पत्रकारों और उनकी मृत्यु के कारण विपत्ति में पड़े हुए उनके कुटुम्बियों की सहायता की जाय। यह योजना ध्यान देने योग्य है।

इन सब बातों के अतिरिक्त संपादक-सम्मेलन को सतर्कतापूर्वक समस्त घटनाओं को देखते रहना चाहिए और यह सोचते रहना चाहिए कि कौन सी बात पत्रकारों के संबन्ध में क्या प्रभाव डालेगी। कानूनों की ओर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। वैसे ही हमारा मार्ग इन कानूनों के कांटों के मारे दुर्गम हो रहा है, तिसपर भी नये-नये कांटे तैयार ही होते जा रहे हैं। तार, पोस्ट आफिस, रेलवे आदि की अधिकाधिक सुविधाएं प्राप्त करने की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। इस संबंध में हमारे यहां के नियम और महसूल आदि अन्य देशों की अपेक्षा अधिक कड़े हैं। इनमें सुविधा जनक सुधार करने की

बड़ी जरूरत है। तारों के संबंध में एक बात और भी विचारणीय है कि यदि ऐसी व्यवस्था हो जाय, जिससे तार नागरी-लिपि में में भी भेजे और प्राप्त किये जा सकें, तो बहुत सुविधा हो जाय। पत्रकारों में कभी-कभी आपस में झगड़े हो जाते हैं। ऐसे अवसरों पर संपादक-सम्मेलन को इन झगड़ों को दूर करने और अधिक शांतिमय वातावरण तैयार करने का प्रयत्न करना चाहिए। उदीयमान नये पत्रकारों को उत्साहित करने के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे आयोजनों पर विचार करना चाहिए जो पत्रकार-कला की सामूहिक उन्नति में सहायक हों, और जिन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा इस उन्नति की आशा हो उनकी यथासाध्य सहायता करनी चाहिए। पत्रकारों के जीवन चरित्र तथा उनके अनुभवों को खास तौर से एकत्र करके लिखाने का प्रयत्न करना चाहिए। पत्रकारों की योग्यता की परीक्षा करने के लिए भी उपाय सोचते रहना चाहिए; ताकि अयोग्य पत्रकार इस धंधे में पड़कर इसे बदनाम न कर सकें। योग्य पत्रकारों के परिश्रम की शरह को उन्नत करने का भी संपादक-सम्मेलन को सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए। पत्र संचालकों से मिलकर उन के लिए योग्य पत्रकारों को जुटा देने का काम भी संपादक-सम्मेलन द्वारा हाथ में लिया जा सकता है। अच्छे-अच्छे पत्रकार पैदा करने के लिए लोगों को उत्साहित किया जाना चाहिए कि वे पत्र-संपादन कला सम्बन्धी अच्छी-से-अच्छी पुस्तकें लिखें, जिनको पढ़ कर विद्यार्थी इस कला का रहस्य समझ सकें। इस

काम के लिए यदि आवश्यकता हो, तो ऐसे लेखकों के लिए पुरस्कार का प्रलोभन भी दिया जाय। पुस्तक लेखन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के कामों के लिए भी—जैसे योग्यतापूर्वक रिपोर्टिंग करना, भेंट करना, संपादन करना, आदि—उचित पुरस्कार देने की व्यवस्था करनी चाहिए। इससे प्रत्येक विषय की ओर विद्यार्थियों का झुकाव होगा और पत्र-संपादन-कला की सर्वतोमुखी उन्नति होगी। इस प्रकार का काम गुजराती पत्रकार परिषद द्वारा शुरू भी किया जा चुका है। उन्होंने रिपोर्टिंग का अच्छा काम करने के लिए, [क्योंकि यही काम सबसे अधिक महत्व का है और वर्तमान समय में यह सबसे अधिक त्रुटिपूर्ण भी है] पुरस्कार की योजना भी की है। हिंदी-संपादक-सम्मेलन को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए।

सरकारी रिपोर्टें तथा अन्य सरकारी कागजात, हमारे यहाँ नहीं भेजे जाते। इस से हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सरकारी कारगुजारियों की समुचित आलोचना अपने पाठकों के सामने पेश करने में हमें कठिनाई पड़ती है! सम्पादक-सम्मेलन को चाहिए कि वह ऐसा प्रयत्न करे जिससे ये कागजात बिना भेद भाव के समस्त प्रतिष्ठित समाचार-पत्रों के पास, चाहे वे किसी भाषा के क्यों न हो, भेजे जाया करें। इसके अतिरिक्त सम्पादक-सम्मेलन को समाचार-पत्रों का एक श्रृङ्खलाबद्ध इतिहास तय्यार कराने, समाचार-पत्रों के लिए कागज, स्याही आदि ऊपरी सामान

सस्ता कराने, मुद्रण-सम्बन्धी योग्यता बढ़ाने आदि के लिए भी उद्योग करना चाहिए। टाइप की ओर खास तौर से ध्यान देने की जरूरत है।हमारे वर्णों का आकार-प्रकार प्रेस के काम के लिए बहुत अधिक असुविधा-प्रद है। जहाँ अंग्रेजी आदि भाषाओं में केवल ५०-६० प्रकार के टाइप ही से काम चल जाता है, वहाँ हमारे यहाँ लगभग ५०० प्रकार के टाइप लगते हैं। ऊपर-नीचे जुड़नेवाली मात्राओं और संयुक्ताक्षरों के कारण यह असुविधा और भी अधिक खटकती है। इस दिशा में अक्षर शास्त्रियों द्वारा अपने अक्षरों में आवश्यक सुधार कराने का काम भी बहुत आवश्यक है। विदेशों में इस दिशा में रोज नई खोज होती रहती है। हमारे यहां, जहां की वर्णावली इतनी दोषपूर्ण है, कुछ नहीं हो रहा है। गुजराती और मराठी आदि के विद्वानों ने इस ओर ध्यान देना शुरू कर दिया है। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि हिंदी में इस बिषय पर विचार ही नहीं किया गया। मेरा अभिप्राय केवल यह है कि हिन्दी में इस ओर न अपेक्षित आंदोलन किया गया और न प्राप्त प्रस्तावों के अनुसार काम ही किया गया। मराठी के 'श्रद्धानन्द' समाचार-पत्र ने तो कुछ बातों को अपने पत्रों में स्थान देना भी शुरू कर दिया है। इस सम्बन्ध में श्री जगमोहन 'विकसित' ने भी एक प्रस्ताव पेश किया है। आपका कहना है कि 'अ'कार को छोड़कर शेष सब स्वर सरलता पूर्वक उड़ाये जा सकते हैं और मात्राओं की सहायता से--अकार में सम्बन्धित मात्राएँ लगा देने से—समस्त स्वरों का काम निकल

सकता है। एक सलाह यह भी है कि व्यञ्जन अकार स्वर के साथ न लिखे जायं। वे एक प्रकार से आधे हों और उनमें यथावश्यक मात्राएं या अक्षर जोड़ दिये जाया करें। श्री रामानन्द चटर्जी को सलाह है कि अक्षरों में मात्राएँ ऊपर से न लगा कर संबंधित अक्षर के आगे मात्रा-व्यञ्जक स्वर लिख दिया जाया करे। इस सम्बन्ध में काफी महत्वपूर्ण सलाह श्री गणेशराम मिश्र ने बहुत दिन हुए दी थी, जब उन्होंने 'सरस्वती' में इस सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित कराया था। मराठी के प्रसिद्ध विद्वान बैरिस्टर सावरकर ने तो इस सम्बन्ध में एक पुस्तक तय्यार की है, जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। ये सब बातें विचारणीय हैं।

अपनी तमाम बातों को प्रकाश में लाने तथा उनको कार्यान्वित करने के निमित्त आंदोलन करने के लिए सम्पादक-सम्मेलन को एक प्रकाशन-विभाग भी स्थापित करना चाहिए। उस प्रकाशन-विभाग द्वारा पत्रकार-कला-सम्बन्धी अच्छी-अच्छी पुस्तकें योग्य व्यक्तियों से लिखाकर प्रकाशित कराने के अलावा उसे एक दैनिक या साप्ताहिक पत्र भी चलाना चाहिए। उसी पत्र द्वारा उन समाचार-पत्रों और पत्रकारों की आलोचना भी की जा सकेगी, जो मिथ्याभिमानवश सम्पादक-सम्मेलन की बात मानने को राजी न हों। इस विभाग का एक सुन्दर पुस्तकालय होना चाहिए। इस पुस्तकालय में संदर्भ ग्रन्थ (Reference books) तथा अन्य पुस्तकों आदि के साथ-साथ खास-खास पत्रों की व्यवस्थाबद्ध फाइलें भी होनी चाहिए। संपादक-सम्मेलन को

समाचार-पत्रों का एक विस्तृत इतिहास तय्यार कराने की भी व्यवस्था करनी चाहिए। वर्तमान पत्रों और पत्रकारों की एक डाइरेक्टरी [विस्तृत सूची] तय्यार करानी चाहिए। गुजराती-पत्रकार-परिषद् इस प्रकार का काम कर भी रही है। समाचार-पत्रों का इतिहास लिखने के सम्बन्ध में कुछ दिन हुए श्री अवन्त-बिहारी माथुर की एक सूचना पढ़ने को मिली थी। सुना है, अब वह तय्यार भी हो गया है। सम्पादक-सम्मेलन को ऐसे लेखों के लिखनेवालों की यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए।

अन्त में दो शब्द सम्पादक-सम्मेलन नाम के सम्बन्ध में कहना आवश्यक प्रतीत होता है। कि संपादक शब्द एक देशीय है। इस लिए यह नाम भी एक देशीय अर्थ का द्योतक है और उससे केवल संपादकों के सम्मेलन का ही बोध होता है; रिपोर्टर, आलोचक, सम्वाददाता आदि अन्य पत्र-कारों के सम्मेलन का नहीं। मालूम होता है कि जब यह नाम-करण-संस्कार किया गया था, उस समय हिन्दी-समाचार-पत्रों में सम्पादक के अलावा और कोई कर्मचारी नहीं होते थे। इसी लिए सम्पादक के अलावा किसी अन्य शब्द का अधिक प्रचार नहीं हुआ और इसी लिए इस संस्था का नाम भी सम्पादक-सम्मेलन रख दिया गया। मगर अब परिस्थिति बदल गई है। सम्पादक-सम्मेलन के अन्दर सम्पादक ही नहीं, उपसंपादक, रिपोर्टर, लेखक आदि अनेक प्रकार के पत्रकार शामिल हो सकते

हैं। इस लिए अब यह नाम सार्थक नहीं मालूम पड़ता। पत्रकार शब्द काफी प्रचार में आ चुका है और उसका अर्थ भी इतना व्यापक है कि वह उपर्युक्त सब कर्मचारियों को अपने आवर्त में घेर सकता है। इस लिए यदि उसका नाम बदलकर पत्रकार-परिषद् रख दिया जाय, तो अधिक योग्य होगा। पं० माखनलालजी ने अपने भाषण में यत्र-तत्र 'पत्रकार-संघ' शब्द का उपयोग किया भी है। संघ और परिषद् में कोई भेद नहीं। फिर भी मैंने परिषद् इस लिए पसन्द किया कि उस में सार्थकता के साथ-साथ अनुप्रासकी मनोहारिता भी आ जाती है। आशा हैं, यह प्रस्ताव सम्मेलन के कर्णधारों द्वारा भी स्वीकृत होगा।

———:०:———